वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

४४०६
क्रम सख्या २८१ गांधी
काल न०
खण्ड

गांधी-साहित्य—७

मेरे समकालीन

अपने समयके राजनीतिज्ञों तथा
सामान्य लोकसेवकोंके
महात्मा गांधी
द्वारा लिखित
संस्मरण



१९५१
सस्ता साहित्य मंडल • नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

पहली बार : १९५१

मूल्य
अजिल्द . साढ़े चार रुपये
सजिल्द पांच रुपये

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक गाधी-साहित्यका सातवा भाग है। इसमें गाधीजीकी उन रचनाओका सग्रह किया गया है, जिनमे उन्होने अपने समयके बडे-से-बडे नेतासे लेकर सामान्य जन-सेवक तककी सेवाओका अत्यत मार्मिक रूपमे स्मरण किया है। अपने बहुतसे सम्माननीय नेताओके नामों और कार्योंसे हम सब परिचित है, लेकिन इसी दुनियामे ऐसे भी लोग है, जो चुपचाप अपने सेवा-कार्यमे सलग्न रहते है और जिनके नामका कही भी उल्लेख नही मिलता। गाधीजीने ऐसे दर्जनो मूक सेवकोको इस सग्रहके लेखोमे वाणी प्रदान की है। जहा लोकमान्य तिलक, गोखले, मोतीलाल नेहरू आदि सुविख्यात नेताओको उन्होने अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की है, वहा निरक्षर वालीअम्मा, मोतीलाल दरजी, केलप्पन आदि दर्जनों लोकसेवकोकी महान सेवाओको भी बडे गर्व और गौरवके साथ याद किया है। इस प्रकार उन्होने स्पष्ट कर दिया है कि जिन्हे छोटा मानकर प्राय उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा जाता है, वे वस्तुत छोटे नही है और उनकी सेवाओका भी उतना ही मूल्य है, जितना किसी भी महान नेताकी सेवाका। इस दृष्टिसे यह सग्रह अद्वितीय है।

पुस्तकका सकलन और सपादन हिन्दीके सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकरने किया है। उनकी सावधानी और प्रयत्नके बावजूद यदि कुछ सगत सामग्री छूट गई हो अथवा कही कोई चूक रह गई हो तो पाठक कृपया उसकी सूचना हमे दे दें, जिससे अगले सस्करणमे उसका सुधार किया जा सके।

—मंत्री

संकेत-निर्देश

हिं० न० हिं० न० जी०	=	हिंदी नवजीवन
प्रा० प्र०	=	प्रार्थना प्रवचन
द० अ० स०	=	दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास
ह० से०	=	हरिजन सेवक
का० क०	=	बापूकी करावास-कहानी
म० डा०	=	महादेवभाईकी डायरी
य० इ०	=	यग इडिया
आ० आ० क०	=	आत्म-कथा
य० म०	=	यरवदा मदिरसे
दी० श्री०	=	दीनबधु श्रीएड्रूज
इ० ओ०	=	इडियन ओपीनियन
ह०	=	हरिजन

(इनके अतिरिक्त जिन अन्य साधनोसे सामग्री इकट्ठी की गई है, उनका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है।)



आमुख

प्रसिद्ध गायक श्रीदिलीपकुमार रायसे बातचीत करते हुए सन् १९२४ में गांधीजीने कहा था—"जीवन समस्त कलाओंसे श्रेष्ठ है। मै तो समझता हू कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार है। उत्तम जीवनकी भूमिकाके बिना कला किस प्रकार चित्रित की जा सकती है। कलाके मूल्यका आधार है जीवनको उन्नत बनाना। जीवन ही कला है।"[1] साहित्य-को इस दृष्टिसे कलासे अलग नही किया जा सकता। जीवनसे इतना अटूट सबध हो जानेके बाद वह नितात सरल और सुगम हो जाता है। कदाचित ऐसे ही साहित्यको दृष्टिमें रखकर गाधीजीने इन्ही श्रीरायसे कहा था— "वही काव्य और वही साहित्य चिरजीवी रहेगा जिसे लोग सुगमतासे पा सकेंगे, जिसे वे आसानीसे पचा सकेगे।" ऐसे साहित्यका सृजन वही कर सकता है जिसने साहित्यके विषयसे साक्षात्कार कर लिया है अर्थात् जो उसे जीता है। इसीको गाधीजीकी भाषामे यो कह सकते है कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही साहित्यिक है। इस दृष्टिसे वे एक ऊचे साहित्यिक थे। निस्सदेह वे एक साहित्यिकके नाते आगे नही आये और न उन्होंने कभी कवि, कथाकार या आलोचक होनेका दावा ही किया, परतु फिर भी जहा तक जीवनी-साहित्य, आत्मकथा, शब्द-चित्र और सस्मरण आदिका सबध है उनकी पूजी सहज ही उन्हे प्रथम श्रेणीके लेखकोमे ला बैठाती है।

उनकी आत्मकथा (अथवा सत्यके प्रयोग) एक अपूर्व ग्रथ है। वह सभी दृष्टियोसे इस क्षत्रमे स्थापित सभी परपराओको खड-खड करनेवाली क्रातिकारी पुस्तक है। उनके घोर-से-घोर विरोधी भी उसकी महानता-को मुक्त कठसे स्वीकार करते है।

---

[1] हिन्दी नवजीवन, १० फरवरी १९२४

वस्तुत गाधीजीने सच्चे अर्थोमे 'आत्मकथा' लिखी है। जीवनमें यदि कुछ गोपनीय रह जाता है तो आत्मकथा अधूरी है। सत्य और अहिंसा-के परीक्षण करनेवाला वैज्ञानिक अधूरी आत्मकथा नही लिख सकता। जिस प्रकार उन्होने अपना विश्लेषण करते समय सत्यको नही छोड़ा है उसी तरह दूसरोके बारेमे लिखते समय उन्होने अहिसाको अपना आधार बनाया है। इसलिए उनके साहित्यमे जहा उनकी पारदर्शिनी दृष्टिका चमत्कार है वहा वह मानवके सहज सौंदर्य सहानुभूतिसे भी आप्लावित है। जब कभी उन्होने किसीके बारेमे लिखनेके लिए कलम उठाई है अपनी सरल, सुबोध और सुगठित भाषामे उस वर्ण्य व्यक्तिका बडा ही सहानुभूतिपूर्ण चित्र उतार कर रख दिया है।

वे कभी लिखनेके लिए ही किसीका जीवनवृत्त या सस्मरण लिखने बैठे हो, यह तो उनके लिए सभव नही था, परतु अपने बहुधधी सार्वजनिक जीवनमे उन्हे असख्य छोटे और बडे व्यक्तियोके सपर्कमे आना पडा था। केवल भारत ही नही, दक्षिण अफ्रीकामे भी अनेकानेक देशी और विदेशी व्यक्तियोसे उनका सबध रहा था। बहुतोसे वह सबध अति प्रगाढ और आत्मीयतासे छलकता हुआ था। बहुतोके साथ उन्होने अपने सघर्षमय जीवनके अनेक वर्ष बिताए थे। कुछके साथ वे कुछ ही दिन रहे थे। उनमे अनेक उनसे बडे थे, जिनसे उन्होने बहुत-कुछ सीखा था। बहुतसे उनसे प्रेरणा लेते थे और उन्हे अपना आराध्यदेव मानते थे। बहुतसे उनके विरोधी भी थे, जिनसे उन्हे टक्कर लेनी पडती थी। ऐसे भी लोग थे जिनसे उनका कोई विशेष सबध तो नही था, पर किन्ही विशेष कारणोंसे गाधीजीको उन व्यक्तियोमे रुचि थी। इन सब व्यक्तियोमे जाति, लिग, वर्ण या वर्गका कोई भेद नही था। उनमे राजनीतिके धुरधर पडित और साधारण स्वय-सेवक, धर्माचार्य और श्रद्धालु भक्त, सम्राट और सेवक, पूजीपति और मजदूर, विद्रोही और प्रतिक्रियावादी सभी थे। सभीके बारेमे उन्होने समान भाव और समान रूपसे लिखा है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है लिखनेके ये अवसर कभी पूर्व योजनाके अनुसार नही आये। उस बहुधधी व्यस्त जीवनमे न जाने कब किस पर लिखना पड जाए, यह कोई नही जानता था। फिर भी ऐसे अवसर बहुत आते थे और साधारणतया उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :

१—गाधीजी अपने सहयोगियों, समाजके मूक सेवको या किसी रूपमे प्रख्यात व्यक्तियोकी मृत्युपर समवेदना और श्रद्धाजलिके रूपमे लिखा करते थे।

२—जब उनके सहकर्मियो और सहयोगियोपर आक्षेप होते थे तब उनका निराकरण और समाधान करनेके लिए उन्हे लिखना पडता था।

३—राष्ट्रीय महासभाके सभापति पदके लिए चुने जानेवाले व्यक्तिके बारेमे चुनावसे पूर्व या पश्चात् वे कभी-कभी लिखते थे।

४—अपने आदोलनोमे भाग लेनेवालो और उनके विरोधियोके विषयमें उन आदोलनोके दौरानमे वे लिखते थे।

५—'आत्मकथा' और 'दक्षिण अफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास' आदि पुस्तकोमे तत्सबधी व्यक्तियोका वर्णन आया है।

६—अनेक व्यक्तियोके जन्म-दिन या जयती आदिके अवसरपर पत्रोको सदेश और शुभकामनाके रूपमे उन्होने लिखा है।

७—कभी-कभी विशुद्ध सपादकीय कर्तव्यको निबाहनेके लिए लिखना पडता था।

८—निजी पत्रोमें व्यक्तियोकी चर्चा आ जाती थी।

यदि उनके साहित्यका काल-क्रमसे अध्ययन किया जाय तो एक बात ज्ञात होगी कि शुरूमे वे व्यक्तियोके बारेमे अधिक लिखते थे, परतु जैसे-जैसे समय बीतता गया यह लेखन कम होता गया। जबसे उन्होने 'हरिजन' पत्रोका प्रकाशन किया तबसे तो हरिजन सेवकोंको छोड कर और किसीके बारेमें वे उन पत्रोमें नही लिखते थे। इन पत्रोको छोडकर पुस्तकादि लिखनेका समय अब उनके पास नही रहा था।

फिर भी इस सबधमे गाधीजीके एक गुणकी बात विशेष उल्लेखनीय है। वे प्रत्येक सपर्कमे ग्रानेवाले व्यक्तिसे, चाहे वह छोटा हो या बडा, विरोधी हो या सहयोगी, अधिक-से-अधिक आत्मीयता स्थापित करनेकी चेष्टा करते थे। वे उसकी मानव-सुलभ भावनाओको छू कर उससे बाते करते थे। सबसे पहले वे मानव थे और दूसरोको भी मानव समझते थे। और यह सब था अहिंसाके कारण। इस दृष्टिसे उनके सस्मरण अध्ययन की वस्तु है।

प्रस्तुत सग्रह 'मेरे समकालीन' मे गाधीजी द्वारा लिखे गये इसी प्रकारके सस्मरण—शब्द-चित्र और लेख—सकलित किये गए है। यह सकलन इस दृष्टिसे नई चीज है। अबतक गाधीजीके लेखो और भाषणो-के अनेकानेक सग्रह विभिन्न भाषाओमे प्रकाशित हुए है। परतु उन सबका विषय गाधीजीके विचारो और मान्यताओसे सबध रखता है। जिन असख्य व्यक्तियोके सपर्कमे वे आए उनके बारेमे गाधीजीके क्या विचार थे, यह जाननेकी अभीतक किसीने चेष्टा नही की। इस सकलन द्वारा उसी अभावको दूर करनेका प्रयत्न किया गया है।

जैसे वे सरल और सशक्त भाषा लिखनेमे लासानी थे वैसे ही वे शब्द-चित्र खीचनेमे भी बहुत कुशल थे। एक तो अपने जीवनके प्रति निर्दिष्ट वैज्ञानिक दृष्टिकोण (सत्य)के कारण, दूसरे विभिन्न विचार और व्यवहारके इतने अधिक व्यक्तियोके सपर्क मे आनेके तथा मानवता (अहिंसा) मे अपनी आस्थाके कारण उनकी परख बडी सही और खरी हो गई थी, और जब दृष्टि पारदर्शी हो जाती है तो वर्णन स्वतः ही सजीव और मार्मिक हो जाता है।

सन् १९२९ मे प० जवाहरलाल नेहरूके लिए उन्होने जो कुछ लिखा था वह शब्दोमें एक अपूर्व चित्र है—"बहादुरीमे कोई उनसे बढ नही सकता और देशप्रेममें उनसे आगे कौन जा सकता है ? कुछ लोग कहते है कि वह जल्दबाज और अधीर है। यह तो इस समय एक गुण है। फिर जहा उनमे एक वीर योद्धाकी तेजी और अधीरता है वहा एक राज-

नीतिज्ञका विवेक भी है ।...वह स्फटिक मणिकी भांति पवित्र हैं, उनकी सत्यशीलता सदेहसे परे है । वह अहिसक और अनिदनीय योद्धा है। राष्ट्र उनके हाथमें सुरक्षित है।"

दक्षिण अफ्रीकाके श्री थम्बी नायडूका चित्र देखिये . "उनकी बुद्धि भी बडी तीव्र थी । नवीन प्रश्नोंको वे बडी फुर्तीके साथ समझ लेते थे । उनकी हाजिर-जवाबी आश्चर्यजनक थी । वे भारत कभी नही आये थे, फिर भी उसपर उनका अगाध प्रेम था । स्वदेशाभिमान उनकी नस-नसमें भरा हुआ था । उनकी दृढ़ता चेहरेपर ही चित्रित थी । उनका शरीर बडा मजबूत और कसा हुआ था । मेहनतसे कभी थकते ही न थे । कुर्सी पर बैठकर नेतापन करना हो तो उस पदकी भी शोभा बढा दे, पर साथ ही हरकारेका काम भी उतनी ही स्वाभाविक रीतिसे वे कर सकते थे । सिर पर बोझा उठाकर बाजारसे निकलनेमे थम्बी नायडू जरा भी न शरमाते थे । मेहनतके समय न रात देखते, न दिन । कौमके लिए अपने सर्वस्व की आहुति देनेके लिए हर किसीके साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते थे ।" (पृष्ठ ३२९)

पर इन शब्द-चित्रोसे कोई यह न समझ ले कि गाधीजी विशेषणोका ही प्रयोग करना जानते थे । वैसे वे जब विशेषणोका प्रयोग करते थे तो दिल खोलकर करते थे । कुमारी श्लेजीन, नारणदास गाधी, मगनलाल गाधी, महादेव देसाई आदिके रेखा-चित्र इस बातके प्रमाण है । परतु किसी भी व्यक्तिकी दुर्बलता उनसे छिपी नही रहती थी और अवसर आनेपर वे उसी स्पष्टतासे उसे प्रकट कर देते थे, जिस प्रकार उसके गुणोपर प्रकाश डालते थे । सत्यका पुजारी व्यक्तित्वका अधूरा चित्रण कर ही नही सकता । ऊपर जिन थम्बी नायडूका शब्द-चित्र दिया गया है, उन्हीके बारेमे उसी चित्रमें गाधीजीने आगे लिखा है—"अगर थबी नायडू हदसे ज्यादा साहसी न होते और उनमे क्रोध न होता तो आज वह वीर पुरुष ट्रान्सवालमें काछलियाकी अनुपस्थितिमे आसानीसे कौमका

नेतृत्व ग्रहण कर सकता था। ट्रान्सवालके युद्धके अंत तक उनके क्रोधका कोई विपरीत परिणाम नही हुआ था, वल्कि तबतक उनके अमूल्य गुण जवाहिरोके समान चमक रहे थे, पर बादमें मैंने देखा कि उनका क्रोध और साहस प्रबल शत्रु साबित हुए और उन्होने उनके गुणोको छिपा दिया ।" (पृष्ठ ३२९)

सरोजिनी नायडूका चित्र उन्होने एक ही वाक्यमे उतार दिया है —
"सरोजिनी नायडू काम तो बहुत बढिया कर लेती है, मगर सच्ची सस्कृतिकी कीमत देकर।" (पृष्ठ ३३५)

जिन महादेव भाईके लिए वे स्वप्नमें भी अधीर रहते थे, उनके बारेमे भी उन्होने लिखा है .

"महादेवकी मै भाटकी तरह स्तुति करता हू मगर मेरा मन उसकी शिकायत भी करता है।" (पृष्ठ ३१५)

वस्तुत किसी भी व्यक्तिका ठीक-ठीक विश्लेषण करनेमे उन्हे अद्भुत कुशलता प्राप्त थी। कम-से-कम और नपे-तुले सार्थक शब्दोमे वे वर्ण्य व्यक्तिके अदर और बाहरका चित्र कागजपर उतार कर रख देते थे।

"सर फिरोजशाह तो मुझे हिमालय जैसे मालूम हुए, लोकमान्य समुद्रकी तरह। गोखले गगाकी तरह। उसमे मै नहा सकता था। हिमालय पर चढना मुश्किल है, समुद्रमे डूबनेका भय रहता है, पर गगाकी गोदीमे खेल सकते हैं, उसमे डोगीपर चढकर तैर सकते है। (पृष्ठ १७८)

"शिष्य होना परम पवित्र, पर व्यक्तिगत् भाव है। मैंने १८८८ मे दादाभाईके चरणोमे अपनेको समर्पित किया, पर मेरे आदर्शसे वे बहुत दूर थे। मै उनके पुत्रके स्थानपर हो सकता था, उनका शागिर्द नही हो सकता था। शिष्यका दर्जा पुत्रसे ऊचा है। शिष्य, पुत्र रूपसे दूसरा जन्म ग्रहण करता है। शिष्य होना अपनी स्वकीय प्रेरणासे समर्पित करना है। जस्टिस रानडेसे मुझे भय लगता था। उनके सामने मुझे बयान करनेका भी साहस नही होता था। बदरुद्दीन तैयबजी पिताकी

तरह प्रतीत हुए। उन्होंने मुझे सलाह दी कि फिरोजशाह मेहता और रानडेके परामर्शसे काम करो। सर फिरोजशाह तो हमारे सरक्षक बन गये। इसलिए उनकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य थी। जो कुछ वे कहते, मैं चुपचाप स्वीकार करता। बबईके उस शेरने मुझे आज्ञापालनका मर्म सिखाया। उन्होंने मुझे अपना शागिद नही बनाया। उन्होंने आजमाइश भी नही की।

"जिस समय मैं उनसे (लोकमान्य तिलकसे) मिला, वे अपने साथियोसे घिरे बैठे थे। उन्होंने मेरी बाते सुनी और कहा—"आपका भाषण सार्वजनिक सभामे होना जरूरी है। पर आप जानते है कि यहा दलबदी है। इससे ऐसा सभापति चाहिए जो किसी दल-विशेषका न हो। यदि इसके लिए आप डाक्टर भाडारकरसे मिले तो उत्तम हो।" मैने उनकी सलाह स्वीकार की और लौट आया। सिवा इसके कि स्नेहमय मिलापके भाव प्रदर्शित करके उन्होंने मेरी घबराहट दूर की, नही तो लोकमान्यका उस समय मुझपर कोई अच्छा प्रभाव नही पडा। डाक्टर भाडारकरने मेरा उसी तरह स्वागत किया जिस तरह गुरु शिष्यका करता है। उनके चेहरेसे विद्वत्ता टपक रही थी। मेरे हृदयमे श्रद्धाका ज्वार उमड आया, पर गुरु-भक्तिका भाव फिर भी न भरा। वह हृदय-सिहासन उस समय भी खाली रह गया। मुझे अनेक धीर-वीर मिले, पर राजा-की पदवी तक कोई न पहुच सका।

"पर जिस समय मै श्रीयुत गोखलेसे मिलने गया, बाते एकदम बदल गई। यह मिलन ठीक उसी प्रकार हुआ था जैसे दो चिर विछोही मित्रो या माता और पुत्रका होता है। उनकी नम्र आकृति देखकर मेरा हृदय शात हुआ। दक्षिण अफ्रीका तथा मेरे सबधमे उन्होंने जिस तरह पूछताछ की उससे मेरा हृदय श्रद्धासे भर गया। उनसे विदा होते समय मैने अपने दिलमे कहा—"बस, मेरे मनका आदमी मिल गया।". .१९०१ मे दूसरी बार दक्षिण अफ्रीकासे लौटा। इस बार

मेरी घनिष्टता और भी प्रगाढ हो गई। उन्होंने अपने हाथमे मेरा हाथ लेकर पूछना शुरू किया—"किस तरह रहते हो? क्या कपडे पहनते हो? भोजन कैसा होता है?" मेरी माता भी इतनी तत्पर नही थी। मेरे और उनके बीचमे कोई अतर नही था। यह चक्षुराग था, अर्थात् प्रथम दर्शनसे ही हृदयमे प्रगाढ प्रेमका अकुर जम गया था। (पृष्ठ २०३)

इस उद्धरणमे गाधीजीने भारतके तत्कालीन नेताओका जो तुलनात्मक चित्रण उपस्थित किया है वह उनकी पारदर्शिनी दृष्टि, उनकी विश्लेषण शक्ति, उनकी तीव्र और प्रखर अनुभूति को स्पष्ट करता है। गोखलेके चित्रमे कितनी आत्मीयता है। वह उनके अपने मानवतासे छलकते हुए हृदयकी झाकी है। श्री जवाहरलाल नेहरूने अपने जीवन-चरितमे गाधीजीके विचारोकी अच्छी खासी आलोचना की है, पर सब कुछ कहकर उन्होने लिखा है—"लेकिन वे अपने भारतको अच्छी तरह जानते है।" इसी तरह और लोगोको भी उनसे मत-भेद हो सकता है, पर वे मानेगे कि गाधीजी व्यक्तिको पहचानते थे। गोखलेसे उनका बहुत-सी बातोपर मतभेद था, परतु उन्हीके शब्दोमें "पर इससे हम लोगोमें किसी तरहका अनर नही आ सका।" आही नही सकता था, क्योंकि अहिसाका पुजारी प्रेमके अतिरिक्त और कुछ नही कर सकता और प्रेमकी शर्त है मित्रता, दासता नही।

लोकमान्य तिलकसे उनके मतभेदकी बात सब जानते है। उनके जीवनकालमे और मृत्युके बाद गाधीजीने उन मतभेदोको कभी कम करके बताने या भुलानेकी चेष्टा नही की, पर इसी कारण वे लोकमान्यका सही मूल्याकन करनेमे नही झिझके। उनकी मृत्यु पर उन्होने लिखा—

"लोकमान्य बालगगाधर तिलक अब ससारमे नही है। यह विश्वास करना कठिन मालूम होता है कि वे ससारसे उठ गए। हम लोगोके समयमे ऐसा दूसरा कोई नही जिसका जनतापर लोकमान्य जैसा प्रभाव हो। हजारो देश-वासियोकी उनपर जो भक्ति और श्रद्धा थी वह

अपूर्व थी। यह अक्षरश: सत्य है कि वे जनता के आराध्यदेव थे, प्रतिमा थे, उनके वचन हजारो आदमियोके लिए नियम और कानूनसे थे। पुरुषोमे पुरुष-सिंह ससारसे उठ गया। केशरीकी घोर गर्जना विलीन हो गई।"

अनुभूतिकी तीव्रता और वास्तविकताका और भी सुदर चित्रण उनके सस्मरणोमे हुआ है। घटनाओ और वार्तालापके द्वारा उन्होने वर्ण्य व्यक्तिकी बाहरी और आतरिक सुदरता-कुरूपताकी रेखाओको इस प्रकार उभार दिया है कि इसके पूर्ण परिपाकके साथ-साथ व्यक्तिका सपूर्ण चित्र हृदयपर पत्थरकी लीक बन जाता है। कस्तूरबा गाधी, बाला-सुदरम्, देशबधुदास, घोषाल बाबू तथा बासती देवी आदिके सस्मरण इस दृष्टिसे बहुत ही सुदर बने हैं:

"मै घोषालबाबूके पास गया। उन्होने मुझे नीचेसे ऊपर तक देखा। कुछ मुस्कराये और बोले "मेरे पास कारकुनका काम है। करोगे?"

मैने उत्तर दिया—"जरूर करूगा। अपने बस भर सबकुछ करनेके लिए मै आपके पास आया हू।"

"नवयुवक, सच्चा सेवा-भाव इसीको कहते हैं।"

कुछ स्वयसेवक उनके पास खडे थे। उनकी ओर मुखातिब होकर कहा—"देखते हो, इस नवयुवकने क्या कहा?"

फिर मेरी ओर देखकर कहा, "तो लो यह चिट्ठियोका ढेर. . .देखते हो न कि सैकडो आदमी मुझसे मिलने आया करते है। अब मै उनसे मिलू या जो लोग फालतू चिट्ठिया लिखा करते है उन्हे उत्तर दू। इनमे बहुतेरी तो फिजूल होगी, पर तुम सबको पढ जाना। जिनकी पहुच लिखना जरूरी है उनकी पहुच लिख देना और जिनके उत्तरके लिए मुझसे पूछना हो पूछ लेना।"

उनके इस विश्वाससे मुझे बडी खुशी हुई। श्री घोषाल मुझे पहचानते न थे। मेरा इतिहास जाननेके बाद तो कारकुनका काम देनेमे उन्हे जरा शर्म मालूम हुई, पर मैने उन्हे निश्चित कर दिया—"कहा मैं

और कहा आप ! . यह काम सौपकर मुझपर तो आपने एहसान ही किया है, क्योकि मुझे आगे चलकर काग्रेसमें काम करना है ।"

घोषालबाबू बोले, "सच पूछो तो यही सच्ची मनोवृत्ति है, परतु आजकलके नवयुवक ऐसा नहीं मानते । पर मै तो काग्रेसको उसके जन्मसे जानता हू । उसकी स्थापना करनेमें मि० ह्यूमके साथ मेरा भी हाथ था ।"

हम दोनोमे खासा सबध हो गया । दोपहरके खानेके समय वह मुझे साथ रखते । घोषालबाबूके बटन भी 'बेरा' लगाता । यह देखकर 'बेरा' का काम खुद मैंने लिया । मुझे वह अच्छा लगता । बडे-बूढोकी ओर मेरा बड़ा आदर रहता था । जब वह मेरे मनोभावोसे परिचित हो गये तब अपना निजी सेवाका सारा काम मुझे करने देते थे । बटन लगवाते हुए मुह पिचकाकर मुझसे कहते—"देखो न, काग्रेसके सेवकको बटन लगाने तक की फुरसत नहीं मिलती, क्योंकि उस समय भी वे काममें लगे रहते है ।" इस भोलेपनपर मुझे मनमे हँसी तो आई, परतु ऐसी सेवा-के लिए मनमे अरुचि बिलकुल न हुई ।"

बासती देवीका देशवन्धुकी मृत्युके बाद, जो चित्र गाधीजीने खीचा है वह बहुत ही मानवीय, बहुत ही करुण और बहुत ही यथार्थ है ·

"वैधव्यके बाद पहली मुलाकात उनके दामादके घर हुई । उनके आस-पास बहुतेरी बहने बैठी थी । पूर्वाश्रममें तो जब मै उनके कमरेमे जाता तो खुद वही सामने आती और मुझे बुलाती । वैधव्यमे मुझे क्या बुलाती । पुतलीकी तरह स्तम्भित बैठी अनेक बहनोमेंसे मुझे उन्हें पहचानना था । एक मिनिट तक तो मै खोजता ही रहा । मागमे सिदूर, ललाटपर कुकुम मुहमे पान, हाथमे चूडिया और साड़ी पर लैस, हँस-मुख चेहरा इनमेंसे एक भी चिह्न मैं न देखू तो बासन्ती देवीको किस तरह पहचानू ? जहा मैंने अनुमान किया था कि वे होगी वहा जाकर बैठ गया और गौरसे मुख-मुद्रा देखी । देखना असह्य हो गया । छातीको पत्थर बनाकर आश्वासन देना तो दूर ही रहा । उनके मुखपर सदा शोभित हास्य आज कहां था ?

मैने उन्हे सात्वना देने, रिझाने और बातचीत करावेकी अनेक कोशिशें की। बहुत समयके बाद मुझे कुछ सफलता मिली। देवी जरा हँसी। मुझे हिम्मत हुई और मै बोला, "आप रो नही सकती। आप रोओगी तो सब लोग रोवेंगे। मोना (बडी लडकी) को बडी मुश्किलसे चुपकी रखा है। देवी (छोटी लडकी) की हालत तो आप जानती ही है। सुजाता (पुत्रवधू) फूट-फूटकर रोती थी, सो बडे प्रयाससे शात हुई है। आप दया रखियेगा। आपसे अब बहुत काम लेना है।"

"वीरागनाने दृढतापूर्वक जवाब दिया—"मै नही रोऊगी। मुझे रोना आता ही नही।"

"मै इसका मर्म समझा, मुझे सतोष हुआ। रोनेसे दु:खका भार हल्का हो जाता है। इस विधवा बहनको तो भार हल्का नही करना था, उठाना था। फिर रोती कैसे! अब मै कैसे कह सकता हू—"लो चलो, हम भाई-बहन पेटभर रो ले और दु:ख कम कर ले।"

× × ×

"बासती देवीने अबतक किसी के देखते, आसूकी एक बूद तक नही गिराई है। फिर भी उनके चेहरे पर तेज तो आ ही नही रहा है। उनकी मुखाकृति ऐसी हो गई है कि मानो भारी बीमारीसे उठी हो। यह हालत देखकर मैने उनसे निवेदन किया कि थोडा समय बाहर निकलकर हवा खाने चलिए। मेरे साथ मोटरमे तो बैठी, पर बोलने क्यो लगी। मैने कितनी ही बाते चलाई—वे सुनती रही, पर खुद उसमे बरायनाम शरीक हुई। हवा खोरीको तो, पर पछताई। सारी रात नीद न आई। "जो बात मेरे पतिको अतिशय प्रिय थी वह आज इस अभागिनीने की। यह क्या शोक है।" ऐसे विचारोमे रात हो गई।

× × ×

"वैधव्य प्यारा लगता है, फिर भी असह्य मालूम होता है। सुधन्वा खौलते हुए तेलके कडाहमें भटकता था और मुझ जैसे दूर रहकर देखनेवाले

उसके दुःख की कल्पना करके कांपते थे। सती स्त्रियो, अपने दुःखको तुम संभालकर रखना। वह दुःख नहीं, सुख है। तुम्हारा नाम लेकर बहुतेरे पार उतर गए हैं और उतरेंगे। बासंती देवीकी जय हो!" (पृष्ठ ५५७)

भावनाकी अतिरंजनाने इस करुण चित्रको कितना सशक्त बना दिया है। लेकिन जहां उन्होंने अपने युगके महापुरुषोंपर लिखा, वहां लुटावन, फकीरी और चार निडर युवक जैसे अनेक साधारण व्यक्तियोंको भी नहीं छोड़ा है। ये कुछ बानगीके चित्र हैं। पुस्तक ऐसे चित्रोंसे भरी है। ये चित्र किसी उद्घोषित साहित्यिकके द्वारा नहीं लिखे गए, बल्कि एक ऐसे मानव द्वारा लिखे गये हैं जिसका समस्त जीवन 'जीनेकी कला'के, सत्यके प्रयोग करनेमें बीता था, जिसने जीना सीखते-सीखते जिलाना (अहिंसाको) सीख लिया था, जो सबसे पहले और सबसे पीछे मात्र मनुष्य था और ऐसा मनुष्य ही मनुष्यको नहीं पहचानेगा तो कौन पहचानेगा।

चित्र इतने ही नहीं हैं। प्रयत्न करनेपर जितनी सामग्री मिल सकी वह इस पुस्तकमें दे दी गई है, पर हम जानते हैं कि अभी बहुत शेष है। अपने पाठकोंसे हमारी प्रार्थना है कि यदि वे ऐसी किसी सामग्रीके बारेमें जानते हों तो हमें सूचना देनेकी कृपा करें। उनके सुझावोंका हम कृतज्ञता-पूर्वक स्वागत करेंगे।

इस पुस्तकके संकलनमें जिन मान्य व प्रिय बंधुओंने मुझे सहायता दी है, उनका मैं हृदयसे आभारी हूं। डा० युद्धवीर सिंह और जैन पुस्तकालय, दिल्लीका मैं विशेष रूपसे आभारी हूं। 'नवजीवन'के अनेक अलभ्य अंक उनके पास न मिल जाते तो संग्रह एकदम अधूरा रह जाता।

पो० बॉ० ११६७, दिल्ली
रवीन्द्र-जयंती, ९ मई १९५१

—विष्णु प्रभाकर

विषय-सूची

मेरे समकालीन

मेरे समकालीन

: १ :

हकीम अजमल खाँ

हकीम साहब अजमलखाके स्वर्गवाससे देशका एक सबसे सच्चा सेवक उठ गया । हकीम साहबकी विभूतिया अनेक थी । वे महज कामिल हकीम ही नही थे जो गरीबों और धनियो, सबके रोगोंकी दवा करता है । वे थे एक दरबारी देशभक्त, यानी अगर्चे कि उनका वक्त राजो-महाराजोके साथमें बीतता था, मगर थे वे पक्के प्रजावादी । वे बहुत बडे मुसलमान थे और उतने ही बडे हिन्दुस्तानी थे । हिन्दू और मुसलमान दोनोसे ही वे एक-सा प्रेम करते थे । बदलेमे हिन्दू और मुसलमान दोनो ही एक समान उनसे मुहब्बत रखते थे, उनकी इज्जत करते थे । हिन्दू मुसलमान एकतापर वे जान देते थे । हमारे झगडोके कारण उनके अन्तिम दिन कुछ दु खजनक हो गए थे, मगर अपने देश और देश-बन्धुओमें उनका विश्वास कभी नष्ट नही हुआ । उनका विचार था कि आखिर दोनो सम्प्रदायोको मेल करना ही पडेगा । यह अटल विश्वास लेकर उन्होंने एकताके लिए प्रयत्न करना कभी नही छोडा । हालाकि उन्हें सोचनेमें कुछ समय लगा, लेकिन अन्तमे वे असहयोग आन्दोलनमें कूद ही पडे, अपनी प्रियतम और सबसे बडी कृति तिब्बी कॉलेजको खतरेमें डालते वे झिझके नही । इस कॉलेजसे उनका इतना प्रबल अनुराग था, जिसका अन्दाजा सिर्फ वे ही लगा सकते है जो हकीमजीको भलीभाति जानते थे ।

हकीमजीके स्वर्गवाससे मैंने न सिर्फ एक बुद्धिमान और दृढ़ साथी ही खोया है, बल्कि एक ऐसा मित्र खोया है जिसपर मैं आड़े अवसरोंपर भरोसा कर सकता था। हिन्दू-मुसलिम एकताके बारेमें वे हमेशा ही मेरे रहबर थे। उनकी निर्णय-शक्ति, गंभीरता और मनुष्य-प्रकृतिका ज्ञान ऐसे थे कि वे बहुत करके सही फैसला ही किया करते थे। ऐसा आदमी कभी मरता नहीं है। यद्यपि उनका शरीर अब नहीं रहा, मगर उनकी भावना तो हमारे साथ बराबर रहेगी और वह अब भी हमें अपना कर्तव्य पूरा करनेको बुला रही है। जबतक हम सच्ची हिन्दू-मुसलिम एकता पैदा नहीं कर लेते, उनकी याद बनाये रखनेके लिए हमारा बनाया कोई स्मारक पूरा हुआ नहीं कहा जा सकता। परमात्मा ऐसा करे कि जो काम हम उनके जीतेजी नहीं कर सके, वह उनकी मौतसे करना सीखें।

हकीमजी कोरे स्वप्नदृष्टा ही नहीं थे। उन्हें विश्वास था कि मेरा स्वप्न एक दिन पूरा होगा ही। जिस तरह तिब्बी कॉलेजके द्वारा उनका देशी चिकित्साका स्वप्न फला, उसी तरह अपना राजनैतिक स्वप्न भी उन्होंने जामिया मिलियाके जरिए पूरा करनेकी कोशिश की। जबकि जामिया मरणासन्न हो रही थी, उस समय हकीम साहबने प्रायः अकेले ही उसे अलीगढसे दिल्ली लानेका सारा भार उठाया। मगर जामियाको हटानेसे खर्च भी बढा। तबसे वे अपनेको जामियाकी आर्थिक स्थिरताके लिए खास तौरपर जिम्मेवार मानने लगे थे। उसके लिए धन जमा करनेमें सबसे मुख्य मनुष्य वे ही थे, चाहे वे अपने ही पाससे दें या अपने दोस्तोंसे चन्दे दिलवाएँ। इस समय जो स्मारक देश तुरत ही बना सकता है, और जिसका बनाया जाना अनिवार्य है, वह है जामिया मिलियाकी आर्थिक स्थितिको पक्की कर देना। (हि० न०, ५.१.२८)

* * *

एक जमाना था, शायद सन् १५की सालमें, जब मैं दिल्ली आया था, हकीम साहबसे मिला और डाक्टर अंसारीसे। मुझसे कहा गया कि

हमारे दिल्लीके बादशाह अग्रेज नही है, बल्कि ये हकीम साहब है। डाक्टर असारी तो बडे बुजुर्ग थे, बहुत बड़े सर्जन थे, वैद्य थे। वे भी हकीम साहबको जानते थे, उनके लिए उनके दिलमें बहुत कद्र थी। हकीम साहब भी मुसलमान थे, लेकिन वे तो बहुत बडे विद्वान् थे, हकीम थे। यूनानी हकीम थे, लेकिन आयुर्वेदका उन्होंने कुछ अभ्यास किया था। उनके वहां हजारो मुसलमान आते थे और हजारो गरीब हिंदू भी आते थे। साहूकार, धनिक मुसलमान और हिंदू भी आते थे। एक दिनका एक हजार रुपया उनको देते थे। जहातक मै हकीम साहबको पहचानता था, उन्हे रुपएकी नही पड़ी थी, लेकिन सबकी खिदमतकी खातिर उनका पेशा था। वह तो बादशाह-जैसे थे। आखिरमे उनके बाप-दादा तो चीनमे रहते थे, चीनके मुसलमान थे, लेकिन बडे शरीफ थे। जितने हिंदू लोग मेरे पास आए, उनसे पूछा कि आपके सरदार यहा कौन हैं? श्रद्धानदजी? श्रद्धानदजी यहा बडा काम करते थे। लेकिन नही, दिल्लीके सरदार तो हकीम साहब थे। क्यो थे? क्योकि उन्होंने हिंदू-मुसलमान सबकी सेवा ही की। यह सन् '१५के सालकी बात मैंने कही। लेकिन बादमे मेरा ताल्लुक उनसे बहुत बढ गया और उनको और पहचाना। (प्रा० प्र०, १३ ६.४७)

• • • •

कल हकीम अजमल खा साहबकी वार्षिक तिथि थी। वह हिंदुस्तानके हिंदू, मुसलमान, सिख, क्रिस्टी, पारसी, यहूदी सबके प्रिय थे। वह पक्के मुसलमान थे, मगर वह इस खूबसूरत देशके रहनेवाले सब लोगोंकी समान सेवा करते थे। उनकी मेहनतकी सबसे बढ़िया यादगार दिल्लीका मशहूर तिब्बी कॉलेज और अस्पताल था। वहापर हर श्रेणीके विद्यार्थी पढ़ते थे और वहां यूनानी, आयुर्वेदिक और पश्चिमी डाक्टरी सब सिखाई जाती थी। सांप्रदायिकताके जहरके कारण यह संस्था भी, जिसमें किसी तरह साप्रदायिकताको स्थान न था, बद

हो गई है। मेरी समझमे इसका कारण इतना ही हो सकता है कि इस कालेजको बनानेवाले हकीम साहब मुसलमान थे, फिर वे चाहे कितने ही महान् और भले क्यो न रहे हों, और भले ही उन्होने सबका मान संपादन क्यों न किया हो। उस स्वर्गवासी देशभक्तकी स्मृति अगर हिंदू-मुस्लिम फिसादको दफन नही कर सकती तो कम-से-कम इस कालेजको तो नया जीवन दे ही दे। (प्रा० प्र०, २९.१२ ४७)

: २ :

सोराबजी शापुरजी अडाजनिया

नवीन बस्तीवाला कानून भी सत्याग्रहमें शामिल कर लिया गया। . . इस कानूनमे एक यह भी धारा थी कि ट्रासवालमे आनेवाले नवीन आदमीको यूरोपकी किसी भी एक भाषाका ज्ञान होना जरूरी है। इसलिए कमेटीने किसी ऐसे ही आदमीको ट्रासवालमें लानेको सोचा, जो अग्रेजी जानता हो, पर पहले कभी ट्रांसवालमे न रहा हो। कितने ही भारतीय उम्मीदवार खड़े हुए, पर कमेटीने उनमेंसे सोराबजी शापुरजी अडाजनियाकी प्रार्थनाको ही बतौर कसौटी (टेस्ट केस)के मान्य किया।

सोराबजी पारसी थे। नामसे ही स्पष्ट है। सारे दक्षिण अफ्रीकामें पारसियोकी जन-संख्या सौसे ज्यादा नही होगी। पारसियोके विषयमें दक्षिण अफ्रीकामे भी मेरा वही मत था जो मैंने भारतवर्षमे प्रकट किया है। ससार भरमे एक लाखसे ज्यादा पारसी नही होगे; परन्तु इतनी छोटी-सी जाति अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा कर रही हैं, अपने धर्मपर दृढ हैं और उदारतामें ससारकी एक भी जाति उसकी बराबरी नही कर सकती। इस जातिकी उच्चताके लिए इतना ही प्रमाण काफी होगा।

अनुभवसे ज्ञात हुआ कि सोराबजी उसमें भी रत्न थे। जब वह लड़ाईमें शामिल हुए तब मैं उनको वैसे ही मामूली तौरपर जानता था। लडाईमें शामिल होनेके लिए उन्होंने पत्र-व्यवहार किया था और उससे मेरा खयाल भी अच्छा हो गया था। मैं पारसी लोगोंके गुणोका तो पुजारी हूं, परन्तु एक कौमकी हैसियतसे उनमें जो खामियां है उनसे मैं न तो अपरिचित था और न अब ही हू। इसलिए मेरे दिलमें यह सन्देह जरूर मौजूद था कि शायद सोराबजी परीक्षामे उत्तीर्ण नही हो सकेंगे। पर मेरा यह नियम था कि सामनेवाला मनुष्य जब इसके विपरीत बात कर रहा हो तब ऐसे शकपर अधिक ध्यान नही देना चाहिए। इसलिए मैंने कमेटीसे यह सिफारिश की कि सोराबजी अपने पत्रमे जो दृढता जाहिर कर रहे है उसपर हमें विश्वास कर लेना चाहिए। फल यह हुआ कि सोराबजी प्रथम श्रेणीके सत्याग्रही साबित हुए। लम्बी-से-लम्बी कैद भोगनेवाले सत्याग्रहियोमें वह भी एक थे। इतना ही नही, बल्कि उन्होने तो सत्याग्रहका इतना गहरा अध्ययन कर लिया था कि उसके विषयमे वह जो कुछ भी कहते, सबको सुनना पडता। उनकी सलाहमे हमेशा दृढता, विवेक, उदारता, शान्ति आदि गुण प्रकट होते। विचार कायम करनेमे वह जल्दी तो कदापि नही करते थे और एक बार विचार कायम कर लेनेपर वह कभी उसे बदलते भी नही थे। जितने अशोमे उनमें पारसीपन था, और वह उनमे ठूस-ठूसकर भरा हुआ था, उतना ही भारतीयपन भी था। सकीर्ण जाति-अभिमान जैसी वस्तु तो उनमे किसी दिन भी नही पाई गई। लड़ाई खतम होनेपर डा० मेहताने अच्छे सत्याग्रहियोमेसे किसीको इग्लेड भेजकर बैरिस्टर बनानेके लिए एक छात्रवृत्ति दी थी। उसके लिए योग्य छात्र चुननेका काम मुझपर ही रक्खा गया था। दो तीन सुयोग्य भारतीय थे। पर समस्त मित्र-मडलको, दृढता तथा स्थिरतामे सोराबजीके मुका-बलेमें खडा होने योग्य, कोई नही मिला, इसलिए उन्हीको चुना गया। ऐसे एक भारतीयको इग्लेड भेजनेमे मुख्य उद्देश्य यही था कि वह लौटकर

दक्षिण अफ्रीकामे मेरे बाद मेरा स्थान ग्रहण कर जातिकी सेवा कर सके। कौमका आशीर्वाद और सम्मान लेकर सोराबजी इग्लैड पहुचे। बैरिस्टर हुए। गोखलेसे तो उनका परिचय दक्षिण अफ्रीकामे ही हो चुका था। पर इग्लैड जानेपर उनका सबध और भी दृढ हो गया। सोराबजीने उनके मनको हर लिया। गोखलेने उनसे यह आग्रह भी किया कि जब कभी वह भारतमे आवे तब 'भारत-सेवक-समिति'के सभ्य जरूर होवे। विद्यार्थीवर्गमे वह बडे प्रिय हो गए थे। प्रत्येक मनुष्यके दुखमें वह भाग लेते। इग्लैडके न तो आडम्बरकी उनपर जरा भी छाप पडी और न वहाके ऐशो-आरामकी। वह जब इग्लैड गये तब उनकी उम्र ३० सालसे ऊपर थी। उनका अग्रेजीका अध्ययन ऊचे दर्जेका न था। व्याकरण वगैरह सब भूलभाल गये थे। पर मनुष्यके उद्योगके सामने ये कठिनाइया कब खडी रह सकी है? शुद्ध विद्यार्थी-जीवन व्यतीतकर, सोराबजी परीक्षाओमे उत्तीर्ण होते गये। मेरे जमानेकी बैरिस्टरीकी परीक्षा आजकलकी परीक्षाकी तुलनामे कुछ आसान थी। इसलिए आजकलके बैरिस्टरोको अधिक अभ्यास करना पडता है, पर सोराबजी पीछे नही हटे। इग्लैडमे जब एम्ब्युलैन्स कोरकी स्थापना हुई तब उसका आरभ करनेवालोमे वह भी थे और आखिर तक उसमे रहे। इस दलको भी सत्याग्रह करना पडा था। उसमेसे कई फिसल गये थे, पर फिर भी जो अटल रहे, उनमे सोराबजी अग्रगण्य थे। यहापर मुझे यह भी कह देना चाहिए कि इस दलको सत्याग्रहमे भी विजय ही मिली थी।

इंग्लैडमे बैरिस्टर होकर सोराबजी जोहान्सबर्ग गये। वहापर उन्होने सेवा और वकालत दोनो साथ-ही-साथ शुरू कर दी। दक्षिण अफ्रीकासे मुझे जो पत्र मिले उनमे सोराबजीकी तारीफ सभी करते थे। वह अब भी वैसे ही सादा मिजाज है, जैसे पहले थे, आडम्बर जरा भी नही है। छोटे-से-बड़ेतक सबसे हिल-मिलकर रहते है। मालूम होता है, परमात्मा जितना दयालु है, उतना ही शायद निठुर भी है। सोराबजीको

तीव्र क्षयने ग्रसा और कौमका नवीन प्रेम सम्पादनकर उसे दुखमे रोती हुई छोड़कर वह चल बसे। इस तरह परमात्माने कौमके दो पुरुष-रत्न छीन लिये—काछलिया[1] और सोराबजी !

पसन्दगी ही करनी हो तो मै इन दोमेंसे किसे प्रथम पद दू ? पर मै तो इस तरहकी पसन्दगी ही नही कर सकता। दोनों अपने-अपने क्षेत्रमें अप्रतिम थे। काछलिया शुद्ध मुसलमान और उतने ही शुभ भारतीय भी थे, उसी प्रकार सोराबजी भी शुद्ध पारसी और साथ ही उतने ही शुद्ध भारतीय थे।

यही सोराबजी पहलेपहल सरकारको नोटिस देकर केवल 'टेस्ट' अर्थात् कसौटीके लिए ट्रासवाल आये। सरकार इसके लिए जरा भी तैयार नही थी। इसलिए वह एकाएक यही निश्चय नही कर सकी कि सोराबजीके साथ क्या करना चाहिए। सोराबजी तो जाहिरा तौरपर सरहद लाघकर ट्रासवालमे आ धमके। परवाने जाचनेवाले सरकारी अधिकारी उनको जानते थे। सोराबजीने कहा—"मै केवल इसी हेतुसे ट्रासवालमे प्रवेश कर रहा हू कि देखू, सरकार मेरा क्या करती है। यदि आप मेरी अग्रेजीकी परीक्षा लेना चाहे तो सवाल कीजिए। और अगर गिरफ्तार करना हो तो यह खडा हू, गिरफ्तार कर लीजिए।" अधिकारीने कहा, "मुझे यह मालूम है कि आप अग्रेजी जानते है। इसलिए परीक्षा तो कुछ लेना-लिवाना है नही और न आपको गिरफ्तार करनेके लिए मेरे पास कोई हुक्म ही है। इसलिए जहा जाना हो, आप सुखपूर्वक जाइए। यदि आपको गिरफ्तार करना आवश्यक मालूम हुआ तो आप जहा कही जावेगे, सरकार स्वय आपको गिरफ्तार कर लेगी।"

इस तरह सोराबजी तो अकल्पित रूपसे और अचानक जोहान्सबर्ग तक आ पहुचे। हम सबने उनका बड़े हर्षके साथ स्वागत किया। किसीको

---

[1]परिचय पृष्ठ ५३ पर देखिए।

यह आशातक नहीं थी कि सरकार सोराबजीको ट्रासवालके सरहदी स्टेशन वाक्सरस्टसे जरा भी आगे बढने देगी।

सरकारकी गफलतके कारण कहिए या जान-बूझकर निश्चित की हुई उसकी पहली नीतिके अनुसार कहिए, सोराबजी जोहान्स-बर्ग तक आ पहुचे। इधर न तो स्थानीय अधिकारीको इस विषयमे कुछ खयाल था कि सोराबजीके जैसे मामलेमे क्या करना चाहिए और न ऊपरसे ही उसे कोई सूचना मिली थी। सोराबजीके इस तरह एकाएक जोहान्सबर्ग पहुच जानेसे कौमका उत्साह खूब बढ गया। कितने ही युवक तो यही समझ गये कि सरकार हार गई और शीघ्र ही उसे सुलह भी करनी होगी। पर यह स्वप्न अधिक देरतक न टिका। शीघ्र ही उन्हे इस बातको ठीक विपरीत सिद्ध होते हुए देखना पडा; बल्कि उन्होने तो यह भी देख लिया कि सुलह होनेसे पहले शायद अनेक युवकोको अपना बलिदान देना होगा।

सोराबजीने अपने पहुचते ही आनेकी खबर वहाके पुलिस सुपरि-टेडेटको देकर लिखा—"नवीन बस्तीवाले कानूनके अनुसार मै अपनेको ट्रासवालमे रहनेका हकदार मानता हू।" इसका कारण बताते हुए उन्होने अपना अग्रेजी भाषाका ज्ञान लिखाया। यह भी लिखा कि यदि अधिकारी उनकी अग्रेजीकी परीक्षा लेना चाहे तो उसके लिए भी वह तैयार है। इस पत्रका कोई उत्तर न मिला। पर इसके कई दिन बाद उन्हे एक समन मिला। मामला अदालतमे पेश हुआ। न्यायालय भारतीय दर्शकोसे खचाखच भर गया था। मामला शुरू होनेसे पहले, न्यायालयमे आये हुए भारतीयोको वही अहातेमे एकत्रकर उनकी एक सभा की गई, जिसमे सोराबजीने एक जोशीला भाषण दिया। भाषणके अतमे उन्होने यह प्रतिज्ञा की—"पूरी जीत होनेतक जितनी बार जेलमें जाना होगा, मैं जानेको तैयार हू और जितने भी सकट आवेंगे उन सबको झेलनेको तैयार हू।" अबतक इतना समय गुजर चुका था कि मैं सोराबजीको

अच्छी तरह जानने लग गया था। मैंने अपने मनमें यह भी समझ लिया था कि अवश्य ही सोराबजी एक शुद्ध रत्न सिद्ध होंगे। मुकदमा शुरू हुआ। मैं वकीलकी हैसियतसे खड़ा हुआ। समनमें कितने ही दोष थे। उन्हे दिखाकर मैंने सोराबजीपरसे समन उठा लेनेके लिए अदालतसे प्रार्थना की। सरकारी वकीलने अपनी दलीलें पेश की; पर अदालतने मेरी दलीलोको स्वीकार कर समन हटा लिया। कौम मारे हर्षके पागल हो गई। सच पूछा जाय तो उसके इस तरह पागल होनेके लिए कारण भी था। दूसरा समन निकालकर फौरन ही सोराबजीपर पुनः मुकदमा चलाने की हिम्मत तो सरकारको किस तरह हो सकती थी? और हुआ भी यही। इसलिए सोराबजी सार्वजनिक कामोमें लग गये।

पर यह छुटकारा हमेशाके लिए नही था। ..कौमने सरकारकी खामोशीका अंत देखनेके लिए एक ऐसा नवीन काम कर डाला जिससे उसे अपनी खामोशी अलग रखकर सोराबजीपर फिर मुकदमा चलाना पड़ा। (द० अ० स० १९२५)

: ३ :

माधव श्रीहरि अणे

ऊर्ध्वं बाहुर्विरौम्येष नैव कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च सधर्मः किं न सेव्यते॥

"मैं ऊंचा हाथ करके पुकारता हू, पर मेरी कोई सुनता नही। धर्म मे ही अर्थ और काम समाया हुआ है, ऐसे सरल धर्म का लोग क्यो सेवन नही करते?"

बापूजी अणे पिछले शनिवारको दिल्लीमे कुछ मिनटके लिए मेरे

पास आ गए थे। हम साथ-साथ काम कर रहे हो या देखनेमे विरोधी दिशामें जा रहे हो, बापूजी अपने मेरे प्रति हमेशा प्रेम-भाव रखते हैं, इसलिए जब कभी उन्हे समय मिलता है, राम-राम कर जाते है, विचारोका विनिमय कर जाते है और कभी-कभी तो उनके पास श्लोकोका जो भडार भरा पडा है उसमेंसे कुछ बानगी भी दे जाते हैं। दिल्लीमे जब वे मुझसे मिलने आये तब काग्रेसमेसे मेरे एकदम निकल जानेका उन्होने कुछ विरोध-सा किया, मगर दरअसल तो उन्होने मुझे इसपर बधाई ही दी। "काग्रेसको या किसीको भी अब आपको नाराज नही करना चाहिए। आप तो अपने रास्ते जाए। आपने अग्रेजोके प्रति जो लिखा है, वह मैंने देखा है। वे लोग सुननेवाले नही, पर आपको इससे क्या पडी है ? आपका काम तो जिसको आप धर्म मानते हैं, वह सबको सुनानेका ही है। देखो न, अडीके समय काग्रेसने ही आपकी न सुनी। स्वय व्यासकी किसीने नही सुनी तो किसी दूसरेकी तो बात ही क्या है ! महाभारत जैसा ग्रथ लिखकर अन्तमे उन्होने एक श्लोक लिखा है, जो 'भारत-सावित्री' के नामसे प्रख्यात है।" यह कहकर ऊपर लिखा श्लोक मुझे सुनाया। यह श्लोक सुनाकर उन्होने मेरी श्रद्धाको दृढ किया और बताया कि मैंने जो मार्ग पसन्द किया है वह दुर्गम है। (ह० से०, १३ ७ ४०)

: ४ :

डॉ० मुख्तार अहमद अंसारी

आगामी वर्षके लिए डा० असारीका महासभाके अध्यक्ष-स्थानके लिए चुनाव होना प्राय निश्चित-सा है। राष्ट्रीय क्षितिजपर इस चुनावमे आपत्ति करनेवाला कोई नही है। डा० असारी जितने अच्छे मुसलमान

हैं, उतने ही अच्छे भारतीय भी हैं। उनमे धर्मोन्मादकी तो किसीने शका ही नही की है। वर्षोंतक वे एक साथ महासभाके सहमत्री रहे हैं। हाल हीमें एकताके लिए किये गए उनके प्रयत्नोको तो सब कोई जानते हैं और सच्ची बात तो यह है कि अगर बेलगावमे मैं, कानपुरमे श्रीमती सरोजिनी नायडू और गोहाटीमें श्रीयुत श्रीनिवास आयगार मार्गमें न आते तो इनमेसे किसी भी अधिवेशनके अध्यक्ष डा० असारी ही चुने जाते, क्योकि जब ये चुनाव हो रहे थे तब उनका नाम प्रत्येक आदमीकी जबानपर था, परन्तु कुछ खास कारणोसे डा० असारीका हक आगे बढ़ा दिया गया और अब ज्ञात होता है कि विधिने उनके चुनावको इसीलिए आगे ढकेल दिया था कि वे ऐसे मौकेपर आवे जब देशको उनकी सबसे अधिक जरूरत हो। अगर हिन्दू-मुसलिम एकताकी कोई योजना दोनो पक्षोको ग्रहण करने योग्य मालूम हो तो नि सन्देह डा० असारी ही उसे महासभाके द्वारा कर ले जा सकते हैं।. .अकेली यही बात (सर्व-सम्मतिसे और हृदयसे एक मुसलमानको अपना अध्यक्ष चुनना) हिन्दुओकी ओरसे इस बातका साफ प्रमाण होगा कि हिन्दू एकताको दिलसे चाहते है, और राष्ट्रीय विचारोवाले मुसलमानोमें डा० असारीकी अपेक्षा साधारणतया मुसलमान जनतामे अधिक आदृत कोई नही है। इसलिए मेरे खयालसे तो यही अच्छा है कि अगले सालके लिए डा० असारी ही राष्ट्रीय महासभाके कर्णधार हो, क्योकि केवल किसी योजनाको मजूर कर लेना ही हमारे लिए काफी नही है। दोनो पक्षो द्वारा उसे मजूर करानेकी बनिस्बत उसे कार्यमे परिणत करना शायद कही अधिक जरूरी है। और यदि हम मान ले कि दोनो पक्षोका समाधान करनेवाली एक योजना मजूर हो भी गई तो उसपर अमल करते समय बराबर सावधानीकी आवश्यकता होगी। डा० असारी ही ऐसे कामके लिए सबसे अधिक योग्य पुरुष हैं। इसलिए मैं आशा करता हू कि सभी प्रान्त एकमतसे डा० असारीके नामको ही उस सर्वोच्च सम्मानके लिए

सूचित करेंगे जो कि राष्ट्रीय महासभाके अधीन है। (हि. न., २१ ७ २७)

'हरिजन'मे उन सब महान् पुरुषोकी मृत्युपर, जो इस ससारसे सिधार जाते है, साधारणतया मै लिखता नही हू । 'हरिजन' एक विशेष प्रवृत्तिसे सबंध रखनेवाला पत्र है । आम तौरपर उन्ही व्यक्तियोके स्वर्गवासके विषयमे इसमें लिखा जाता है जिनका कि हरिजनकार्यके साथ विशेष-रूपसे सम्बन्ध होता है । श्री कमला नेहरूके स्वर्गवासपर मैने 'हरिजन'मे जो नही लिखा उसमे मुझे खास तौरपर अपने ऊपर पाबदी लगानी पडी । ऐसा करके मैने करीब-करीब अपने साथ जुल्म किया । मगर डॉ० अंसारीके स्वर्गवासपर मुझे कोई ऐसा आत्मनिग्रह करनेकी जरूरत नही । कारण यह है कि वे निस्संदेह हकीम अजमल खाकी तरह ही हिंदू-मुस्लिम-ऐक्यके एक प्रतिरूप थे। कडी-से-कडी परीक्षाके समय भी वे अपने विश्वाससे कभी डिगे नही । वे एक पक्के मुसलमान थे । हजरत मुहम्मद साहबकी जिन लोगोने जरूरतके वक्त मदद की थी, वे उनके वशज थे और उन्हे इस बातका गर्व था । इस्लामके प्रति उनमे जो दृढता थी और उसका उन्हे जो अगाढ ज्ञान था उस दृढता और उस ज्ञानने ही उन्हे हिंदू-मुस्लिम-ऐक्यमे विश्वास करनेवाला बना दिया था। अगर यह कहा जाय कि जितने उनके मुसलमान मित्र थे उतने ही हिन्दू मित्र थे तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी । सारे हिन्दुस्तानके काबिल-से-काबिल डॉक्टरोमे उनका नाम लिया जाता था । किसी भी कौमका गरीब आदमी उनसे सलाह लेने जाय, उसके लिए बेरोकटोक उनका दरवाजा खुला रहता था । उन्होंने राजा-महाराजाओ और अमीर घरानोसे जो कमाया वह अपने जरूरतमद दोस्तोमे दोनो हाथोसे खर्च किया । कोई उनसे कुछ मागने गया तो कभी ऐसा नही हुआ कि वह उनकी जेब खाली किये बगैर लौटा हो । और उन्होंने जो दिया उसका कभी हिसाब नही रखा । सैकडो पुरुषो और स्त्रियोके लिए वह एक भारी सहारा थे । मुझे इसमे

तनिक भी सदेह नही कि सचमुच वह अनेक लोगोंको रोते-बिलखते छोड गये है। उनकी पत्नी बेगम साहिबा तो ज्ञानपरायणा है, यद्यपि वह हमेशा बीमार-सी रहती हे। वह इतनी बहादुर है और इस्लामपर उनकी इतनी ऊची श्रद्धा है कि उन्होने अपने प्रिय पतिकी मृत्युपर एक आंसू भी नही गिराया। पर जिन अनेक व्यक्तियोकी मै याद करता हू वे ज्ञानी या फिलॉसफर नही है। ईश्वरमें तो उनका विश्वास हवाई है, पर डॉ० अंसारीमे उनका विश्वास जीवित विश्वास था। इसमे उनका कोई कसूर नही। डॉक्टर साहबकी मित्रताके उनके पास ऐसे अनेक प्रमाण थे कि ईश्वरने जब उन्हे छोड दिया तब डॉक्टर साहबने उन्हें सहायता पहुचाई। पर उन्हे यह क्या मालूम था कि डॉक्टर साहब भी उनकी मदद तभीतक कर सके, जबतक कि सिरजनहारने उन्हे ऐसा करने दिया। जिस कामको वह जीवित अवस्थामे पूरा नही कर सके, ईश्वर करे, वह उनकी मृत्युके बाद पूरा हो जाय। (ह० से०, १६ ५ ३६)

: ५ :

ख्वाजा अब्दुल मजीद

ख्वाजा अब्दुलमजीद आज मुझसे मीठा झगडा करनेके लिए आए थे। वह अलीगढ यूनिवर्सिटीके ट्रस्टी है। उनके पास काफी बड़ी जायदाद है, फिर भी उनका मन तो फकीर है। मै जब वहा जाता था उन्हीके यहा खाना खाता था। उस जमानेमे स्वामी सत्यदेव (परि-व्राजक) मेरे साथ रहते थे। उन्होने हिमालयकी यात्रा की थी। ईश्वरने आज उनकी आखे छीन ली है। उस समय वह बहुत काम करनेवाले थे। उन्होने मुझसे कहा, "मै तेरे साथ भ्रमण करूगा, पर तू

मुसलमानके साथ खाता है, तो मै तो नही खाऊगा ।" यह सुनकर ख्वाजा साहबने कहा, "अगर उनका धर्म ऐसा कहता है तो मै उनके लिए अलग इंतजाम करूगा ।" ख्वाजा साहबके दिलमे यह नही आया कि यह स्वामी गाधीके साथ आया है तो क्यो नही मेरे यहा खाया । पुराने दिन फिर वापस आएगे, जब हिंदू-मुसलमानोके दिलोमे एकता थी । ख्वाजा साहब अब भी राष्ट्रीय मुसलमानोंके प्रेसीडेंट है । दूसरे भी जो राष्ट्रीय भावनावाले मुसलमान लडके उन दिनोमे अलीगढसे निकले थे वे आज जामियाके अच्छे-अच्छे विद्यार्थी और काम करनेवाले बने हुए है । यह सब सहाराके रेगिस्तानमे द्वीप समान है । ख्वाजा साहब ऐसे है कि उनको कोई मार डालेगा तो भी उनके मुहसे बद्दुआ न निकलेगी । ऐसे लोग भले ही थोडे हों, पर हमे तो अपनापन कायम रखना ही चाहिए । (प्रा० प्र०, ६ ४.४७)

. . . .

आप लोग देख रहे है कि मेरी दाहिनी ओर ख्वाजा साहब बैठे हुए है । इनके बारेमे एक बार मै आपको पहले सुना चुका हू कि किस प्रकार मै स्वामी सत्यदेवके साथ इनके घर पहुचा था और सत्यदेवजी मुसलमानके हाथका पानीतक नही पी सकते थे । लेकिन तब भी ख्वाजा साहबने बुरा नही माना और उदार स्वागत किया । उस समय ये अलीगढ यूनिवर्सिटीके ट्रस्टी थे । बादमे असहयोग आदोलनमे शरीक होनेके लिए इन्होने ट्रस्टीपन छोड़ दिया । जहातक मुझे याद है, जब मै वहा गया तब वहा लीगकी मीटिंग हो रही थी । मैने वहा पूछा था कि यहा भी कोई सत्याग्रही मिलेगा या नही ? मौ० मुहम्मदअली और मौ० शौकत-अली तब नजरबद थे और उनके कैद होनेके बारेमे वहा सब मायूस हो रहे थे । तब ख्वाजा साहबने मुझसे कहा था कि आपको ढाई सत्याग्रही मिल सकते है । उनमे एक तो थे रवेब कुरेशी, जो काफी प्रख्यात और बहादुर जवान थे । दूसरे साहब भी जो वहां मौजूद थे, पक्के सत्याग्रही थे । एक बार लोगोंने उन्हें मारा और उनके हाथमे दो जगह चोटें आईं, तब

भी वे शांत रहे और ताकत होनेपर भी मार सहन की, लेकिन जवाबमें हमला नही किया। इन दोनोंका परिचय करानेके बाद ख्वाजा साहबने कहा था कि आधा सत्याग्रही मै हू। और तबसे ख्वाजा साहब मेरे सगे भाईकी तरह बनकर रहे है। (प्रा० प्र०, १२ ६ ४७)

: ६ :

शेख अब्दुल्ला

(काश्मीरमे) शेख अब्दुल्ला साहब हैं। 'शेरे-काश्मीर' उसको कहते है, याने बाघ है, सिंह है। वह बडा तगडा है। आपने उसका चित्र तो देखा ही होगा। मै तो उसको पहचानता भी हू। उसकी बेगमको भी पहचानता हू। बेगम तो आज यहा पडी है। एक आदमीसे जितना हो सकता है वह वे कर रहे है। वे कोई लड़नेवाले तो है नही। यो तो काश्मीरमे तगडे मुसलमान पडे है, तगडे हिंदू भी पड़े है, राजपूत और सिख भी पडे है। तो उसने तय कर लिया है कि जितना हो सकता है वह करूंगा। वह तो मुसलमान है। काश्मीरमे मुसलमानोकी बडी आबादी है। बहासे तो ये लोग बदूक लेकर जाते है, लेकिन वहाके मुसलमान क्या करें और क्या न करें। मानाकि हम तो यहा जाहिल बन गए है, यहा कहो या पाकिस्तानमे कहो, कोई पागलपन बाकी नही रखा है। क्या वहां वे लोग भी जाहिल बन जाय और जिनको काटना है उनको काटें, औरतोको काटें, बच्चोंको काटे, इस बुरे हालसे मरें? यह हाल काश्मीरका हो तो प० जवाहरलाल नेहरू और मत्रिमडलके सभी सदस्योने सोचा कि कुछ-न-कुछ तो किया जाय, तो इतने आदमी भेज दिये। वे क्या करे? इतना ही करे कि आखिरी दमतक लडते रहें और लड़ते-लड़ते मर जाय। जो लड़नेवाले

या शस्त्रधारी होते है उनका यही काम होता है कि वे आगे बढ़ते है और हमला करनेवालोको रोक लेते है। वे मर जाते है, लेकिन पीछे तो कभी हटते नही है। इसका क्या परिणाम होगा, वह तो ईश्वर ही जानता है। लेकिन पुरुषार्थ करना तो हमारा काम है। वह हम करे। तो इन १५०० आदमियोने पुरुषार्थ किया। लेकिन कब, जब वे श्रीनगरके बचानेमें सारे-के-सारे कट जाते हैं। पीछे श्रीनगरके साथ काश्मीर भी बच जायगा। इसके बाद क्या होगा ?

यही होगा न, कि काश्मीर काश्मीरियोंका होगा। शेख अब्दुल्ला जो कहते है वह तो मै सपूर्णतया मानता हू कि काश्मीर काश्मीरियोका है, महाराजाका नही। लेकिन महाराजाने इतना तो कर लिया है कि उन्होने शेख अब्दुल्लाको सब कुछ दे दिया और कह दिया है कि तुमको जो कुछ करना है सो करो। काश्मीरको बचाना है तो बचाओ। आखिर महाराजा तो काश्मीरको बचा नही सकते। अगर काश्मीरको कोई बचा सकता है, तो वहा जो मुसलमान है, काश्मीरी पडित है, राजपूत है और सिख है वे ही बचा सकते है। उन सबके साथ शेख अब्दुल्लाकी मोहब्बत है, दोस्ती है। हो सकता है कि शेख अब्दुल्ला काश्मीरका बचाव करते-करते मर जाते है, उनकी जो बेगम है वह मर जाती है, उनकी लड़की भी मर जाती है और आखिरमे काश्मीरमें जितनी औरते पडी है, वे सब मर जाती है, तो एक भी बूद पानी मेरी आखोमेसे आनेवाला नही है। अगर लड़ाई होना ही हमारे नसीब मे है तो लडाई होगी। दोनोंको ही लडना है या किस-किसके बीच होगी, यह तो भगवान ही जानता है। हमला-वरोकी पीठपर अगर पाकिस्तानका बल नही है या पाकिस्तानका उसमे कोई उत्तेजन नही है, तो वे वहा कैसे टिक सकते है, यह मै नही जानता। लेकिन माना कि पाकिस्तानकी उत्तेजना नही है, तो नही होगी। जब काश्मीर-के लोग लड़ते-लड़ते सब मर जायगे तो काश्मीरमें कौन रह जायगा ? शेख अब्दुल्ला भी चले गए, क्योंकि उनका सिहपन, बाघपन तो इसीमे

है कि वे लड़ते-लड़ते मर जाते है और मरते दमतक उन्होंने काश्मीरको बचाया, वहाके मुसलमानोको तो बचाया ही, उसके साथ वहांके सिख और हिंदुओंको भी। वे ठेठ मुसलमान हे। उनकी बीबी भी नमाज पढती है। उन्होने मधुर कठसे मुझे 'ओज अबिल्ला' सुनाया था। मैं तो उनके घर पर भी गया हू। वे मानते है कि जो हिंदू और सिख यहा है वे पहले मरे और मुसलमान पीछे, यह हो नही सकता। वहा हिंदू और सिखकी तादाद कम है, तो भी क्या हुआ। अगर शेख अब्दुल्ला ऐसे हे और उनका असर मुसलमानोपर है तो हमारा सबका क्षेम है। (प्रा० प्र०, २६.१०.४७)

...

आपने यह भी देख लिया होगा कि शेख अब्दुल्ला साहब भी यहा आ गए हे। जितने काश्मीरके लोग है वे तो सब उनको 'शेरे-काश्मीर' कहते है। और वह है भी ऐसा ही। बहुत काम उन्होने कर लिया है और सबसे आला दर्जेका काम तो उन्होने यह किया कि काश्मीरमे जितने हिंदू, मुसलमान और सिख रहते है उन सबको अपने साथ ले लिया है। तादादमे तो मुसलमान बहुत अधिक है और हिंदू और सिख तो मुट्ठीभर है, ऐसा हम कह सकते है, लेकिन तो भी उनको अपने साथ लेकर वे चलते है। वे खुश न रहे ऐसा कोई काम वे नही करते। पीछे हमने देखा कि वे यहा आते हुए जम्मू भी चले गए थे। जम्मूमे हिदुओकी तरफसे ज्यादतियां हुई है और काफी ज्यादतिया हुई है। उनका पूरा-पूरा बयान तो हमारे अखबारोमे नही आया। महाराजा साहब भी वहा चले गए थे और उनके नए प्रधान मत्री भी। तब वहा दो प्रधान मत्री है क्या, या कुछ और है, मजाकमे मैं उनसे पूछ रहा था। उन्होने कहा कि मुझको भी यह पता नही, मगर इतना तो है कि मै वहाका इतजाम कर रहा हू, दो हों या एक हो। तो वे भी जम्मूमे चले गए थे। जम्मूमे जो कुछ हुआ, वह महाराजाने करवाया या उनके जो नए प्रधान मत्री है उन्होंने करवाया, इसका तो मुझको पता नही, लेकिन वहा हुआ और हमारे लिए यह बडी शर्मनाक

बात है कि हम ऐसा करे। शेख अब्दुल्लाने यह सब देखकर भी अपना दिमाग बिगडने नही दिया और जम्मूमे जो हिंदू पडे है उन्होंने भी उनका साथ दिया। (प्रा० प्र०, २७.११.४७)

: ७ :

डा० भीमराव अम्बेडकर

डा० अम्बेडकरके प्रति और अछूतोका उद्धार करनेकी उनकी इच्छाके प्रति मेरा सद्भाव और उनकी होशियारीके प्रति आदर होनेके बावजूद मुझे कहना चाहिए कि वे इस मामलेमे बड़ी भयकर भूल कर रहे है। उन्हे कडवे अनुभवोमेसे गुजरना पड़ा है, शायद इस कारण अभी उनकी विवेक-बुद्धि इस चीजको नही समझ पा रही है। ऐसे शब्द कहते हुए मुझे दुःख होता है। मगर यह न कहू तो प्राणोसे प्यारे इन 'अछूतो' के हितोके प्रति मै वफादार नही रह सकता। सारी दुनियाके राज्यके लिए भी मै उनके हकोकी कुरबानी नही करूगा। डा० अम्बेडकर तमाम हिंदुस्तानके 'अछूतो' की तरफसे बोलनेका दावा करते है, मगर उनका यह दावा सही नही है, यह बात मै पूरी जिम्मेदारीके साथ कहता हू। उनके कहनेके अनुसार तो हिंदू-समाजमे फूट पड जायगी। इसे शातिसे देखते रहना मेरे लिए सभव नही है। (१३ ११ ३१ को लदनमे अल्पमत समिति-की आखिरी बैठकमे दिये गए भाषणसे)

• •

बाते उसने बहुत मीठी की। उसमे सिद्धात तो नही है, मगर ये सारी बातें सीधे ढगसे की। उसने यह भी कहा कि मुझे राजनैतिक सत्ता चाहिए थी सो मिल गई। अब मुझे तो राष्ट्रीय काम करना है। अब मै आपके

काममें रोडे नही अटकाऊगा । एम० सी० राजा यहासे जाकर आर्डिनेस बिलका समर्थन करे, वैसा मुझसे नही हो सकता । मैने तो अपने आदमियोसे कह दिया—अब तुम मुझसे इस काममें बहुत आशा न रखना । अब मुझे अपनी शक्ति देशके काममे खर्च करनी होगी । मगर आप बाहर निकलकर देशका काम शुरू करे तब हो । योही कुछ नही हो जायगा ।

अपने बारेमे कहा—कहा जाता है कि सरकार मुझे रुपया देती है । मेरे जैसा भिखारी कोई नही । तीन सालसे मेरी कुछ भी कमाई नही । यह काम करते हुए मुझे अपना रुपया खर्च करना पडता है और मेरे मुकदमोका काम कम होता है । सार्वजनिक कामके लिए समय भी जाता है और रुपया भी खर्च होता है । थोडे-थोडे मुकदमे मिलते है, उनसे अपना गुजर चलाता हू । आज भी सावतवाडीमे एक मुकदमा है । वहा जाते हुए रास्तेमें उतर गया हू । (म० डा०, भाग २, १७ १० ३२)

इसमे (अम्बेडकरमे) त्यागशक्ति है । कुरबानी करनेकी शक्ति है । यह दावानल तो सुलगेगा ही । हम हिंदू यदि सच्चे होगे तो यरवदा-समझौतेकी तो स्वर्णभस्म बना सकेगे, नही तो चार करोड अस्पृश्य सारे हिंदुस्तानका भक्षण कर जायगे । (म० डा०, भाग २, ३ १२ ३२)

.. ..

गत मई मास (सन् १९३६) मे लाहौरके 'जात-पात-तोडक मडल' का वार्षिक अधिवेशन होनेवाला था और डा० अम्बेडकर उसके सभापति चुने गये थे । लेकिन डा० अम्बेडकरने उसके लिए जो भाषण तैयार किया वह स्वागत-समितिको अस्वीकार्य प्रतीत हुआ, जिसके कारण वह अधिवेशन ही नही किया गया । यह बात विचारणीय है कि स्वागत-समितिका अपने चुने हुए सभापतिको इसलिए अस्वीकार कर देना कहातक उचित है कि उनका भाषण उसे आपत्तिजनक मालूम पडा । जाति-प्रथा और हिंदू-शास्त्रोके विषयमें डा० अम्बेडकरके

जो विचार है उन्हें तो समिति पहलेसे ही जानती थी। यह भी उसे मालूम था कि वह हिंदू-धर्म छोडनेका बिलकुल स्पष्ट निर्णय कर चुके है। डा० अम्बेडकरने जैसा भाषण तैयार किया उससे कमकी उनसे उम्मीद ही नही की जा सकती थी। लेकिन समितिने, ऐसा मालूम पडता है, एक ऐसे व्यक्तिके मौलिक विचार सुननेसे जनताको वचित कर दिया, जिसने कि समाजमे अपना एक अद्वितीय स्थान बना लिया है। भविष्यमे वह कोई भी बाना क्यो न धारण करे, मगर डा० अम्बेडकर ऐसे आदमी नही है जो अपनेको भूल जाने देगे।

डा० अम्बेडकर स्वागत-समितिसे यो हार जानेवाले नही थे। उसके इन्कार कर देनेपर, उसके जवाबमे उन्होने उस भाषणको अपने ही खर्चेसे प्रकाशित किया है। उन्होने आठ आने उसकी कीमत रखी है, लेकिन मै उनसे कहूगा कि वह उसे घटाकर दो आना या कम-से-कम चार आना कर दे तो ठीक होगा।

यह भाषण ऐसा है कि कोई सुधारक इसकी उपेक्षा नही कर सकता। रूढिचुस्त लोग भी इसे पढकर लाभ ही उठायेगे। लेकिन इससे यह नही समझना चाहिए कि भाषणमे ऐतराज करने लायक कोई बात नही है। इसे तो पढना ही इसलिए चाहिए, क्योकि इसमे गहरे ऐतराजकी गुजाइश है। डा० अम्बेडकर तो हिन्दू-धर्मके लिए मानो एक चुनौती है। हिंदूकी तरह पलने और एक जबरदस्त हिंदू द्वारा शिक्षित किये जानेपर भी, सवर्ण कहे जानेवाले हिंदुओं द्वारा अपने और अपनी जातिवालोके साथ होनेवाले व्यवहारसे वह इतने निराश हो गये है कि वह न केवल उन्हे, बल्कि उस धर्मको भी छोडनेका विचार कर रहे है जो उनकी तथा और सबकी सयुक्त विरासत है। उस धर्मको माननेका दावा करनेवाले एक भागके कारण सारे धर्मसे ही वह निराश हो गये है।

लेकिन इसमे अचरजकी कोई बात नही है; क्योकि किसी प्रथा या संस्थाका निर्णय कोई उसके प्रतिनिधियोके व्यवहारसे ही तो कर सकता

है। अलावा इसके, डा० अम्बेडकरको मालूम पडा है कि सवर्ण हिंदुओके विशाल बहुमतने अपने उन सहधर्मियोके साथ, जिन्हे उन्होंने अस्पृश्य शुमार किया है, न केवल निर्दयता या अमानुषिकताका ही व्यवहार किया है, बल्कि अपने व्यवहारका आधार भी अपने शास्त्रोके आदेशको बनाया है और जब उन्होने शास्त्रोको देखना शुरू किया तो उन्हें मालूम पडा कि सचमुच उनमे अस्पृश्यता और उसके लगाये जानेवाले तमाम अर्थोंकी काफी गुजाइश है। शास्त्रोके अध्याय और श्लोक उद्धृत कर-करके उन्होने तिहेरा दोषारोप किया है · (१) उनमे निर्दय व्यवहार करनेका आदेश है, (२) ऐसा व्यवहार करनवालोके व्यवहारका धृष्टता-पूर्वक समर्थन किया गया है, और (३) परिणामस्वरूप यह अनुसधान किया गया है कि यह समर्थन शास्त्र-विहित है।

ऐसा कोई भी हिंदू, जो अपने धर्मको अपने प्राणोसे अधिक प्यारा समझता है, इस दोषारोपकी गभीरताकी उपेक्षा नही कर सकता, और फिर इस तरह निराश होनेवाले अकेले डा० अम्बेडकर ही नही है। वह तो उनमेके एक ऐसे व्यक्तिमात्र है जो इस बातके प्रतिपादनमे कोई समझौता नही करना चाहते और ऐसे लोगोमे वे सबसे योग्य है। निश्चय ही इन लोगोमे वह अत्यत जिद्दी स्वभावके है। ईश्वरकी कृपा समझो जो बडे नेताओमे ऐसे विचारके वही अकेले है और अभी भी वह एक बहुत छोटे अल्पमतके ही प्रतिनिधि है। मगर जो कुछ वह कहते है, कम या ज्यादा जोशके साथ वही बाते दलित जातियोके और नेता भी कहते है। फर्क सिर्फ इतना है कि दूसरे—जैसे, रावबहादुर एम० सी० राजा और दीवान-बहादुर श्रीनिवासन्—हिन्दू-धर्म छोडनेकी धमकी नही देते, पर उसीमें इतनी गुजाइश देखते है कि जिससे हरिजनोके विशाल जन-समूहको जो शर्मनाक कष्ट भोगना पड़ रहा है उसकी क्षति-पूर्ति हो जायगी।

पर उनके अनेक नेता हिंदू-धर्मको नही छोड़ते, इसी बातसे हम डॉ० अम्बेडकरके कथनकी उपेक्षा नही कर सकते। सवर्णोंको अपने विश्वास

और आचरणमे सुधार करना ही पडेगा। इसके अलावा, सवर्णोंमे जो लोग अपने ज्ञान और अनुभवके आधारपर शास्त्रोकी प्रामाणिक व्याख्या कर सकें उन्हे शास्त्रोके यथार्थ आशयका भी स्पष्टीकरण करना होगा। डॉ० अम्बेडकरके दोषारोपसे जो प्रश्न उठते है, वे ये है

(१) शास्त्र क्या है ?

(२) आज जो-कुछ छपा हुआ मिलता है वह सभी क्या शास्त्रोका अभिन्न भाग है, या उनके किसी भागको अप्रामाणिक क्षेपक मानकर छोड़ देना चाहिए ?

(३) इस तरह काट-छाटकर जिस अशको हम स्वीकार करे वह अस्पृश्यता, जाति-प्रथा, दर्जेकी समानता, सहभोज और अतर्जातीय विवाहो-के सबधमे क्या कहता है ? इन सब प्रश्नोकी अपने निबधमे डॉ० अम्बेडकरने योग्यतापूर्वक छानबीन की है। (ह० से०, ११.७.३६)

. . .

अम्बेडकर साहबसे तो दूसरी आशा ही नही थी। वह मेरा हमेशा विरोधी रहा है। वह मुझे मार भी डाले तो मुझे अफसोस न होगा। (का० क०, २०.६ ४२)

: ८ :

बी अम्मा

यह मानना मुश्किल है कि बी अम्माका देहात हो गया है। बी अम्माकी उस राजसी मूर्तिको या सार्वजनिक सभाओंमे उनकी बुलद आवाजको कौन नही जानता। बुढापा होते हुए भी उनमे एक नवयुवककी

शक्ति थी। खिलाफत और स्वराज्यके लिए उन्होंने अथक यात्राएं की। इस्लामकी कट्टर अनुयायिनी होते हुए भी उन्होने देख लिया था कि इस्लामका कार्य, जहातक मनुष्यके बस की बात है, भारतकी आजादीपर आधारित है। इसी निश्चयके साथ उन्होने यह भी महसूस कर लिया था कि हिन्दुस्तानकी आजादी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और खादीके बिना असम्भव है। इसलिए वे अविराम एकताका प्रचार करती थी। यह उनके लिए एक अटल सिद्धात हो गया था। उन्होंने अपने तमाम विदेशी और मिलके कपडोका परित्याग कर दिया था और खादी इस्तेमाल करती थीं। मौलाना मुहम्मदअली मुझसे कहते है कि बी अम्माने उन्हे यह हुक्म दे रक्खा था कि मेरे जनाजेपर सिवा खादीके और कुछ न होना चाहिए। जब-जब मुझे उनके बिछौनेके नजदीक जानेका सौभाग्य प्राप्त होता तब-तब वे स्वराज्य और एकताकी बाते पूछतीं। उनके बाद ही प्राय. वे खुदा-तालासे दुआ करती—"या खुदा, हिदुओ और मुसलमानोको ऐसी अक्ल बख्श कि जिससे ये एकताकी जरूरतको समझे और रहम करके स्वराज्य देखनेके लिए मुझे जिंदा रहने दे।" इस बहादुर और भद्र आत्माकी याद-गारको बनाए रखनेकी सबसे अच्छी रीति यही है कि हम सर्व-सामान्य कार्योंके प्रति उनके उत्साह और उमगका अनुकरण करे। हिदू धर्म भी बिना स्वराज्यके उतना ही सकटमे है जितना कि इस्लाम। परमात्मा करे कि हिदुओ और मुसलमानोको इस प्रारभिक बातकी कदर करनेकी बी अम्मा जैसी बुद्धि दे। परमात्मा उनकी आत्माको शाति और अली-भाइयोको उनके सौपे कार्यको जारी रखनेकी शक्ति दे।

बी अम्माकी मृत्युकी रातके उस गभीर और प्रभावकारी दृश्यका वर्णन किये बिना मै नही रह सकता। उस समय मुझे उनके पास ही रहने-का सद्भाग्य प्राप्त हुआ था। यह सुनते ही कि अब वे अपने जीवनकी अन्तिम सासे ले रही है मै और सरोजिनी देवी वहा दौडे गये। उनके कुटुबके कितने ही लोग आसपास जमा थे। उनके डाक्टर और हितचितक

डा० असारी भी मौजूद थे। वहा रोनेकी आवाज नही सुनाई देती थी, अलबत्ते मौ० मुहम्मदअलीके गालोंपरसे आसू जरूर टपक रहे थे। बडे भाईने बडी कठिनाईसे अपने शोकावेगको रोक रक्खा था। हा, उनके चेहरेपर एक असाधारण गभीरता अलबत्ते थी। सब लोग अल्लाका नामोच्चार कर रहे थे। एक सज्जन अत समयकी प्रार्थना गा रहे थे। 'कामरेड प्रेस' बी अम्माके कमरेके इतना पास है कि आवाज सुनाई दे सकती है। परतु एक मिनिटके लिए वहाके काममे गडबड नही हुई और न मौलानाने ही अपने सपादकीय कर्तव्योमे रुकावट आने दी। और सार्वजनिक काम तो कोई भी मुल्तवी नही किया गया। मौलाना शौकतअलीने तो सपने तकमे न सोचा था कि मै अपना रामजस कालेज जाना मुल्तवी करूगा। वे एक सच्चे सिपाहीकी तरह मुजफ्फरनगरके हिंदुओको दिये गए निश्चित समयपर उनसे मिले हालाकि बी अम्माकी मृत्युके बाद उन्हे तुरत ही वहासे चला जाना पडा था। यह सब जैसा कि होना चाहिए था वैसा ही हुआ। जन्म और मरण, ये दो भिन्न-भिन्न दशाए नही है, बल्कि एक ही दशाके दो भिन्न-भिन्न स्वरूप है। न मृत्युसे दुखी होनेकी जरूरत है, न जन्मसे खुशी मनानेकी। (हि० न०, २३.११.२४)

: ६ :

राजकुमारी अमृतकौर

आज मै सोचता हू और यह समझनेकी बात है कि एक क्रिस्टी बहन——उसे आप जानते है——राजकुमारी अमृतकौर, वह तो हेल्थ मिनिस्टर (स्वास्थ्य-मत्री) है, जितने लोग कैंपोमे पडे है, हिंदू-मुसलमान, सबके लिए वह कुछ करना चाहती है। मगर उसे किसीका सहारा न मिले तो

वह क्या कर सकती है ? वह पक्षपात तो कर नही सकती । जो कुछ हो सकता है सबके लिए करती है । वह थोडी क्रिस्टी भी है, थोड़ी मुसलमान भी है, थोडी हिंदू भी, इसलिए उसके सामने सब धर्म एक समान है । वह चली गई और उसके साथ लडकिया भी गईं, वे सब तो सेवाके लिए गई थी । सेवामे डर क्या ? लेकिन उन्होने मुझको सुनाया कि वहा जो हिंदू, सिख पडे है वे कहते है कि खबरदार, तुम मुसलमानोकी सेवा करनेके लिए जाती हो तो यहासे भागना होगा । जब मैंने यह सुना तो हँस दिया । वह कहनेकी बात थी, कुछ करना थोडे ही था । (प्रा० प्र० २७.६.४७)

: १० :

अरविन्द घोष

अरविन्दबाबूके बारेमे मै कुछ भी कहनेमे असमर्थ हू । . . इतना तो अवश्य कबूल करना पडेगा कि अरविन्दबाबूकी छायाके नीचे रहनेवाले दो सौ आदमियोमे ऐसे लोग है जिनके जीवनमे उनके सहवासके कारण बडे परिवर्तन हुए है । प्रत्येक अपने-अपने स्वभावके अनुसार अनुकरण करता है । (२८ ५ ३५को बोरसदसे लिखे एक पत्रसे)

. . . .

अरविंदका आश्रम क्या चीज है यह भी तो आपको जानना चाहिए । यो तो वहा लोगोकी एक धारा चल रही है । वहा हमेशा काफी लोग जाते है । उनके काफी भक्त है, हिंदू क्या, मुसलमान क्या, किसीके लिए वहां घृणा तो है ही नही । सर अकबर हैदरी, अब तो वह मर गए,

प्रतिवर्ष वहां जाते थे, उसका तो मैं गवाह हूं। श्रीअरविंद तो दीनभक्त है, किसीसे मिलते नही है। ऊपरसे उनका दर्शन हुआ तो हुआ, नही हुआ तो नही, लेकिन लोग जाते थे। उनके पास यह रहते है। इनके दिलमें भी ऐसी कोई घृणा नही है। तो इतना तो हम सीख लें कि हमारे दिलमें क्यों घृणा होनी चाहिए। (प्रा० प्र०, २६.१०.४७)

: ११ :

लार्ड अर्विन

आज अर्विनपर हॉर्निमैनका लेख है। इसने उसे चालाक मौकापरस्त बताया है।

["यह चालाक अवसरवादी है। अपनी असंगतताओं तथा सिद्धांतों और नीतिके परिवर्त्तनोंको सच्चेपनके आग्रह और सचाईके दंभी स्वांगके मोटे पर्देके नीचे ढंकना चाहता है।

"वह एक बार साइमन कमीशनके हिमायतीके रूपमें खड़ा हुआ, फिर नरम दलवालोंका विरोध देखकर झुक गया। एक बार उसने सविनयभंगकी लड़ाईको लाठी और आर्डिनेंससे कुचलनेकी कोशिश की। बादमें कांग्रेसका जोर देखा तो झुक गया। उसकी सचाईकी बातोंसे अरुचि होती है। अब ये बंद हो जायं तो ही अच्छा। अगर वह गोलमेज परिषदको फिर जिंदा करा दे तो जरूर उसकी सचाईके बारेमें विचार किया जायगा।"]

मैं इस विचारका नही। इस आदमीमे सचाई है, इस अर्थमे कि उसमें उखाड-पछाड नही, दावपेच नही। वह सीधी-सादी बात करनेवाला है। साइमनके समय उसे वह बात अच्छी नही लगती थी, मगर

उसने विचार कर लिया कि अनुदार दलके नाते जो नीति अपना ली गई है उसके खिलाफ न जाया जाय। उसके खरेपनकी भी हद है और वह हद यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य अखण्ड रहे। उसे खतरा हो तो वह वचनभगका भी विरोध नही करेगा। वह ब्रिटिश साम्राज्यको ईश्वरकी एक अद्भुत कृति मानने वाला है—जैसा कि हरएक अनुदार दलवाला मानता है--और उसी दृष्टिसे वह सब चीजोको देखता है। मगर वह खरा हो या न हो इससे क्या सरोकार ? हमारा तो वास्ता इस बातसे है कि हमे जो चाहिए वह मिलता है या नही। (म० डा०, भाग १, १६ ७ ३२)

: १२ :

अली-बन्धु

(मौलाना शौकत अली और मुहम्मद अली)

शौकतअली सरल और मिलनसार आदमी है, पर कट्टर है और किसीका उन्हे भय या दबाव नही है। (य० इ०, २३.६.२०)

मौ० शौकतअली तो बडे-से-बडे शूरवीरोंमेसे एक है। उनमे बलिदान-की अद्भुत योग्यता है और उसी तरह खुदाके मामूली-से-मामूली जीवको चाहनेकी उनकी प्रेम-शक्ति भी अजीब है। वे खुद इस्लामपर फिदा है, पर दूसरे धर्मोंसे वे घृणा नही करते। मौ० मुहम्मदअली इनका दूसरा शरीर है। मौ० मुहम्मदअलीमे मैने बडे भाईके प्रति जितनी अनन्य निष्ठा देखी है उतनी कही नही देखी। उनकी बुद्धिने यह बात तय कर ली है कि हिंदू-मुसलमान एकताके सिवा हिंदुस्तानके छुटकारेका कोई रास्ता नही।

उनका 'पैन इस्लामवाद' हिंदू विरोधी नही है। इस्लाम भीतर और बाहरसे शुद्ध हो जाय और बाहरके हर किस्मके हमलोसे सगठित होकर टक्करें ले सके ऐसी स्थिति देखनेकी तीव्र आकाक्षापर कोई कैसे आपत्ति कर सकता है ? कोकोनाडाके उनके भाषणका एक हिस्सा बहुत ही आपत्तिजनक बताकर मुझे दिखाया गया था। मैने मौलानाका ध्यान उसपर खीचा। उन्होने उसी दम स्वीकार किया कि हा, वास्तवमे यह भूल हुई। कुछ दोस्तोने मुझे सूचना दी है कि मौ० शौकतअलीके खिलाफत-परिषद्वाले भाषणमे कितनी ही बाते आपत्तिजनक है। यह भाषण मेरे पास है, परतु उसे पढनेका मुझे समय नही मिल पाया। यह मै जरूर जानता हू कि यदि उसमे सचमुच कोई ऐसी बात होगी जिससे किसीका दिल दुखी हो तो मौ० शौकतअली ऐसे लोगोमे पहले व्यक्ति है जो उसको ठीक करनेके लिए तैयार रहते है।

यह बात नही कि अलीभाई दोषोसे खाली हो। मै खुद भी दोषोसे भरपूर हू। इससे इन भाइयोकी दोस्तीकी खोज करने और उसकी कीमत समझनेमे हिचकिचाता नही। अगर उनके अदर कुछ ऐब है तो उनसे ज्यादा गुण भी है और मै उनके ऐबोके रहते हुए भी उन्हे चाहता हू।

यदि हममेंसे बहुतेरे लोग पूर्णताको पहुचे हुए होते तो हमारे अदर झगडे होते ही क्यो ? पर हम सब अपूर्ण प्राणी है और इसीसे हम सबको एक दूसरेकी अनुकूल बाते खोजकर और ईश्वरपर भरोसा रखकर ध्येयके लिए मरना चाहिए। (हि० न०, १.६.२४)

. . . .

जिस समय खेडाका आदोलन जारी था, उसी समय यूरोपका महा-समर भी चल रहा था। उसके सिलसिलेमे वायसरायने दिल्लीमे नेताओको बुलवाया था। मुझे भी उसमें हाजिर रहनेका आग्रह किया था। मैं यह पहले ही लिख चुका हूं कि लार्ड चेम्सफोर्डके साथ मेरा मैत्री-संबंध था।

मैंने आमन्त्रण मजूर किया और दिल्ली गया; किंतु इस सभामें शामिल होनेमें मुझे एक सकोच था। इसका मुख्य कारण यह था कि उसमे अली-भाइयो, लोकमान्य तथा दूसरे नेताओको नही बुलाया गया था। उस समय अली-भाई जेलमे थे। उनसे मै एक-दो बार ही मिला था। सुना उनके बारेमे बहुत-कुछ था। उनके सेवा-भाव, बहादुरीकी स्तुति सभी कोई किया करते थे। हकीम साहबके साथ भी मेरा परिचय नही हुआ था। स्व० आचार्य रुद्र और दीनबधु एड्रूजके मुहसे उनकी बहुत प्रशसा सुनी थी। कलकत्तावाले मुस्लिम-लीगके अधिवेशनमे श्वेब कुरेशी और बैरिस्टर ख्वाजासे मेरी मुलाकात हुई थी। डाक्टर असारी और डाक्टर अब्दुर्रहमानसे भी परिचय हो चुका था। भले मुसलमानोकी सोहबत मै ढूढता था और उनमे जो पवित्र तथा देशभक्त समझे जाते थे उनके सपर्कमे आकर उनकी भावनाए जाननेकी मुझे तीव्र इच्छा रहती थी। इसलिए मुझे वे अपने समाजमे जहा कही ले जाते, मै बिना कोई खीच-तान कराए ही चला जाता था। यह तो मै दक्षिण अफ्रीकामें ही समझ चुका था कि हिंदुस्तानके हिंदू-मुसलमानोमे सच्चा मित्राचार नही है। दोनोके मन-मुटावको मिटानेका एक भी मौका मै योही जाने नही देता था। झूठी खुशामद करके या स्वत्त्व गवाकर किसीको खुश करना मै जानता ही नही था, किंतु मै वहीसे यह भी समझता आया था कि मेरी अहिंसाकी कसौटी और उसका विशाल प्रयोग इस ऐक्यके सिलसिलेमे ही होनेवाला है। अब भी मेरी यह राय कायम है। प्रतिक्षण मेरी कसौटी ईश्वर कर रहा है। मेरा प्रयोग आज भी जारी है।

इन विचारोको साथ लेकर मै बबईके बदर पर उतरा था। इसलिए इन भाइयोका मिलाप मुझे अच्छा लगा। हमारा स्नेह बढता गया। हमारा परिचय होनेके बाद तुरत ही सरकारने अली-भाइयोको जीते-जी ही दफन कर दिया था। मौलाना मुहम्मदअलीको जब-जब इजाजत मिलती, वह मुझे बैतूल जेलसे या छिंदवाडा जेलसे लबे-लबे पत्र लिखा

करते थे। मैने उनसे मिलने जानेकी प्रार्थना सरकारसे की, मगर उसकी इजाजत न मिली।

अली-भाइयोके जेल जानेके बाद मुस्लिम-लीगकी सभामें मुझे मुलसमान भाई ले गये थे। वहा मुझसे बोलनेके लिए कहा गया था। मै बोला। अली-भाइयोको छुडानेका धर्म मुसलमानोको समझाया।

इसके बाद वे मुझे अलीगढ कालेजमे भी ले गये थे। वहा मैने मुसलमानोको देशके लिए फकीरी लेनेका न्यौता दिया था।

अली-भाइयोको छुडानेके लिए मैने सरकारके साथ पत्र-व्यवहार चलाया। इस सिलसिलेमे इन भाइयोकी खिलाफत-सबधी हलचलका अध्ययन किया। मुसलमानोके साथ भी चर्चा की। मुझे लगा कि अगर मै मुसलमानोका सच्चा मित्र बनना चाहू तो मुझे अली-भाइयोको छुडानेमे और खिलाफतका प्रश्न न्यायपूर्वक हल करनेमे पूरी मदद करनी चाहिए। खिलाफतका प्रश्न मेरे लिए सहल था। उसके स्वतत्र गुण-दोष तो मुझे देखने भी नही थे। मुझे ऐसा लगा कि उस सबधमें मुसलमानोकी माग नीति-विरुद्ध न हो तो मुझे उसमे मदद देनी चाहिए। धर्मके प्रश्नमे श्रद्धा सर्वोपरि होती है। सबकी श्रद्धा एक ही वस्तुके बारेमें एक ही-सी हो तो फिर जगत्मे एक ही धर्म हो सकता है। खिलाफत-संबधी माग मुझे नीति-विरुद्ध नही जान पडी। इतना ही नही, बल्कि यही माग इग्लैंडके प्रधानमत्री लॉयड जार्जने स्वीकार की थी, इसलिए मुझे तो उनसे अपने वचनका पालन कराने भरका ही प्रयत्न करना था। वचन ऐसे स्पष्ट शब्दोंमें थे कि मर्यादित गुण-दोषकी परीक्षा मुझे महज अपनी अतरात्माको प्रसन्न करनेकी ही खातिर करनी थी। (आ० १९२७)

•

उन्हे (मौ० शौकतअलीको) उर्दू कवियोंके बढिया वचन जबानी याद थे। जब वे ये वचन सुनाते थे और उस जमानेमे जो बाते करते थे, उस

वक्त भी वे ईमानदार थे। आज भी ईमानदार है। मुझे कभी ऐसा नही लगा कि वे झूठ बोलते या धोखा देते थे। आज वे मानते है कि हिन्दू विश्वासपात्र नही है और उनके साथ लड लेनेमे ही कौमका भला है। यह मनोदशा बुरी है। मगर कौमकी सेवा उनके दिलमे है, उनका कोई स्वार्थी हेतु नही है। ऐसे ईमानदार आदमी बहुत मौजूद है।

(म० डा०, भाग १, ४ ७ ३२)

... .

स्व० मौलाना शौकतअलीके स्मारकके बारेमे मैंने कई तजवीजें पढी है। ज्योही मुझे मौलानाकी मृत्युके बारेमे मालूम हुआ, जिसकी कि अभी बिल्कुल ही आशा नही थी, मैंने कुछ मुसलमान मित्रोको उनके साथ अपने अन्तस्तलकी समवेदना प्रकट करते हुए लिखा। उनमेसे एक मित्रने लिखा है .

"...मैं यह जानता हूं कि मौ० शौकतअली अपने खास ढंगसे सच्चा हिंदू-मुस्लिम समझौता करानेके लिए सचमुच चिंतित थे। स्वर्गमें उनकी आत्माको यह जानकर कि उनका एक जीवन उद्देश्य आखिर-कार पूरा हो गया, जितनी शांति मिलेगी उतनी किसी दूसरे कामसे नहीं। ऐसे भी लोग हो सकते हैं, जिन्हें कि इसमें संदेह हो, लेकिन मौलानाको और उनका दिमाग किस तरह काम करता था इसको अच्छी तरह जानकर, जैसा कि मैं उन्हें जानता था, मैं भरोसेके साथ इस बातकी ताईद कर सकता हूं।"

कभी-कभी जो वे जोशमे आकर खिलाफ बोल जाते थे, उसके बावजूद मौलानाके दिलमें एकता और शातिके लिए वही तमन्ना थी जिसके लिए कि वह खिलाफतके दिनोमे बडे मोहक ढगसे बोलते व काम करते थे। मुझे इसमे कोई शक नही कि उनकी यादगारमे हिंदू और मुसलमान दोनो ही कौमोंका एकताके लिए हुआ सयुक्त निश्चय ही सबसे सच्चा स्मारक होगा। खाली कागजी एकताका निश्चय नही, बल्कि दिली एकता-

का, जिसका आधार शक और बेएतबारी नही, बल्कि आपसका विश्वास होगा। कोई दूसरी एकता हमे नही चाहिए और इस एकताके बिना हिंदुस्तानके लिए सच्ची स्वतत्रता प्राप्त नही हो सकती।

(ह० से०, १७ १२.३८)

• • •

आप लोगोने जो इतनी शाति रखी इसके लिए आपको धन्यवाद है। पहले इतनी शाति नही हुआ करती थी। इससे साफ है कि पिछले तीन दिन जो हुआ उससे हमने धर्म नही खोया है। यदि आदमी शातिसे न रहे, कभी अपने विचारोंको भीतरसे न देखे, जीवनभर दौड-दगलमे ही रहे और हर वक्त गरम बना रहे तो वह उस शक्तिको पैदा नही कर सकता, जिसे शौकतअली साहब 'ठडी ताकत' कहा करते थे। मुहम्मदअली साहब भी कहते थे कि हमे अग्रेजोसे लडकर स्वराज्य लेना है और हमारी लडाई होगी तकलीकी तोपोसे और कुकुडियोके गोलोंसे। वह तो जितना विद्वान था, उतना ही कल्पनाए दौडानेवाला था। (प्रा० प्र०, ५ ४ ४७)

: १३ :

हाजी वजीर अली

हाजी वजीर आधे मलायी कहे जा सकते है। उनके पिता भारतीय मुसलमान थे और माता मलायी थी। उनकी मादरी जबानको डच कह सकते है, पर उन्होंने अग्रेजी शिक्षा भी यहाँतक प्राप्त कर ली थी कि वे अग्रेजी और डच दोनों अच्छी तरह बोल सकते थे। अग्रेजीमे भाषण करते वक्त उन्हे कही भी ठहरना नही पडता था। अखबारोमे पत्र वगैरह लिखने-की आदत भी उन्होने कर ली थी। ट्रान्सवाल ब्रिटिश एसोसियेशनके

वे मेम्बर थे और बहुत दिनसे सार्वजनिक हलचलोंमें भाग लेते आए थे। हिंदुस्तानी भी अच्छी तरह बोल सकते थे। एक मलायी महिलाके साथ उनका विवाह हुआ था और उससे उनकी प्रजाका बड़ा विस्तार था।

(द० अ० स०, पृष्ठ १७१)

: १४ :

सी० पी० रामस्वामी अय्यर

मैने अखबारोमे सर सी० पी० रामस्वामीका ऐलान देखा। वे बड़े विद्वान व्यक्ति है। ऐनी बेसेंटके शिष्य रहे है। जब मै हरिजन-यात्रामे था तब उनके निमत्रणपर उनके यहा त्रावनकोरमे मेहमान बनकर गया था। लड़ने नही, पर मिलकर काम करनेको गया था। उनसे यह बात सुनकर अच्छी नही लगती। अगर अखबारमे गलती हो तो वे मुझे माफ करे, सही हो तो मेरी बातपर गौर करें। उन्होने कहा है कि पद्रह अगस्तसे जब हिंदुस्तान स्वतत्र होगा तब त्रावनकोर आजाद हो जायगा। और उनकी वह आजादी ऐसी है कि आजसे ही त्रावनकोरकी स्टेट काग्रेसके लिए सभाबदी कर दी गई है! खबर यहातक है कि सी० पी० रामस्वामीने उन लोगोको त्रावनकोर छोडकर चले जानेके लिए कहा है जो त्रावनकोरकी स्वतत्रताकी मुखालफतमे हो। और यह आज्ञा वे सज्जन दे रहे है जो खुद त्रावनकोरके नही, बल्कि मद्रासके रहनेवाले है! वे किस तरह ऐसा कहते है!

ब्रिटिश राजमे आजतक त्रावनकोरको अग्रेज शाहंशाहीको सलामी देनी पडती थी तो अब हिंदुस्तानके प्रजातत्र सघमे वह मनमानी कैसे कर सकता है? वह अब हमारा राज्य है यानी भारतके प्रजाकीय राज्यको उसे (त्रावनकोरको) अपना ही राज्य समझना चाहिए। मैने बताया है

कि प्रजाकीय राजमे राजा और मेहतरकी कीमत एक-सी रहनेवाली है। मनुष्यके नाते दोनोकी कीमत एक ही रहेगी; पर दोनोकी बुद्धिमत्तामे भेद हो सकता है। अगर त्रावनकोरके महाराजाके पास बडी अकल है तो उन्हें उसे लोगोकी सेवामे लगाना चाहिए। अगर प्रजाको कुचलनेमें वे अपनी बुद्धि दौड़ाते हैं तो उनकी वह अकल फिजूलकी है। अपनी सारी रैयतको कुचलकर और मार डालकर क्या त्रावनकोर नरेश निरी जमीन-पर राज करेंगे ? (प्रा० प्र०, १३.६.४७)

. . . . . .

कल मैंने त्रावनकोरके दीवान सर सी० पी० रामस्वामीकी बात आप लोगोको सुनाई थी। आजकल तो तार और रेडियोका जमाना है। उनके कानोतक मेरी वह बात पहुच गई और उन्होने एक लबा-चौडा तार मेरे पास भेज दिया है। उन्होने बहुतसे खुलासे किये है, पर त्रावनकोर-काग्रेस-कमेटीको सभा करने और जुलूस निकालनेकी इजाजत नही दी है। उसके बारेमें वे कुछ नही बोले है। इसमे मुझे बुराई नजर आती है। यह लक्षण अच्छे नही है। वे कहते है कि त्रावनकोर तो सदासे आजाद रहा है।

सर सी० पी० रामस्वामी तो मेरे दोस्त रहे है, सब बात सही, लेकिन मेरा लडका ही क्यो न हो, सही बात कहनेसे मै क्यो रुकू ? हिंदुस्तान जब आजाद होता है तब अगर वे यही कहते है कि त्रावनकोर आजाद है तो इसका मतलब यह है कि वे आजाद हिंदसे लडना चाहते है।

मै तो उनसे कहूगा कि आप तख्तपरसे नीचे उतरिए और त्रावन-कोरके लोगोके खादिम बनकर रहिए। जब अग्रेजोने आपसे एक बार राज्य छीन लिया और कुछ पैसे लेकर तथा अपनी रैयतको कुचलनेका आपको अधिकार देकर वह राज आपको लौटा दिया तो उसमें इतनी फख्रकी बात क्या थी ? फख्रकी बात तब है जब आप जनताको अपना मालिक माने। वैसे तो हिदुस्तान गिरा नही है और अगर वह अपनी

परेशानीमे पडा है तो यह शराफतकी बात नही है कि आप जो आदमी गिर पडा है उसको ऊपरसे लात धर दे। हिंदुस्तानके एक-चौथाई और तीन-चौथाई ऐसे दो टुकडे होते है तो उन टुकडोकी बातसे आपका कोई सबध नही। आप शरीफ बने और समझें। (प्रा० प्र०, १४.६.४७)

आज फिर मेरे पास त्रावनकोरके दीवान सर रामस्वामीका लबा-चौड़ा तार आया है, जिसमे मुझे समझानेकी कोशिश की गई है कि उनके साथ वहाके ईसाई आदि भी है। पर ऐसे तारसे मुझे बुरा लगता है। कडवी चीजको मीठी बनानेसे वह मीठी नही बन जाती। मूलसे ही इनकी बात बुरी है। 'आ जाओ, हम तो आजाद है।' 'आप किससे आजाद है?' रैयतसे? लोग इस तरह भारतसे आजाद होकर करेंगे क्या? आप इस तरह घुमा-फिराकर बात न करे। सीधी बात करे कि हिंदुस्तानके साथ हम है, तब ही आप अपने राजाके प्रति सच्चे वफादार है, नही तो बेवफा है। (प्रा० प्र०, १७.६.४७)

.. ..

सर सी० पी० कहते है कि गाधी और काग्रेस सरहद्दी सूबेको तो आजादी देनेको तैयार है, परतु त्रावनकोरको नही। इतना बडा विद्वान होकर भी वह कितनी गलत बात करता है। यदि त्रावनकोर अलग हुआ तो हैदराबाद, काश्मीर और इदौर आदि सब अलग हो जायगे। इस तरहसे तो हिंदुस्तानके अनेक टुकडे हो जायगे। इसके अलावा फ्राटियरके खान हिदुस्तानसे पृथक् नही होना चाहते। वे कहते है कि हम पाकिस्तानमे नही जायगे। तब फिर क्या वे हिदुस्तानमे हिदुओंकी गुलामी करेंगे? उनपर काग्रेससे पैसा खानेका इल्जाम लगाया जाता है। कांग्रेस यदि इस तरहसे किसीको पैसा देकर अपनी तरफ करे तो वह अबतक जिदा नही रहती। बादशाह खानने हमे विश्वास दिलाया है कि हिंदुस्तान पहले अपना विधान बना ले। इस दौरानमे वह किसी फैसलेपर पहुच जायगे। मगर रामस्वामी जो कहते है वह बिल्कुल गलत है। फ्राटियरमें

वहा रहनेवाली प्रजाकी आवाज है, जबकि त्रावनकोरमे तो एक राजा और उसका सचिव ही सारी प्रजाकी तरफसे बोल रहा है।

आजकी हालतमे राजा और प्रजा दोनोका एक हक है, यह मेरा दावा है। फ्राटियरकी मिसाल देकर सर सी० पी० लोगोकी आखोमे धूल नही झोंक सकते। इस तरहसे न तो धर्म रहता है और न कर्म रहता है। मै तो रामस्वामीसे यही कहूगा कि सही चीज यही है कि त्रावनकोर राज्य विधान-परिषद्मे आ जाए। (प्रा० प्र०, २४.६.४७)

. . . .

मुझसे यह पूछा गया है कि दक्षिण भारतमे तो हरिजनोके लिए इतना काम हो गया और तामिलनाड तथा आध्रके सब बडे-बडे मदिर हरिजनोंके लिए खोल दिये गये, परतु युक्तप्रातका क्या हुआ ? युक्त-प्रातमे हरिद्वार पडा है। क्या हरिद्वारके मदिरोमे अछूत जा सकते है ? दक्षिण भारतकी त्रावनकोर रियासतमे तो बहुत पहलेसे ही यह सब हो गया था। वहाके दीवान सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर आज तो हमसे बिगड़े हुए है, और बिगडे हुए है भी या नही, यह आज तो मै नही जानता। मगर तब उन्होने वहाके महाराजाको समझाकर अबसे बहुत पहले ही कानून द्वारा अपनी रियासतमे अछूतपनको मिटा दिया था। युक्तप्रातमे हरिद्वारके अलावा काशी विश्वनाथ भी है जहा गगाजीमे स्नान करनेसे मोक्ष मिलता बताया जाता है। वहाके मदिरोमे हरिजन जा सकते है, ऐसा मै नही कह सकता, परतु मै तो यही कहूगा कि जहा हरिजन नही जा सकते वे मदिर नापाक है। (प्रा० प्र०, १६.७.४७)

: १५ :

जनरल यू आंग-सांग

ब्रह्मदेश भी हिंदुस्तानकी तरह आजाद हो रहा है। वहाके नेता जनरल यू आग-सागने आधुनिक बर्माको जन्म दिया और उसे आजादीके दरवाजेपर लाकर छोड दिया। वह सत्याग्रही नही था तो उससे क्या हुआ ? वह एक बहादुर लडाका था और उसीके फलस्वरूप आज बर्मा आजाद होने जा रहा है। एक सशस्त्र गिरोहने उनको और उनके चार अन्य साथियोको कत्ल कर दिया, यह कोई छोटी बात नही है। हम चाहे उनसे कितनी ही दूर हो, मगर हमारे लिए यह बडे रजकी बात है। अगर ऐसी घटनाए होती रही तो दुनियाका क्या हाल होगा ? हत्यारे सचमुच लुटेरे थे, ऐसा मुझे नही लगता। मै बर्मामे काफी रहा हू। रगून और माडले आदि स्थान सब मेरे देखे हुए है। वहा बुद्ध-धर्म चलता है। बर्माके लोग अधिकाश बुद्ध-धर्मको मानते है। जहा बुद्ध-धर्म प्रचलित है वहा ऐसा खून-खच्चर क्यो ? इन हत्याओमे लुटेरूपन नही, बल्कि उनके पीछे कुछ पार्टीबाजी रही है। इस तरहकी लडाइयोने दुनियाका सत्यानाश कर दिया है। इस तरहसे तो जो हमारे मुखालिफ है वे आकर हमारा खून करने लगे तो कैसे काम चलेगा। बर्मा जब आजादीके दरवाजेमे दाखिल हो गया है तब ऐसा होना बहुत दुःखदायी बात है। हम ऐसे जाहिल क्यों बन जाते है ?

मुझे आशा है कि हिंदुस्तान इससे सबक लेगा; क्योकि यह न केवल बर्माके लिए, बल्कि सारे एशिया और ससारके लिए एक दुःखद घटना हुई है। हम सब यह प्रार्थना करे कि हे भगवान, बर्माके जो लोग है वे हमारी ही तरहसे आजादीके लिए तडप रहे है, उनको तू इस दुःखमें सात्वना दे और मृत व्यक्तियोके परिवारोको शोक सहन करनेकी शक्ति

दे ! जिन लोगोने खून किया है उनके दिलोकी भी तबदीली कर। (प्रा० प्र०, २०.७.४७)

: १६ :

मौलाना अबुलकलाम आजाद

कांग्रेसमे अनेक विचारक पडे हुए है। मौलाना स्वय एक महान् विचारक है। वह तीव्र बुद्धिके है। उनका अध्ययन विस्तृत है। अरबी, फारसीके अध्ययनमे उनके जोडका विद्वान मिलना कठिन है। अनुभवने उन्हे सिखाया है कि अहिंसासे ही हिंदुस्तान आजाद होगा। (ह० से०, १०.८.४०)

: १७ :

श्रीनिवास आयंगर

श्री श्रीनिवास आयगरके आगामी कांग्रेसके लिए सभापति चुने जानेकी बात पहलेसे ही पक्की थी। कांग्रेस कमेटिया एक कट्टर स्वराजीको ही चुननेके लिए बाध्य थी। श्रीनिवास आयगर एक लडैये है और साथ-ही-साथ वे आदर्शवादी भी है। वे बेसब्र है और उनका बेसब्रीसे भरा हुआ जोश उनको प्राय बडे गहरेमे ले उतारता है, जहाकि मामूली आदमीकी गति नही। वे किसी काममे बिना दुबारा सोचे ही कूद पडते हैं। ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण पदपर उनका चुना जाना ऐसे सकटके अवसरपर हुआ है कि जैसा उससे पहले कभी न आया होगा। लेकिन श्री आयगर-

को अपनेमे तथा अपनी शक्तिमे विश्वास है। यह बात सर्वविदित है कि अपनेमे विश्वास रखनेवालोकी ईश्वर सहायता करता है। हम आशा करें कि ईश्वर श्री आयगरकी सहायता करेगा। श्री आयगरको उस तमाम मददकी आवश्यकता है, जो कि काग्रेसवाले उन्हे दे सकते हों। हमने निष्क्रिय भक्तिकी विद्या तो सीख ली है, लेकिन अब समय आ पहुंचा है, जबकि हमको सक्रिय भक्ति दिखाना सीखना चाहिए। अगर काग्रेसवाले अपनी नीति और अपने प्रस्तावोका, जिनके स्वीकृत किये जानेमें उनका हाथ रहता है, पालन करेंगे तो श्री आयगरका काम कठिन होते हुए भी आसान बन जायगा। जिस सस्थाको उन्नति करना है उसके सदस्योको कम-से-कम इतना तो करना ही चाहिए। मै श्री आयगरको उस बडी प्रतिष्ठाके लिए बधाई देता हू, जो कि उनको मिली है और मै उन साधारण कठिनाइयोपर उनके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट करता हू, जो कि उनके सामने है। मै ईश्वरसे प्रार्थना करता हू कि वह उन्हे उन कठिनाइयोपर विजय पानेकी बुद्धि और बल दे। (हि० न०, १६ ६ २६)

: १८ :

एस० रंगास्वामी आयंगर

'हिंदू'के भूतपूर्व सपादक श्री एस० रगास्वामी आयगरकी मृत्यु हो गई है। उनके कुटुब तथा 'हिदू'के कर्मचारियोके साथ जो समवेदना प्रकट की जा चुकी है, उसमें मै भी आदरपूर्वक शरीक होता हू। उनकी मृत्यु श्री कस्तूरी रगा आयगरकी मृत्युके कुछ ही बाद होनेसे सपादक-ससारकी भारी क्षति हुई है। (हि० न०, २८.१०.२६)

: १६ :

मीर आलम

एक शख्स मीर आलम था। सरहदी गाधीके मुल्कका। जैसे ये पहाडके-से है, वह उनसे भी ऊचा था। पहले वह मेरा मित्र था। पर पठान तो भोले ही होते है। इसी कारण वे बादशाह है। उसको किसीने बहका दिया कि गाधीने पद्रह हजार पौंड जनरल स्मट्ससे ले लिए है और कौमको बेच डाला है। बस, एक दिन वह मीर आलम मेरा दुश्मन बनकर आया। उसके हाथमे बडी-सी लाठी थी और उसपर सीसेकी मूठ लगी थी। उसने ठीक मेरी गर्दनपर वह लाठी मारी। मै गिर पडा। नीचे पत्थरका फर्श था। मेरे दात टूट गए। ईश्वरको मजूर था, इसलिए मै बच गया। मीर आलमको दो-तीन अग्रेजोने, जो उस रास्तेसे जा रहे थे, पकड लिया, लेकिन मैने उसे यह कहकर छुडवा दिया कि वह बेचारा दूसरेके धोखेमे आ गया कि मै लालची हू और इसपर फौजी पठानका खून खौल उठे और वह मारनेको उतारू हो जाय तो कोई आश्चर्यकी बात नही है। इस तरहसे मीर आलमको मैने कैद कर लिया। वह मेरा पक्का दोस्त बन गया। (प्रा० प्र०, ३१.५.४७)

: २० :

अरुणा आसफअली

श्रीमती अरुणा मेरी लडकी है, क्या हुआ कि उन्होने मेरे घरमें जन्म नही लिया या कि वह विद्रोही बन गई है। जब वह छिपकर रहती थी

तब भी मैं कई बार उनसे मिला हू । मैंने उनकी बहादुरी, नये-नये रास्ते खोजनेकी शक्ति और गहरे देश-प्रेमकी सराहना की है । पर मेरी सराहना इससे आगे नही बढ़ी । मैंने उनके छिपकर काम करनेको पसद नही किया ।
(ह० से०, ३.३.४६)

: २१ :

डॉ. मुहम्मद इक़बाल

इकबालने कहा—**"मजहब नहीं सिखाता आपसमें बैर करना।"** इकबालने ऐसा कहा उस वक्त वह लदनमे रहता था । वह बडा कवि था । उस वक्त वह गोलमेज कान्फ्रेसमे आया हुआ था । वहा उसके लिए सबने एक खाना किया तो मुझको भी बुलाया गया । मै चला गया । उसने कहा कि मै तो ब्राह्मण हू । क्यो ब्राह्मण हू ? क्योकि मेरे बाप-दादे ब्राह्मण थे । कहाके ? काश्मीरके । मै तो काश्मीरका हू । ब्राह्मण हूं और अब मै इस्लाममे आया हू । अभी नही, बहुत पीछे हम इस्लाममें आए । तो भी हममे ब्राह्मण खून पडा है और इस्लामका तमद्दुन (सस्कृति) हमारेमे पड़ा है । तो इक़बालने कहा—**"मजहब नहीं सिखाता आपसमें बैर करना ।"** पीछे उसने दूसरा-तीसरा भी लिखा है । वह दूसरी बात है । इकबाल तो चले गए, लेकिन हम इतना तो सीख ले कि हमको हमारा धर्म नही सिखाता है कि हम किसीसे बैर करें । इसलिए मै कहूगा कि हम इन्सान बनें । इन्सान बने तो हम हिंदुस्तानको ऊचा ले जाते हैं ।
(प्रा० प्र०, ३०.९.४७)

: २२ :

जयचंद्र इंद्रजी

'नवजीवन' के एक पाठक खबर देते हैं:

"गुजरातके प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्र-भक्त श्री जयकृष्ण इंद्रजीका ता० ३ को कच्छमें देहांत हो गया। वह अपने पीछे एक विधवा छोड़ गये हैं। उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं है।"

पोरबदरमे श्री जयकृष्णसे मेरा परिचय हुआ था और उसी समय अपने विषयमे सर्वोपरि बननेकी उनकी दृढ इच्छा और वैसी ही उनकी सादगी देखकर मै आश्चर्यचकित बना था। वनस्पतियोकी खोजमे वह पर्वतीय प्रदेशोमे कई बार घूमे थे और अपने विशाल अनुभवके फलस्वरूप एक सुदर पुस्तक भी लिख गये हैं। अपने घर हीमे उन्होने अनेक प्रकार-की वनस्पतियोका एक सग्रहालय बना रक्खा था, जिसे हर मिलनेवालेको वह अभिमानके साथ वताया करते थे। उन्हे वनस्पतिकी शोध-खोजके सिवा और कोई बात ही नही सूझती थी। अपनी इस धुनमे वह इस लोक और परलोकका श्रेय देखते थे। यही वजह थी कि मै उन्हे एक आदर्श विद्यार्थी मानता था। कच्छकी यात्रामे मै फिर उनसे मिला था। वहा भी उनपर वही धुन सवार थी। नये-नये पौधे लगानेका शौक बुढापेमें घटनेके बदले और भी बढ गया था। इस तरह अपने विषयमे अनन्य भक्ति रखनेवाले मनुष्य दुर्लभ है। श्री जयकृष्ण इद्रजी इनमेंसे एक थे। वह तो अपने कर्तव्यका पालन करते हुए निबटकर गये है, इसलिए उनकी आत्मा शात ही है। आइए, हम सब उनकी एकाग्रता और उनके आत्म-विश्वासका अनुकरण करे। (हि० न०, २६.१२ २९)

: २३ :

इमाम साहब

गिरफ्तार किये गए लोगोमे हमारे इमाम साहब भी थे। उनकी कैदका आरभ चार दिनसे हुआ था। वह फेरीमे पकडे गये। उनका शरीर ऐसा नाजुक था कि लोग उन्हे जेल जाते हुए देखकर हंसते थे। कई लोग आकर मुझसे कहते—"भाई, इमाम साहबको इसमे शामिल न करो तो अच्छा हो। वह कौमको लज्जित करेगे।" मैने इस चेतावनी-पर जरा भी ध्यान नही दिया। इमाम साहबकी शक्तिकी नाप-जोख करनेवाला मै कौन होता हू ? यह सब सत्य है कि इमाम साहब कभी नगे पैर नही चलते थे। शौकीन थे। उनकी स्त्री मलायी महिला थी। घर बडा सजा हुआ रखते और बिना घोडा-गाडी लिये कही न जाते। पर उनके दिलको कौन जानता था ? यही इमाम साहब चार दिनकी सजा भुगतकर फिर जेलमे गये। वहा एक आदर्श कैदीकी तरह रहे। पसीनेकी कमाई खाते, और उन्ही नित्य नये पकवान खानेकी आदत रखने-वाले इमाम साहबने मक्काके आटेकी लपसी पीकर खुदाका एहसान माना ! वह हारे तो जरा भी नही। हा, उन्होने सादगी जरूर अख्तियार कर ली। कैदी बनकर पत्थर फोडे, झाड़ू-बुहारी की और अन्य कैदियोकी बराबरीमे एक कतारमे खडे रहे। अतमे फिनिक्समे पानी भरा और छापाखानेमे कपोजिग तक किया। फिनिक्स आश्रममे रहनेवालोके लिए कपोजिग सीख लेना अनिवार्य कर्तव्य था। उसे इमाम साहबने पूरा किया। आजकल भारतवर्षमे भी वह अपना हिस्सा दे रहे है, पर ऐसे तो कई लोग जेलमे शुद्ध हो गये। (द० अ० स०, १६२५)

. . . .

इमाम साहबका अकेला ही मुसलमान कुटुब अनन्य भक्तिसे आश्रममें

बसा। उन्होंने मृत्युसे हमारे और मुसलमानोंके बीच न टूटनेवाली गांठ बाध दी है। इमाम साहब अपने आपको इस्लामका प्रतिनिधि मानते थे और इसी रूपमें आश्रममें आए। (य० म०, ३०.५.३२)

: २४ :

उर्मिला देवी

बगालमें आज यह आग किसने सुलगाई? श्रीमती बसती देवी और उर्मिला देवीने। वे खुद गली-गली खादी बेचती फिरी। यह उनकी गिरफ्तारीका प्रभाव है जो बगालका ध्यान इस तरफ गया। देशबधु-दासके प्रचड आत्मत्यागने भी ऐसा चमत्कार नही दिखाया। मेरे पास एक पत्र वहासे आया है। उससे यही मालूम होता है। यह बात गलत नही हो सकती, क्योंकि स्त्री क्या है, वह साक्षात त्यागमूर्ति है। जब कोई स्त्री किसी काममे जी-जानसे लग जाती है तो वह पहाडको भी हिला देती है। हमने अपनी स्त्रियोका बडा दुरुपयोग किया है। जहां तक हो सके हमने उनकी ओर ध्यान नही दिया। लेकिन परमात्मन्, तुझे धन्यवाद! यह चरखा उनके जीवनको बदल रहा है। जरा सरकार हमारे रहे-सहे तमाम नेताओंको जेलका सौभाग्य प्राप्त करा दे, फिर देखिए कि भारतकी देवियां किस तरह मैदानमे आती है और पुरुषोके अधूरे कामको अपने हाथोमें लेकर उनसे भी अधिक अच्छाई और खूबीके साथ उनका सचालन करती है! (हि० न०, २५.१२.२१)

: २५ :

सी० एफ० एंड्रूज

श्री एड्रूजका स्वयनिर्णित कार्य यह है कि उनसे जो कुछ भी बन पड़े वह सेवा करना और फिर उसे भूल जाना। उनकी सेवाका रूप अक्सर शाति स्थापित करना होता है। अभी उन्होने उडीसामे दु खी और पीडित मनुष्यो और ढोरोके बीच और बबईके कष्ट-पीडित मिल-मजदूरोंके संबधमें अपना काम पूरा किया ही न था कि उन्हे दक्षिण अफ्रीकामें जाकर वहाके भारतीयोकी, जो कष्टमे पडे हुए है, मदद करनेकी आवश्यकता महसूस होने लगी है। लेकिन वे वहा केवल भारतीयोकी ही मदद न करेंगे, यूरोपियनोकी भी सहायता करेगे। उनमे न द्वेष है, न क्रोध। वे हिदुस्तानियोके प्रति दया दिखानेको नही कहते है। वे तो सिर्फ न्याय ही चाहते है। श्री एड्रूज दक्षिण अफ्रीकाके लिए कोई नये नही है। दक्षिण अफ्रीकाके राजनीतिज्ञ उन्हे जानते है और वे इस बातको स्वीकार करते है कि वे यूरोपियनोके भी उतने ही मित्र है जितने कि हिंदुस्तानियोके। भारतीयोका प्रश्न बडी विकट समस्या हो गया है। दक्षिण अफ्रीकामे रहनेवाले भारतीयोके लिए तो वह जीवन-मरणका प्रश्न है। ऐसे विकट प्रसगपर श्री एड्रूजके उनके पास होनेसे उन्हे बडी शाति मिलेगी। पहले जिस प्रकार इन भले मित्रके प्रयत्नोका अच्छा फल हुआ है उसी प्रकार इस समय भी उनका प्रयत्न सफल हो। (हि० न०, १२.११.२५)

. . .

यूनियन सरकारके भारतीयोके खिलाफ कानून बनानेके बिलका चाहे कुछ भी परिणाम क्यो न आवे, इस प्रश्नको हल करनेमे नि.सदेह श्री एड्रूजका हिस्सा सबसे बढकर ही रहेगा। उनका श्रमहीन उत्साह, उनकी नित्य सावधानी और सुशील समझानेकी शक्तिने हमें सफलताकी आशा

दिलाई है। वे स्वय यद्यपि आरभमे बडे निराश थे, परतु अब उन्हे आशा बधी है कि वह बिल, सभव है, कम-से-कम इस बैठकके लिए तो मुलतवी रहे। वे शातिके साथ पत्र सपादकोसे और सार्वजनिक कार्यकर्ताओसे मुलाकात कर रहे हैं। वे पादरियोकी सहानुभूति प्राप्त कर रहे हैं और इस नए कानूनका उनसे जोरदार शब्दोमे विरोध करा रहे हैं। इस प्रकार उन्होने दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोकी रायको, जो इस कानूनके पक्षमें थी, हिला दिया है। इस प्रश्नका उनका अध्ययन गहरा होनेके कारण दक्षिण अफ्रीकाके कुछ नेताओंको सतोषकारक रीतिसे वे यह समझा सके है कि उस कानूनसे स्मट्स-गाधी समझौतेका स्पष्ट भग होता है। उन्होने बिखरी हुई भारतीय शक्तियोको भी इस बिलपर आक्रमण करनेके लिए इकट्ठा किया है। इस प्रकार श्री एड्रूजने भारतकी और मनुष्य-समाजकी सेवामे बडी अच्छी वृद्धि की है। अग्रेज और भारतीयोके सबधको मधुर बनानेके लिए जितना प्रयत्न श्री एड्रूजने किया है उतना आज किसी भी जीवित अग्रेजने नही किया है। उनकी एक आशा इन दोनों राष्ट्रोके लोगोको एक ऐसे अभेद्य बधनमे बाध देना है, जिसका आधार परस्परका आदर और स्वतत्रता हो। उनका यह स्वप्न सच्चा हो। (हि० न०, ४.२ २६)

... .

कविवर, श्रद्धानदजी और श्री सुशील रुद्रको मै एड्रूजकी 'त्रिमूर्ति' मानता था। दक्षिण अफ्रीकामे वह इन तीनोकी स्तुति करते हुए थकते नही थे। दक्षिण अफ्रीकामे हमारे स्नेह-सम्मेलनकी बहुत-सी स्मृतियोमे यह सदा मेरी आखोके सामने नाचा करती है कि इन तीन महापुरुषोके नाम तो उनके हृदयमें और ओठोपर रहते ही थे। सुशील रुद्रके परिचयमे भी एड्रूजने मेरे बच्चोको ला दिया था। रुद्रके पास कोई आश्रम नही था, उनका अपना घर ही था; परतु उस घरका कब्जा उन्होंने मेरे इस परिवारको दे दिया था। उनके बाल-बच्चे इनके साथ

एक ही दिनमे इतने हिल-मिल गये थे कि ये फिनिक्सको भूल गये। (आ० १९२४)

.. ..

एड्रूजको लेलो। यह बात नही कि दिल-ही-दिल मे एड्रूज भी यह न मानते हो कि अंग्रेजी राज्यने इस देशका कुछ-न-कुछ भला ही किया है।

(म० डा०, भाग २, ११३३)

.. ..

यहा आनेपर मेरे जीमे जो सबसे प्रबल भावनाए उठ रही है वे दीन-बधुके विषयमे है। शायद आप लोग न जानते होंगे कि कल सुबह गाडीसे उतरते ही कलकत्तेमे पहला काम मैंने यह किया कि उनसे अस्पतालमें जाकर मिला। गुरुदेव विश्वकवि है, पर दीनबधुमे भी कवि की-सी भावना और प्रकृति है। वे आज यहा होते तो उन्हे कितनी खुशी होती और गुरु-देवके साथ इस मुलाकातके अवसरपर एक-एक शब्द, एक-एक सकेत और एक-एक हरकतका वे किस तरह रसपान करते और उन्हे अपने स्मृति-भडारमे जमा करते। किंतु ईश्वरकी इच्छा और ही थी। आज वे कलकत्तेमे रोगशैय्यापर पडे है—पूरी तरह बोल भी नही सकते। मै चाहता हूं कि आप सब लोग मेरी इस प्रार्थनामे शामिल हो कि भगवान् उन्हे जल्दी ही हमें वापस देदे और हर हालतमे उनकी आत्माको शाति प्रदान करें।

(ह० से० ३०.३.४०)

.. .

चार्ली एड्रूजको जितना मै जानता था उससे अधिक शायद और कोई नही जानता। गुरुदेव तो उनके लिए गुरु-तुल्य थे। पर हम जब दक्षिण अफ्रीकामे एक-दूसरेसे मिले तो भाई-भाईकी तरह मिले और अत तक वैसे ही बने रहे। हम दोनोंमे कोई भेद नही था। हमारा संबध एक हिंदुस्तानी और एक अग्रेजके बीच मित्रताका नही, बल्कि सत्यके दो जिज्ञासुओ और सेवकोके बीच न टूटनेवाला एक प्रेम-बधन था। लेकिन यहां मैं

एड्रूजके सस्मरण नही लिख रहा हू, जो कि बहुत पवित्र है।

ऐसे समय, जबकि एड्रूजकी स्मृति ताजी है, भारतीयो और अग्रेजो-का ध्यान मे उस पवित्र विरासतकी ओर आकर्षित करता हू जिसे वे छोड़ गये है। इंगलैण्डके प्रति किसी भी अग्रेज देशभक्तसे कम प्रेम उनके हृदयमे नही था। इसी प्रकार किसी भारतीयके देश-प्रेमसे कम प्रेम भारतके प्रति उनके हृदयमे नही था। उन्होने अपनी रुग्ण-शैय्यासे, जिसपर वे सदाके लिए सो गये, यह कहा था—"मोहन, स्वराज आ रहा है।" यदि अग्रेज और भारतीय दोनो मिलकर चाहे तो वह जरूर आ सकता है। वर्तमान शासको और जिनकी राय वजनदार मानी जाती है ऐसे अग्रेजोंके लिए एड्रूज कोई अजनबी नही थे। इसी प्रकार राजनीतिसे दिलचस्पी रखनेवाला कोई भारतीय ऐसा नही जो उन्हे न जानता हो। इस समय मै अग्रेजोंके उन बुरे कारनामोंको याद नही करना चाहता जो उन्होने किए है। उन्हे हम भूल जा सकते है, पर एड्रूजने जो वीरता-पूर्ण प्रयत्न किए है उन्हे जबतक इगलैण्ड और भारत जीवित है भुलाया नही जा सकता। अगर हम एड्रूजसे स्नेह करते है तो हम अपने हृदयमे उन अग्रेजोके प्रति घृणाका भाव न आने देगे जिनमेसे एड्रूज महान् और सर्वोत्तम थे। भले अग्रेजो और भले भारतीयोके लिए यह सभव है कि वे एक-दूसरेसे मिले और तबतक अलग न हो जबतक कि दोनोके लिए सतोषजनक रास्ता न ढूढ निकाले। एड्रूज जो काम छोड गये है वह पूरा करनेके योग्य है। जब मै एड्रूजके दयापूर्ण चेहरे और उनके उन अगणित प्रेम-पूर्ण प्रयत्नोकी याद करता हू जो भारतको ससारके राष्ट्रोके बीच स्वतत्र पद पानेके लिए उन्होने किये तो मेरे मनमे यही विचार रहा है।

(ह० से०, १३.४.४०)

सी० एफ० एड्रूजकी मृत्युके रूपमे न केवल भारतने, बल्कि मानवताने अपनी एक सच्ची संतान और सेवकको खो दिया। फिर भी उनकी मृत्यु पीड़ासे छुटकारा और ससारमें जिस मिशनको लेकर वे आये थे, उसकी

पूर्ति ही कही जायगी। वे उन हजारों लोगोंके हृदयमें जीवित रहेंगे, जिन्होंने उनकी रचनाओंको पढ़कर या उनके वैयक्तिक सपर्कमें आकर कुछ भी लाभ उठाया है। मेरी रायमे तो चार्ली एंड्रूज महान् और सर्वोत्तम अग्रेजोमेसे एक थे और चूकि वे इगलैण्डकी एक अच्छी सतान थे, भारतकी भी अच्छी सतान हुए। जो कुछ उन्होने यहा किया, सब मानवता और प्रभु ईसामसीहके लिए ही। अबतक मुझे सी० एफ० एड्रूजसे उत्तम मनुष्य या ईसाई नही मिला है। भारतने उन्हे 'दीनबधु' की उपाधि दी, जिसके वे सभी तरहके दीन-दलितोके सच्चे मित्र होनेके कारण पूर्ण अधिकारी थे। (दी० अ०, पृष्ठ १०२)

जैसा सदा होता है, इस स्मारकके लिए भी अपने आप ही चदा नही आयेगा। उसके लिए सगठनकी जरूरत पडेगी। सबसे वाछनीय तो यह है कि दीनबधुके बहुसख्यक भक्तोको यह काम खुद अपने ऊपर उठा लेना चाहिए। इसलिए यह प्रकाशित करते हुए आनद होता है कि आगरामे यह काम वहाके छात्र करने जा रहे है। इससे अच्छा और क्या हो सकता है? उन्हे इस सग्रहके लिए, जो आखिरकार एक छोटी-सी रकम है, सर्वत्र सगठन करना चाहिए। चार्ली एड्रूज बहुत ऊचे दर्जेके शिक्षा-शास्त्री थे। शिक्षाशास्त्रीके रूपमें ही वह अपने मित्र और प्रधान प्रिंसिपल रुद्रकी मदद करने आए थे। अपने अतिम गृहके रूपमें उन्होने अतर्राष्ट्रीय ख्यातिकी एक शिक्षण-सस्थाको चुना था। उसके निर्माणके लिए उन्होने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। अगर एड्रूजके घनिष्ट सपर्कका खयाल छोड दिया जाये तो भी शातिनिकेतन खुद छात्र-ससारकी भक्ति पानेके योग्य है। इसलिए मै आशा करता हू कि हिदुस्तानके छात्र चदा इकट्ठा करनेके काममे अग्र भाग लेगे। इनके बाद दीन जनोंकी बारी आती है जिन्होंने कि एड्रूजकी सेवाओसे विशेष रूपसे फायदा उठाया है। यदि यह पाच लाख, हजारो छात्रो और दीन जनोकी भेटोसे पूरा हो जाए तो बहुत

बड़ी, बहुत उचित, बात होगी, बनिस्बत इसके कि दीनबधुके कुछ ऐसे खास धनी मित्रोके दानसे उसकी पूर्ति कर ली जाए, जो उनके निकट सपर्कमें आए थे और जिन्हे उनके महत्त्वकी पूरी जानकारी थी।

(ह० से०, १५.६.४०)

. .　　　　. . .

आज एड्रूज साहबकी सातवी पुण्य-तिथि है। उनके गुणोको हमें याद करना चाहिए। उनका जीवन बहुत सादा था। हम दोनों घने मित्र रहे है। उनकी चमडी गोरी थी, लेकिन वह इतने सादे थे और देहातियोंसे मिलते-जुलते थ कि वह अग्रेज है, ऐसा पहिचानना कठिन हो जाता था। उनको कपडे पहननेका भी शऊर न था। मोटेसे बदनपर ढीली-ढाली धोती किसी तरह लपेट लेते थे। उनको ऊपरके दिखावेसे काम न था। उनका दिल सोनेका था।　　　　(प्रा० प्र०, ५.४.४७)

: २६ :

वैद्यनाथ ऐयर

मदुराके एक सनातनी सज्जनने शिकायत करते हुए मुझे लिखा था कि वहा सुप्रसिद्ध मीनाक्षी-मदिर जिस तरीकेसे खोला गया वह ठीक नही था। मैने उस शिकायतको श्री वैद्यनाथ ऐयरके पास भेज दिया था और एक दूसरे मित्रको भी उसके बारेमे लिखा था। उन सज्जनने मेरे पास उक्त शिकायतका स्पष्ट प्रतिवाद भेजा और अपने पत्रमे उन्होने यह भी लिखा कि सनातनियोने श्री वैद्यनाथ ऐयरको इतना ज्यादा सताया है कि उनका हृदय विदीर्ण हो गया है। इसपर मैंने उन्हे एक लंबा तार भेजा कि उन्हें सतानेवाले उनके बारेमे चाहे जो कहें या करें, उन्हें उसपर ध्यान

नहीं देना चाहिए। एक धार्मिक सुधारकके रूपमें उन्हें तो पूरी अनासक्तिसे काम करना चाहिए और अत्याचारों तथा बुरी-से-बुरी स्थितिमें भी स्थिर चित्त रहना चाहिए। मेरे तारका उन्होंने यह आश्वासनप्रद उत्तर दिया, "भगवती मीनाक्षीकी कृपा और आपके आशीर्वादसे स्वाभाविक शाति प्राप्त कर ली है। काम जारी है। आशा है कि दूसरे बड़े-बडे मंदिर भी जल्दी ही खुल जाएगे। आपका स्नेह और आशीर्वाद मुझे बड़े-से-बडा सहारा दे रहे हैं।" यह उत्तर इस महान् सुधारकके अनुरूप ही है। अस्पृश्यता-निवारण प्रवृत्तिके अत्यत विनम्र और मूक कार्यकर्त्ताओमेंसे श्री वैद्यनाथ ऐयर हैं। वे एक ईश्वरभीरु मनुष्य है।

दिल्लीके श्रीव्रजकृष्ण चांदीवालाने, जो दक्षिणकी तीर्थयात्रा करने गये थे, अपने मदुराके अनुभवको इस प्रकार लिखा है ·

" श्री वैद्यनाथ ऐयरके घरपर मैंने अनुभव किया कि उनके जैसे सुधारकोंको मंदिर-प्रवेशके कारण कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड़ रहे हैं। मैंने अगर खुद अपनी आंखों न देखा होता कि श्री वैद्यनाथ ऐयरपर कैसी-कैसी बीत रही है तो मै कभी विश्वास नहीं कर सकता था कि मनुष्य-स्वभाव इतना नीचे उतर सकता है, जैसा कि मैंने मदुरामें देखा। उनके प्रति सनातनियोंका बर्ताव अत्यंत अनुचित रहा है। विरोधियोंने यह भी एक तरीका अख्त्यार किया है कि वैद्यनाथ ऐयरके बारेमें झूठी बातोंका प्रचार किया जाये; किंतु वे तथा उनकी पत्नी दोनों ही इन तमाम अत्याचारोंको बहादुरीसे बर्दाश्त कर रहे हैं।" (ह० से०, २३.१२.३९)

: २७ :

कवीन

कवीन नामक एक व्यक्ति जोहान्सबर्गमे रहनेवाले चीनी लोगोके अगुवा भी थे। जोहान्सबर्गमे उनकी सख्या कोई तीन-चार सौ होगी। वे सभी व्यापार या छोटी-मोटी खेतीका काम करते थे। भारत कृषि-प्रधान देश है। पर मेरा यह विश्वास है कि चीनी लोगोने खेतीको जितना बढ़ाया है उतना हम लोगोने नही। अमरीका आदि देशोमे खेतीकी जो प्रगति हुई है वह आधुनिक है और उसका तो वर्णन ही नही हो सकता। उसी प्रकार पश्चिमी खेतीको मै अभी प्रयोगावस्थामे मानता हू। पर चीन तो हमारे ही जैसा प्राचीन देश है और वहा प्राचीन कालसे ही खेतीमे तरक्की की गई है। इसलिए चीन और भारतकी तुलना करे तो हमे उससे कुछ शिक्षा मिल सकती है। जोहान्सबर्गके चीनियोकी खेती देखकर और उनकी बाते सुनकर तो मुझे यही मालूम हुआ कि चीनियो-का ज्ञान और उद्योग भी हम लोगोसे बहुत बढकर है। जिस जमीनको हम ऊसर समझकर छोड देते है, उसमे वे अपने खेतीके सूक्ष्म ज्ञानके कारण बीज बोकर अच्छी फसल पैदा कर सकते है। यह उद्यमशील और चतुर कौम भी उस खूनी कानूनकी श्रेणीमे आती थी। इसलिए उसने भी भारतीयोके साथ युद्धमे शामिल होना उचित समझा। फिर भी शुरूसे आखिरतक दोनो कौमोका हरएक व्यवहार अलग-अलग होता था। दोनो अपनी-अपनी सस्थाओके द्वारा झगड रही थी। इसका शुभ फल यह होता है कि जबतक दोनो जातिया अपने निश्चयपर दृढ रहती है तबतक तो दोनोको फायदा होता है, पर आगे चलकर यदि एक फिसल भी जाय तो इससे दूसरी जातिको कोई हानिकी सभावना नही रहती। वह गिरती तो हरगिज नही। आखिर बहुतसे चीनी तो फिसल गये, क्योकि उनके

नेताने उन्हें धोखा दिया। नेता कानूनके वश तो नहीं हुए, पर एक दिन किसीने आकर मुझसे कहा कि वे बिना हिसाब-किताब समझाए ही कही भाग गये। नेताके चले जानेके बाद अनुयायियोका दृढ रहना तो हमेशा मुश्किल ही पाया गया है। फिर नेतामे किसी मलिनताके पाए जानेपर तो निराशा दूनी बढ जाती है। पर जिस समय पकडा-धकड़ी शुरू हुई उस समय तो चीनी लोगोमे बडा जोश फैला हुआ था। उनमेंसे शायद ही किसीने परवाने लिए हो, इसीलिए भारतीय नेताओके साथ चीनियोके कर्त्ता-धर्त्ता मि० कवीन भी पकडे गये। इसमे शक नही कि कुछ समयतक तो उन्होने बहुत अच्छी तरह काम किया था। (द० अ० स० १६२५)

: २८ :

अहमद मुहम्मद काछलिया

भारतीयोके भाषण शुरू हुए। इस प्रकारके, और सच पूछा जाय तो इस इतिहासके, नायकका परिचय तो मुझे अभी देना ही बाकी है। जो वक्ता खड़े हुए उनमे स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया भी थे। उन्हे तो मै एक मवक्किल और दुभाषियेकी हैसियतसे जानता था। वे अभी-तक किसी आदोलनमे आगे होकर भाग नही लेते थे। उनका अँग्रेजी भाषाका ज्ञान कामचलाऊ था। पर अनुभवसे उन्होने उसे यहांतक बढा लिया कि जब वे अग्रेज वकीलोके यहा अपने मित्रोको ले जाते तब दुभाषियेका काम वे स्वय ही करते थे। वैसे उनका पेशा दुभाषियेका नही था। यह काम तो वे बतौर मित्रके ही करते थे। पहले वे कपडेकी फेरी लगाते थे। बादमे उन्होने अपने भाईके साझेमे छोटे पैमानेपर व्यापार शुरू किया। वे सूरती मेमन थे। उनका जन्म सूरत जिलेमे हुआ था। सूरती मेमनोमे उनकी

खासी प्रतिष्ठा थी। गुजरातीका ज्ञान भी मामूली ही था। हा, अनुभवसे उन्होंने उसे खूब बढा लिया था। पर उनकी बुद्धि इतनी तेज थी कि वे चाहे जिस बातको बड़ी आसानीसे समझ लेते थे। मामलोंकी उलझन इस प्रकार स्पष्ट करते कि मै तो कई बार चकित हो जाता। वकीलो के साथ कानूनी दलीले करनेमें भी ज़रा न हिचकते थे। उनकी कई दलीले तो ऐसी होती कि वकीलोको भी विचार करना पड़ता।

बहादुरी और एकनिष्ठामे उनसे बढकर आदमी मुझे न तो दक्षिण अफ्रीकामे मिला और न भारतमे। कौमके लिए उन्होने अपने सर्वस्वकी आहुति दे दी थी। उनके साथ जितनी बार मुझे काम पडा, उन सब प्रसगों-पर मैने उन्हे एकवचनी ही पाया। स्वय चुस्त मुसलमान थे। सूरती मेमन-मसजिदके मुतवल्लियोमे वे भी एक थे। पर साथ ही वे हिदू और मुसलमानोके लिए समदर्शी थे। मुझे ऐसा एक भी प्रसग याद नही आता जब उन्होने धर्मांध बनकर हिंदुओके खिलाफ किसी बातकी खीचातानी की हो। वे बिलकुल निडर और निष्पक्ष थे। इसलिए मौकेपर हिदुओ और मुसलमानोको भी उनका दोष दिखाते समय उन्हे जरा भी सकोच न होता था। उनकी सादगी और निरभिमानता अनुकरणीय थी। उनके साथ मेरा जो बरसोका सबध रहा, उससे मुझे यह दृढ विश्वास हो चुका है कि स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया-जैसा पुरुष कौमको फिर मिलना कठिन है।

प्रिटोरियाकी सभामे बोलनेवालोमे एक पुरुष यह भी थे। उन्होने बहुत ही छोटा भाषण दिया। वे बोले—"इस खूनी कानूनको हरएक हिंदुस्तानी जानता है। उसका अर्थ हम सब जानते है। मि० हास्किनका भाषण मैने खूब ध्यान लगाकर सुना। आपने भी सुना। मुझपर तो उसका परिणाम यही हुआ है कि मै अपनी प्रतिज्ञापर और भी दृढ हो गया हूं। ट्रासवाल सरकारकी ताकतको हम जानते है, पर इस खूनी

कानूनसे और अधिक किस बातका डर सरकार हमें बता सकती है ? जेल भेजेगी, जायदाद बेच देगी , हमें देशसे बाहर कर देगी—फासीपर लटका देगी। यह सब हम बरदाश्त कर सकते हैं। पर इस कानूनके आगे सिर नहीं झुका सकते ।" मै देखता था कि यह सब बोलते हुए अहमद मुहम्मद काछलिया बडे उत्तेजित होते जा रहे थे। उनका चेहरा लाल हो रहा था। सिर और गर्दनकी रगे जोशके मारे बाहर उभड आई थी। बदन काप रहा था। अपने दाहिने हाथकी उगलिया गर्दनपर रखकर वे गरजे—"मै खुदाकी कसम खाकर कहता हू कि मै कत्ल हो जाऊगा; पर इस कानूनके आगे कभी अपना सर नही झुकाऊगा। और मै चाहता हू कि यह सभा भी यही निश्चय करे।" यह कहकर वह बैठ गये। जब उन्होने गर्दनपर हाथ रक्खा तब मचपर बैठे हुए कितने ही लोगोके मुहपर मुस्कराहट दिखाई दी। मुझे याद है कि मैं भी उन्हीमेंसे था। जितने जोरके साथ काछलिया सेठने ये शब्द कहे थे उतना जोर अपनी कृतिमे वे दिखा सकेंगे या नही, इस बातमे मुझे जरा सदेह था। पर जब-जब वह सदेह-वाली बात मुझे याद आती है तो आज यह लिखते समय भी मुझे अपने ऊपर लज्जा मालूम होती है। इस महान् युद्धमे जिन बहुत-से आदमियोने अपनी प्रतिज्ञाका अक्षरश. पालन किया था, काछलिया सेठ उनमे अग्रगण्य थे। मैने कभी उन्हे अपना रग पलटते हुए नही देखा।

सभाने तो इस भाषणका करतल-ध्वनिसे स्वागत किया। मेरी अपेक्षा अन्य सभासद उन्हे इस समय बहुत अधिक जानते थे, क्योकि उनमेंसे अधिकाशको इस 'गुदड़ीके लाल'से व्यक्तिगत परिचय भी था। वे जानते थे कि काछलिया जो करना चाहते है, वही करते है और जो कहते है उसे अवश्य ही पूरा करते है। और भी कई जोशीले भाषण हुए। काछलिया सेठके भाषणको उनमेंसे इसीलिए छाट लिया कि उनकी बादकी कृतिसे उनका यह भाषण भविष्यवाणी साबित हुआ। जोशीले भाषणोके देने-वाले सभी अततक नही टिक सके। इस पुरुष-सिहकी मृत्यु अपने देश-

भाइयोंकी सेवा करते-करते ही सन् १९१८मे अर्थात् इस युद्ध (दक्षिण अफ्रीकाका) के खतम होनेके चार साल बाद हुई।

उनका एक और स्मरण है। उसे और कही नही दिया जा सकता, इसलिए यहीपर लिख देता हू। टॉल्स्टॉय फार्ममे सत्याग्रहियोके कुटुब रहते थे। वहा आपने अपने पुत्रोको भी बतौर उदाहरणके तथा सादगी और जाति-सेवाका पाठ पढनेके लिए रक्खा था और इसीको देखकर अन्य मुसलमान माता-पिताओने भी अपने बच्चे इस फार्मपर भेजे थे। जवान काछलियाका नाम अली था। उम्र १०-१२ सालकी होगी। अली नम्र, चपल, सत्यवादी और सरल लडका था। लडाईके बाद, पर काछलिया सेठके पहले, उसे भी फरिश्ते खुदाके दरबारमे ले गये, पर मुझे विश्वास है कि यदि वह भी जीता रहता तो अपने पिताकी कीर्तिको और भी पल्लवित करता।

• •

कई भारतीय व्यापारियोको अपने व्यापारके लिए गोरे व्यापारियोकी कोठियोपर अवलंबित रहना पडता था। वे लाखो रुपयोका माल बिना किसी प्रकारकी रहनके केवल भारतीय व्यापारियोंके विश्वासपर दे दिया करते है। सचमुच, भारतीय व्यापारकी प्रामाणिकताका यह एक सुदर नमूना है कि वे वहापर इतना विश्वास सपादन कर सके है। काछलिया सेठके साथ भी कई अग्रेजी फर्मोका इसी प्रकारका लेन-देनका सबध था। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे, किसी प्रकार सरकारकी ओरसे इशारा मिलते ही, ये व्यापारी काछलिया सेठसे अपनी वे सब मुद्राए मागने लगे, जो उनकी तरफ लेना निकलती थी। उन्होने तो काछलिया सेठको बुलवाकर यहातक कहा कि 'यदि आप इस युद्धसे अपनेको अलग रक्खे तब तो आपको उन मुद्राओके लिए कुछ भी जल्दी करनेकी आवश्यकता नही है। अगर आप यह न करे तो हमें यह भय हमेशा रहेगा कि सरकार आपको न जाने किस वक्त पकड ले और यदि ऐसा ही हुआ तो

फिर हमारी मुद्राओंका क्या होगा ? इसलिए यदि इस युद्धमेंसे अपना हाथ हटा लेना आपके लिए किसी प्रकार असंभव हो तो हमारी मुद्राएं आपको इसी समय लौटा देनी चाहिए ।' इस वीर पुरुषने उत्तर दिया—"युद्ध तो मेरी व्यक्तिगत वस्तु है । मेरे व्यापारके साथ उसका कोई सबध नही है । अपने धर्म, अपनी जातिके सम्मान और स्वय मेरे स्वाभिमानकी रक्षाके लिए यह युद्ध छिडा हुआ हे । आपने मुझे केवल विश्वासपर जो माल दिया है उसके लिए मैं आपका जरूर एहसानमद हूं । पर इसलिए मैं न तो उस कर्जको और न अपने व्यापारको ही सर्वोपरि स्थान दे सकता हू । आपके पैसे मेरे लिए सोनेकी मुहरें हैं । अगर मैं जिदा रहा तो अपने आपको बेचकर भी आपके पैसे लौटा दूगा । पर मान लीजिए कि मेरा और कुछ हो गया तो उस हालतमें आप यह विश्वास रक्खे कि मेरा माल और तमाम उगाही आपके हाथोमें ही है । आजतक आपने मेरा विश्वास किया है । मैं चाहता हू कि आगेके लिए भी आप इसी प्रकार मेरा विश्वास करे ।" यह दलील बिलकुल ठीक थी । काछलियाकी दृढताको देखते हुए गोरोको उनपर और भी विश्वास होना चाहिए था । पर बात यह थी कि इस समय उन लोगोपर इसका कोई असर नही हो सकता था । हम सोए हुए आदमीको तो जगा सकते हैं, पर सोनेका ढोंग करनेवालेको नही । यही हाल उन गोरे व्यापारियोका भी हुआ । वे तो काछलिया सेठको दबाना चाहते थे, उनकी लेन-देन थोडे ही डूबने वाली थी !

मेरे दफ्तरमे लेनदारोकी एक मीटिग हुई । मैंने उन्हे साफ-साफ शब्दोमे कह दिया कि आप इस समय जो काछलिया सेठको दबाना चाहते है उसमे व्यापार-नीति नही, राजनैतिक चाल है । व्यापारियोको यह काम शोभा नही देता । पर वे तो और भी चिढ गये । काछलिया सेठके माल और उगाही दोनोंकी फेहरिस्त मेरे पास थी । उसे मैंने उन व्यापारियोको दिखाया । यह भी सिद्ध कर दिखाया कि उससे उन्हे अपना पूरा

धन मिल सकता है और कहा—"इतनेपर भी यदि आप इस तमाम व्यापारको किसी दूसरे आदमीके हाथ बेच देना चाहते हो तो काछलिया सेठ अपना तमाम माल और उगाही खरीददारको सौंपनेके लिए भी तैयार है। यदि यह भी आपको स्वीकार न हो तो दूकानमें जितना भी माल है, उसे मूल कीमतमे आप ले ले। केवल मालसे यदि काम न चले तो उसके बदलेमें उगाहीमेंसे जिसे पसद करे ले ले।" पाठक सोच सकते है कि गोरे व्यापारी यदि इस प्रस्तावको मजूर कर लेते तो उनकी कोई हानि नही होती। (और कई मवक्किलोके सकट-समयमे मैंने उनके कर्जकी यही व्यवस्था की थी) पर इस समय व्यापारी न्याय न चाहते थे। काछलिया नही झुके और वह दिवालिया देनदार साबित हुए।

पर यह दिवालियापन उनके लिए कलक-रूप नही, बल्कि भूषण था। इससे कौममे उनकी इज्जत कही बढ गई और उनकी दृढता और बहादुरीपर सबने उनको बधाई दी। यह वीरता तो अलौकिक है। सामान्य मनुष्य उसको भलीभाति नही समझ सकते। सामान्य मनुष्य तो यह कल्पना भी नही कर सकता कि दिवालियापन एक बुराई और बदनामीके बदले सम्मान और आदरकी वस्तु किस तरह हो सकती है। पर काछलियाको तो यही बात स्वाभाविक मालूम हुई। कई व्यापारियोंने केवल इसी भयके कारण खूनी कानूनके सामने सिर झुका लिया कि कही उनका दिवाला न निकल जाय। काछलिया भी यदि चाहते तो इस नादारीसे छूट सकते थे। युद्धसे विमुख होकर तो वह अवश्य ही ऐसा कर सकते थे। पर इस समय मै कुछ और ही कहना चाहता हू। कई भारतीय काछलियाके मित्र थे जो उनको इस सकट-समयमे कर्ज दे सकते थे। पर यदि वह इस तरह अपने व्यापारको बचा लेते तो उनकी बहादुरीमे धब्बा नही लग जाता ? कैदकी जोखिम तो उनकी भाति दूसरे सत्याग्रहियोंके लिए भी थी। इसलिए यह तो उनसे हरगिज नही हो सकता था कि वे सत्याग्रहियोंसे पैसे लेकर गोरे व्यापारियोंका ऋण अदा कर दें।

पर सत्याग्रही व्यापारियोके समान ही अन्य भारतीय भी उनके मित्र थे, जिन्होने खूनी कानूनके सामने सिर झुका दिया था, और मै जानता हूं कि उनकी सहायता भी काछलिया सेठको मिल सकती थी। जहातक मुझे याद है, एक-दो मित्रोने उन्हें इस विषयमे कहलाया भी था। पर उनकी सहायता लेनेका अर्थ तो यही न होता कि हमने इस बातको स्वीकार कर लिया कि खूनी कानूनको मानने ही मे बुद्धिमानी है। इसलिए हम दोनो इसी निश्चयपर पहुचे कि उनकी सहायता हमें कदापि स्वीकार नही करनी चाहिए। फिर हम दोनोने यह भी सोचा कि यदि काछलिया अपनेको नादार कहलाएगे तो उनकी नादारी दूसरोंके लिए ढालका काम देगी, क्योंकि अगर सौमे पूरी सौ नही तो निन्यानवे फीसदी नादारियोंमें लेनदारको नुकसान उठाना पडता है। अगर उनके लेनेमेंसे फीसदी पचास भी मिल जाते है तो भी वे खुश होते है। जब फीसदी पिचहत्तर मिल जाय तब तो वे उसीको पूरे सौ ही मान लेते है, क्योकि दक्षिण अफ्रीकामे प्रतिशत ६।) नही, बल्कि फी सैकडा २५) मुनाफा लिया जाता है। इसलिए अपनी लेनमेंसे फी सैकडा ७५ मिलनेतक तो वे उसे घाटेका व्यवहार नही मानते, किंतु नादारीमे पूरा-का-पूरा तो शायद ही कभी मिलता है। इसलिए कभी कोई लेनदार यह नही चाहता कि उसका कर्जदार दिवालिया हो जाय।

इसलिए काछलियाका उदाहरण दिखाकर गोरे लोग दूसरे व्यापारियोको धमकी नही दे सकते थे। और हुआ भी ऐसा ही। गोरे चाहते थे कि काछलियाको युद्धसे अपना हाथ हटा लेनेके लिए मजबूर करे और यदि काछलिया इसे मजूर न करे तो उनसे पूरे सौ-के-सौ वसूल करें। पर इन दोमेंसे उनका एक भी हेतु सिद्ध न हुआ। इसका तो उलटे एक विपरीत ही परिणाम हुआ। एक प्रतिष्ठित भारतीयको इस तरह नादारीका स्वागत करते हुए देखकर गोरे व्यापारी चकित हो गए और हमेशाके लिए शात हो गए। परतु इधर एक सालके अदर ही काछलियाके माल-

मेंसे ही गोरे व्यापारियोको पूरे सौ-के-सौ मिल गए। दक्षिण अफ्रीकामें दिवालिया देनदारसे लेनदारको पूरे सौ-के-सौ मिल जाना अपनी जानकारीमें मेरा पहला ही अनुभव था। युद्ध शुरू हो गया था, पर फिर भी इससे गोरे व्यापारियोमें काछलियाका सम्मान बेहद बढ़ गया। आगे चलकर युद्ध-कालमें उन्ही व्यापारियोने काछलियाको मनमाना माल देनेके लिए अपनी तत्परता दिखाई। पर काछलियाका बल तो दिन-ब-दिन बढता ही जा रहा था। युद्धके रहस्यको भी वह भलीभांति समझ चुके थे। और यह तो कौन कह सकता था कि युद्ध शुरू होनेके बाद वह कितने रोज चलेगा। इसलिए नादारीके बाद हमने तो यही निश्चय कर लिया कि लबे-चोडे व्यापारकी झझटमे पडना ही नहीं। उन्होने भी निश्चय कर लिया कि अब, जबतक युद्ध समाप्त नही होता, उतना ही व्यापार किया जाय कि जिससे एक गरीब मनुष्य अपना निर्वाह कर सके, इससे ज्यादा नही। इसलिए गोरोने जो वचन दिया, उसका उपयोग उन्होने नही किया। काछलिया सेठके जीवनकी जिन घटनाओका वर्णन मैं कर चुका हू, वे कमिटी का मीटिंगके बाद हुई हो सो बात नही, पर मैंने उन्हे यहापर इसीलिए लिख देना ठीक समझा कि उनको कही एक ही बार दे देना योग्य होगा। अगर तारीखवार देखा जाय तो दूसरा युद्ध शुरू होनेपर कितने ही समय बाद काछलिया अध्यक्ष हुए और नादार होनेके पहले, इसके बाद और भी कितना ही समय बीत गया। (द० अ० स० १९२५)

: २६ :

अलबर्ट कार्टराइट

अलबर्ट कार्टराइट ('ट्रासवाल लीडर'के सपादक) बड़े चतुर और अतिशय उदार हृदय सज्जन थे। वे अपने अग्रलेखो तकमें अक्सर भारतीयोका ही पक्ष लिया करते। मेरे और उनके बीच गहरा स्नेह-सबध हो गया था और मेरे जेल जानेके बाद वह जनरल स्मट्ससे भी मिले थे। जनरल स्मट्सने उन्हे सधिकर्ता स्वीकार किया तब मि० कार्टराइट कौमके अगुओसे मिले। पर उन्होने यही उत्तर दिया कि हम लोग कानूनकी बारीकियोको नही जानते। गाधी जेलमे है। जबतक वह छोड नही दिये जाते इस विषयमे कोई सलाह-मशविरा करना हम अनुचित समझते है। हम सुलह तो चाहते है, पर यदि हमारे आदमियोको बिना छोडे ही सरकार सुलह करना चाहती हो तो गाधी जाने। आप गाधीसे मिलें। वह जो कहेगा, हम सब मजूर करेगे। इसपर अलबर्ट कार्टराइट मुझसे मिलनेके लिए आए। साथ ही जनरल स्मट्सका बनाया अथवा पसद किया हुआ समझौतेका मसविदा भी लाए थे। उसकी भाषा गोलमाल थी। वह मुझे पसद नही आई। फिर भी एक जगह कुछ दुरुस्ती करनेपर मै उसपर दस्तखत करनेके लिए तैयार हो गया। पर मैने कहा कि बाहरवाले यदि इसे मानले तो भी मै इसपर तबतक दस्तखत नही कर सकता जबतक जेलके साथियोकी आज्ञा अथवा सम्मति भी मै प्राप्त नही कर लेता। समझौतेका सार इस प्रकार था : "भारतीय स्वेच्छापूर्वक अपने परवाने बदलवा ले। उनपर कानूनका कोई अधिकार न होगा। नवीन परवाना भारतीयोकी सलाहसे सरकार बनावे और यदि इसे भारतीय स्वेच्छापूर्वक ले ले तब तो खूनी कानून रद हो ही जायगा और स्वेच्छापूर्वक लिए गये नवीन परवानोको कानून, करार देनेके लिए सरकार एक नया कानून

बना लेगी।" खूनी कानूनको रद करनेकी बात इस मसविदेमे स्पष्ट नहीं लिखी गई थी। उसे स्पष्ट करनेके लिए मैंने अपनी समझके अनुसार एक सुधारकी सूचना की। पर अलबर्ट कार्टराइटने उसे पसन्द नही किया। उन्होंने कहा, "जनरल स्मट्सका यह आखिरी मसविदा है। स्वय मैंने भी इसे पसद किया है। और यह तो मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि अगर आप सब परवाने ले ले तब तो यह खूनी कानून रद हुआ ही समझिए।" मैंने कहा, "समझौता हो या न हो, लेकिन आपकी इस सहानुभूति और समझौतेकी कोशिशके लिए हम आपके सदाके लिए अनुग्रहीत होंगे। मैं एक भी अनावश्यक फेरफार करना नही चाहता। जिस भाषासे सरकारकी प्रतिष्ठाकी रक्षा होती हो उसका मै ख्वामख्वाह विरोध नहीं करूँगा। पर जहा अर्थके विषयमे स्वय मुझे शका है वहा तो मुझे अवश्य ही कुछ स्पष्टीकरणकी सूचना करनी चाहिए, और अतमे यदि समझौता करना ही है तो दोनों पक्षोको कुछ परिवर्तन करनेका अधिकार जरूर ही होना चाहिए। जनरल स्मट्स पिस्तौल दिखाकर उसके बलपर कोई समझौता हमसे मजूर करानेकी व्यर्थकी कोशिश न करे। खूनी कानून-रूपी एक पिस्तौल तो पहले हीसे हमारे सामने है। अब इस दूसरे पिस्तौलका असर हमपर और क्या हो सकता है?" मि० कार्टराइट इसके उत्तरमे कुछ न कह सके। उन्होने यह मजूर किया कि मै आपका बताया यह परिवर्तन जनरल स्मट्सके सामने पेश कर दूगा। मैने अपने साथियोसे भी मशविरा किया। भाषा तो उन्हे भी पसद नही आई; पर यदि उतने परिवर्तनके साथ जनरल स्मट्स समझौता करते हों तो हम भी उसे मजूर कर ले यह बात उन्हें पसद थी। बाहरसे जो लोग आए थे, वे भी अगुआओंका यह सदेश लाए कि यदि उचित समझौता हो रहा हो तो कर लेना चाहिए। हमारी सम्मतिकी राह न देखी जाय। इस मसविदेपर मैंने मि० क्वीन और थंबी नायडूके भी दस्तखत लिए और तीनों दस्तखतोंवाला मसविदा कार्टराइटको सौंप दिया।

दूसरे या तीसरे दिन जोहान्सबर्गका पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट आया और मुझे जनरल स्मट्सके पास ले गया। उनकी मेरी बहुत-सी बातें हुईं। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि मि० कार्टराइटके साथ मैंने चर्चा की थी। मेरे जेल जानेपर कौम दृढ़ रही, इसके लिए उन्होने मुझे मुबारकबाद दिया और कहा—"आप लोगोंके विषयमें मेरा कोई व्यक्तिगत दुर्भाव नहीं है। आप जानते ही है कि मैं एक बैरिस्टर हू। मेरे साथ कितने ही भारतीय पढे भी है। मुझे तो यहां केवल अपना कर्तव्य-पालन करना है। गोरे लोग इस कानूनको चाहते है। आप यह भी स्वीकार करेगे कि उनमें भी अधिकाश बोअर नही, अग्रेज ही है। आपने जो सुधार किया उसे मै मजूर करता हू। जनरल बोथाके साथ भी मैं बातचीत कर चुका हू और मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि यदि आपमेसे अधिकाश लोग परवाने ले लेंगे तो एशियाटिक एक्टको रद कर दूगा। स्वेच्छापूर्वक लिए जानेवाले परवानेको मजूर करनेवाले कानूनका मसविदा तैयार करनेपर उसकी एक नकल आपके पास नोटके लिए भेजूगा। मै नही चाहता कि यह आंदोलन फिरसे जागे। आपके भावोका मै सम्मान करता हू।" (द०अ०स०१९२५)

: ३० :

राजासाहब कालाकांकर

राजासाहब कालाकाकर २० सितम्बरको असमय ही स्वर्ग सिधार गए। वे एक महान् हरिजन-सेवक थे। लगभग एक सालसे वे बीमार थे। मै पिछली बार जब कलकत्ते गया तो मै उन्हें मुश्किलसे पहचान सका। वहा वे अपना इलाज करा रहे थे। राजासाहब संयुक्त प्रांतके एक अत्यंत उदारहृदय तालुकेदार थे। उनके विषयमें निस्सदेह यह कहा

जा सकता है कि उन्होने यथाशक्ति अपना जीवन अपनी प्रजाके लिए बिताया। बडी सादी रहन-सहन थी। लोगोमे खूब दिल खोलकर मिलते थे। हरिजनोपर उनका उतना ही प्रेम था, जितना दूसरी जातियोपर। अपने प्रत्यक्ष आचरणके दृष्टातसे वे अपनी रियासतसे सवर्ण हिदुओसे अस्पृश्यता छुडवाने और हरिजनो को भी वही सब अधिकार दिलवाने का प्रयत्न करते रहते थे, जो उनकी सवर्ण प्रजाको प्राप्त थे। राज्यके प्रबधाधीन तमाम विद्यालय, कुए और मदिर उन्होने हरिजनोके लिए खोल दिए थे। हमे आशा है कि रानीसाहिबा तथा कालाकाकरके अन्य राज-कुटुम्बी स्व० राजासाहबकी स्मृतिको अजर-अमर बनाए रखनेके लिए उनकी उस प्रेमपूर्ण उदारताका सदैव अनुसरण करते रहेगे। (ह० से०, २६ १० ३१)

: ३१ :

हर्बर्ट किचन

हर्बर्ट किचन एक शुद्ध-हृदय अग्रेज थे। वे बिजलीका काम-काज करते थे। बोअरयुद्धमे उन्होने हमारे साथ काम किया। कुछ समय तक वे 'इडियन ओपीनियन' के सपादक भी रहे थे। उन्होने मृत्यु समयतक ब्रह्मचर्यका पालन किया था। (द० अ० स० १९२५)

: ३२ :

जे० सी० कुमारप्पा

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन (राष्ट्रीय ऋण) के सबधमे जाच

करनेके लिए महासमिति (आल इंडिया कांग्रेस कमेटी) ने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट विशेषकर वर्त्तमान अवसरपर एक अत्यंत महत्त्वका लेख है। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रक्खे बिना न रहेगा। श्री बहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशालशाह और श्री कुमारप्पा अपने इस प्रेमके परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभिनंदनके अधिकारी हैं। समितिके संचालक श्री कुमारप्पा गुजरात विद्यापीठके अध्यापक हैं, इसलिए उनके लिए इसमें कुछ विशेष त्याग नहीं है। वे तो राष्ट्र-सेवककी तरह नामांकित हैं, इसलिए उनका समय और श्रम तो राष्ट्रीय महासभाके चरणोंमें अर्पित हो ही चुका है। वे इस विशिष्ट कार्यके लिए पसंद किए गये, इसका कारण है उनका अर्थशास्त्रका सजग ज्ञान और संशोधन कार्यके प्रति उनकी लगन। रिपोर्टके लेखकोंका यह परिचय मैंने इसलिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सकें कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोंका लिखा हुआ लेख नहीं, वरन् जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले हैं, और जो धांधलीबाज उपदेशक नहीं, वरन् स्वयं जिस विषयके ज्ञाता हैं, उसीपर लिखनेवाले और अपने शब्दोंको तौल-तौलकर व्यवहारमें लाने वालोंकी यह कृति है। (हि० न०, ६. ८. ३१)

: ३३ :

आचार्य जे० बी० कृपलानी

मुजफ्फरपुरमें उस समय आचार्य कृपलानी भी रहते थे। उन्हें मैं पहचानता था। जब मैं हैदराबाद गया था, उनके महात्यागकी, उनके जीवनकी और उनके द्रव्यसे चलनेवाले आश्रमकी बात डाक्टर चोइथरामके मुखसे सुनी थी। वह मुजफ्फरपुर कालेजमें प्रोफेसर थे; पर उस

समय वहां से मुक्त हो बैठे थे। मैंने उन्हें तार दिया। ट्रेन मुजफ्फरपुर आधीरातको पहुचती थी। वह अपने शिष्य-मडलको लेकर स्टेशन आ पहुचे थे; परतु उनके घरबार कुछ न था। वह अध्यापक मलकानीके यहां रहते थे। मुझे उनके यहा ले गए। मलकानी भी वहाके कालेजमें प्रोफेसर थे और उस जमानेमे सरकारी कालेजके प्रोफेसरका मुझे अपने यहा ठहराना एक असाधारण बात थी।

कृपलानीजीने बिहारकी और उसमें तिरहुत-विभागकी दीन-दशाका वर्णन किया और मुझे अपने कामकी कठिनाईका अदाज बताया। कृप-लानीजीने बिहारियोके साथ गाढा सबंध कर लिया था। उन्होंने मेरे कामकी बात वहाके लोगोसे कर रखी थी। (आ०, १९२७)

... ...

यह तो हुआ बिहारी-सघ। इनका मुख्य काम था लोगोके बयान लिखना। इसमे अध्यापक कृपलानी भला बिना शामिल हुए कैसे रह सकते थे? सिंधी होते हुए भी वह बिहारीसे भी अधिक बिहारी हो गये थे। मैंने ऐसे थोडे सेवकोको देखा है जो जिस प्रातमे जाते है वहीके लोगोमे दूध-शक्करकी तरह घुल-मिल जाते है और किसीको यह नही मालूम होने देते कि वे गैर प्रातके है। कृपलानी इनमे एक है। उनके जिम्मे मुख्य काम था द्वारपालका। दर्शन करने वालोसे मुझे बचा लेनेमे ही उन्होने उस समय अपने जीवनकी सार्थकता मान ली थी। किसीको हँसी-दिल्लगीसे और किसीको अहिसक धमकी देकर वह मेरे पास आनेसे रोकते थे। रातको अपनी अध्यापकी शुरू करते और तमाम साथियोको हँसा मारते और यदि कोई डरपोक आदमी वहा पहुँच जाता तो उसका हौसला बढ़ाते। (आ०, १९२७)

: ३४ :

वेंकटकृष्णय्या

छ: वर्षके बाद आज आप लोगोसे मिलकर मुझे बडा आनद हुआ है। आपको मालूम है कि पिछले दौरेके अवसरपर मेरा स्वास्थ्य बहुत गिर गया था और उसे सुधारनेके लिए ही मै आपके मैसूर राज्यमे आया था। इससे स्वभावत उन दिनोकी स्मृतिया मेरे लिए अत्यत सुखद है। श्रीमान् महाराजा साहब, दीवान और अन्य अफसरोसे लेकर मैसूरकी प्रजातकके प्रगाढ प्रेमका मैने अनुभव किया था। अब आप लोग अच्छी तरहसे समझ सकते है कि आपके बीच आज पुन आनेसे मुझे कितनी अधिक खुशी न हुई होगी। मैसूरके पितामह स्व० श्री वेकटकृष्णय्याके चित्रका मेरे हाथसे उद्घाटन कराके आपने मेरा आतरिक आनद और भी बढा दिया है। चित्रकारको उसकी कला-कुशलतापर मै बधाई देता हू। बडा ही सुदर और यथार्थ चित्रण किया है। कदाचित् आप सब यह न जानते होगे कि उस दिवगत महर्षिके सत्सगका आनद-लाभ मुझे उन दिनो कितना अधिक प्राप्त हुआ था। मै उनके अनेक सद्गुणोसे काफी परिचित हो गया था। मैने तभी जान लिया था कि आप लोगोके हृदयोमे उनके लिए एक खास स्थान है। मुझे विश्वास है कि उनके अनेक गुणोंका बखान करनेकी आप मुझसे आशा न करते होगे। आप तो यहाके निवासी ही ठहरे, इससे आपको मेरी अपेक्षा उनके गुणोका अधिक पता होगा। मै तो केवल यही आशा करता हू कि स्व० वेकटकृष्णय्याके जिन गुणोंका हम लोग आज आदर कर रहे है, उन्हे हम स्वय अपने जीवनमे उतारने की चेष्टा करेगे। इस आत्म-प्रशसासे सदा बचना ही अच्छा कि चलो, उस महान् आत्माके चित्रका उद्घाटन गाधीके हाथसे करा दिया और उनकी स्मृतिमे एक अच्छा उत्सव भी हमने मना लिया! (ह० से०, १६.१.३४)

: ३५ :

तात्यासाहब केळकर

दोस्तोंने मुझसे कई बार पूछा कि तात्यासाहब केळकर जैसे महान देशभक्तकी मृत्युका उल्लेख क्यों नहीं किया, खासकर इसलिए कि वे मेरे राजनैतिक विरोधी थे और इससे भी ज्यादा इसलिए कि महाराष्ट्रके एक दलके लोगोंमें मेरे बारेमें बहुत बडी गलतफहमी है। इन कारणोंने मुझे अपील नहीं किया, हालांकि मेरे टीकाकारोंके मुताबिक इन्हीं कारणोंको मुझे तात्यासाहबकी मृत्युका उल्लेख करनेके लिए प्रेरित करना चाहिए था।

मृत्यु जैसी बडी भारी घटनाका साधारण नियमके अनुसार उल्लेख कर देना मैं बहुत अनुचित मानता हूं। लेकिन देर हो जानेपर भी अपने पुराने-से-पुराने दोस्त हरिभाऊ पाठकके आग्रहके कारण अब मुझे ऐसा करना चाहिए।

यह बात मैं एकदम स्वीकार कर लूंगा कि अगर महत्त्वपूर्ण जन्मों और मृत्युओंका उल्लेख करना 'हरिजन' के लिए साधारण नियम होता तो तात्यासाहबकी मृत्युका सबसे पहले उल्लेख किया जाना चाहिए। लेकिन 'हरिजन'-पत्रोंको ध्यानसे पढनेवाले पाठकोंने देखा होगा कि 'हरिजन' ने ऐसे किसी नियमको नहीं माना है। इस तरहकी घटनाओंका उल्लेख करना मेरे अवकाश और किसी समयकी मेरी धुनपर निर्भर रहा है। पिछले कुछ अर्सेसे तो मैं नियमसे अखबार भी नहीं पढ सका हूं।

इसके खिलाफ कोई कुछ भी कहे, लेकिन मेरे राजनैतिक विरोधी होते हुए भी तात्यासाहबको मैंने हमेशा अपना दोस्त माना था, जिनकी टीकासे मुझे लाभ होता था। स्व० लोकमान्यके माने हुए अनुयायीके

नाते मै उन्हें जानता था और उनकी इज्जत करता था। मेरे खयालमें सन् १९१९ मे अखिल भारत कांग्रेस कमेटीकी एक बैठकमें मैने यह सिफारिशकी थी कि कांग्रेसका एक विधान तैयार किया जाय और कहा था कि अगर लोकमान्य, तात्यासाहबको और देशबंधु श्री निशीथ सेनको मददके लिए मुझे दे दें तो मैं विधान तैयार करके कांग्रेसके सामने पेश करनेकी जिम्मेदारी लेता हू। अपने साथ काम करनेवाले इन दोनों सज्जनोंकी प्रशंसामे मुझे यह कहना चाहिए कि हालाकि मैने समयपर विधानका अपना मसविदा उनके सामने पेशकर दिया, लेकिन उन्होने कभी उसमें रुकावट नही डाली। विधानके मसविदेपर विचार करनेके लिए जो कमेटी बैठी, उसमे तात्यासाहबने हमेशा ऐसी टीका की, जिससे उसे सुधारने-सवारनेमे मदद मिली। इसके अलावा, मेरे सुझावपर ही तात्यासाहबको हमेशा कांग्रेस वर्किंग कमेटीका सदस्य बनाया जाता था। मुझे ऐसा एक भी मौका याद नही आता, जब उनकी टीका—हालाकि वह कभी-कभी कडुवी होती थी—रचनात्मक न हुई हो। वह निडर थे, लेकिन सभ्य और मित्रता-भरे थे।

मुझे बहुत पहले यह मालूम हो चुका था कि वे मराठीके बडे विद्वान लेखक थे। मुझे इस बातका अफसोस रहा है कि मराठीके तात्यासाहब और स्व० हरिनारायण आप्टे जैसे आधुनिक लेखकोकी बुद्धिका अमृत-पान करनेके लिए मराठीका काफी अध्ययन करनेका मुझे कभी समय नही मिला। हिंदुस्तानी आकाशके श्री नरसोपत चिन्तामन केळकर-जैसे चमकीले तारेके अस्तकी उपेक्षा करना मेरे लिए असभ्य और अशोभन बात होगी। (ह० से०, ४ १ ४८)

: ३६ :

केलकर (आइस डाक्टर)

डा० तलवलकर एक विचित्र प्राणीको लेकर आए। वह महाराष्ट्री है। उनको हिंदुस्तान नही जानता। पर मेरे ही जैसे 'चक्रम' है, यह मैने उन्हे देखते ही जान लिया। वह अपना इलाज मुझपर आजमानेके लिए आए थे। बबईके ग्रेड मेडिकल कॉलेजमें पढते थे। पर उन्होने द्वारकाकी छाप—उपाधि—प्राप्त न की थी। मुझे बादमे मालूम हुआ कि वह सज्जन ब्रह्मसमाजी है। उनका नाम है केलकर। बडे स्वतत्र मिजाजके आदमी है। बरफके उपचारके बडे हिमायती है।

मेरी बीमारीकी बात सुनकर जब वह अपने बरफके उपचार मुझ-पर आजमानेके लिए आए तबसे हमने उन्हे 'आइस डाक्टर' की उपाधि दे रक्खी है। अपनी रायके बारेमे वह बडे आग्रही है। डिग्रीधारी डाक्टरो-की अपेक्षा उन्होने कई अच्छे आविष्कार किए है, ऐसा उन्हे विश्वास है। वह अपना यह विश्वास मुझमे उत्पन्न नही कर सके, यह उनके और मेरे दोनोके लिए दु खकी बात है। मै उनके उपचारोको एक हद तक तो मानता हू, पर मेरा खयाल है कि उन्होने कितने ही अनुमान बाधनेमे कुछ जल्दबाजी की है। उनके आविष्कार सच्चे हो या गलत, मैने तो उन्हे उनके उपचारका प्रयोग अपने शरीरपर करने दिया। बाह्य उपचारोसे अच्छा होना मुझे पसद था। फिर ये तो बरफ अर्थात् पानीके उपचार थे। उन्होने मेरे सारे शरीरपर बरफ मलना शुरू किया। यद्यपि इसका फल मुझपर उतना नही हुआ, जितना कि वह मानते थे, तथापि जो मै रोज मृत्यु-की राह देखता पडा रहता था सो अब नही रहा। मुझे जीनेकी आशा बधने लगी। कुछ उत्साह भी मालूम होने लगा। मनके उत्साहके साथ-साथ

शरीरमें भी कुछ ताजगी मालूम होने लगी। खुराक भी थोडी बढी। रोज पाच-दस मिनट टहलने लगा। "अगर आप अडेका रस पियें तो आपके शरीरमे इससे भी अधिक शक्ति आ जावेगी, इसका मैं आपको बिश्वास दिला सकता हू, और अडा तो दूधके ही समान निर्दोष वस्तु होती है। वह मास तो हरगिज नही कहा जा सकता। फिर यह भी नियम नही है कि प्रत्येक अडेसे बच्चे पैदा होते ही हों। मैं साबित कर सकता हू कि ऐसे निर्जीव अडे सेये जाने हैं जिनमेंसे बच्चे पैदा नही होने।"—उन्होंने कहा। पर ऐसे निर्जीव अडे लेनेको भी मैं तो राजी न हुआ। फिर भी मेरी गाडी कुछ आगे चली और मैं आस-पासके कामोंमें थोडी बहुत दिल-चस्पी लेने लगा। (आ०, १६२७)

: ३७ :

केलप्पन

श्री केलप्पन मेरी रायमे भारतवर्षके अच्छे-से-अच्छे मूक सेवकोमेसे एक है। उन्हे कभी भी प्रतिष्ठित पद मिल सकता था। मलाबारके वे प्रसिद्ध लोकसेवक है, परन्तु वे जानबूझकर 'दूरित' और 'अस्पृश्य' लोगोकी सेवामे कूद पडे है। वाईकोमके सत्याग्रहके समय मुझे उनके साथ काम करनेका आनद और सम्मान प्राप्त हुआ था। उसके पहले लबे समयस और उसके बाद से उन्होने दलित वर्गकी उन्नति मे अपना जीवन लगाया है। जनता जानती है कि लबे समयतक राह देखनेके बाद गुरूवायुरका मदिर हरिजनोके लिए खुलवानेके प्रयत्नमे उन्होंने प्राणार्पण करनेका अटल निश्चय कर लिया था। (म० डा०, ५.११.३२)

: ३८ :

हरमन कैलेनबेक

मि० कैलेनबेकका टॉल्स्टॉय फार्मपर और सो भी हमारे जैसा रहना एक आश्चर्यजनक वस्तु थी। गोखले सामान्य बातोसे आकर्षित होनेवाले पुरुष नही थे। कैलेनबेकके जीवनमे यह महान परिवर्तन देखकर वह भी अत्यन्त आश्चर्य-चकित हो गए थे। मि० कैलेनबेकने कभी धूप-जाड़ा नही सहा था, न किसी प्रकारकी मुसीबत पहले उठाई थी। अर्थात् स्वच्छद जीवनको उन्होने अपना धर्म बना लिया था। ससारके आनदोका उपभोग लेनेमे उन्होने किसी प्रकारकी कसर नही रहने दी थी। धनसे जितनी भी चीजे खरीदी जा सकती है उन सबको प्राप्त करनेके लिए उन्होने कभी कुछ उठा नही रक्खा था।

ऐसे पुरुषका फार्मपर रहना, वही खाना-पीना, फार्मवासियोके जीवनके साथ अपनेको पूर्णतया मिला देना, कोई ऐसी-वैसी बात नही थी। भारतीयोको इस बातपर बड़ा आश्चर्य और आनद भी हुआ। कितने ही गोरोने तो उन्हें मूर्ख या पागल ही समझ लिया, कितनोंके दिलोमे उनकी त्याग-शक्तिके कारण उनके प्रति आदर बढ गया। कैलनबेकने अपने त्यागपर न तो कभी पश्चाताप किया और न उन्हे वह दु ख-रूप मालूम हुआ। अपने वैभवसे उन्हे जितना आनन्द प्राप्त हुआ था, उतना ही, बल्कि उससे भी अधिक आनद वह अपने त्यागसे पा रहे थे। सादगीसे होनेवाले सुखोका वर्णन करते-करते वह तल्लीन हो जाते, यहातक कि कई बार तो उनके श्रोताओंको भी इस सुखका आस्वाद करनकी इच्छा हो जाती। छोटेसे लेकर बडे तक सबके साथ वह इस तरह प्रेम-पूर्वक हिलमिल जाते कि उनका छोटे-से-छोटा वियोग भी सबके लिए असह्य हो जाता। फल-पौधोका उन्हें बड़ा शौक था, इसलिए बागवानका काम

उन्होंने अपने अधीन रखा था और प्रतिदिन सुबह बालकों और बडोंसे उनकी काट-छाट, रक्षा वगैरहका काम लेते। मेहनत पूरी लेते, पर साथ ही उनका चेहरा इतना हँसमुख और स्वभाव ऐसा आनदमय था कि उनके साथ काम करते हुए सबको बडा आनद होता था। जब-जब कभी रातके २ बजेसे उठकर टॉल्स्टॉय फार्मसे कोई टोली जोहान्सबर्गको पैदल जाती तो कैनलबेक बराबर उसके साथ पाए जाते।

उनके साथ धार्मिक सवाद हमेशा होते रहते थे। मेरे नजदीक अहिसा, सत्य इत्यादि यमोको छोडकर तो और कौनसी बात हो सकती थी? सर्पादि जानवरोको मारना भी पाप है, इस विचारसे जिस तरह दूसरे यूरोपियन मित्रोंको आघात पहुचा ठीक उसी तरह पहले-पहल मि० कैलनबेकको भी पहुचा; पर अतमे तात्विक दृष्टिसे उन्होने इस सिद्धातको कबूल कर लिया। हम लोगोके साथ सबध होते ही इस बातको तो उन्होंने पहले ही मान लिया था कि जिस बातको बुद्धि स्वीकार करे उसपर अमल करना भी योग्य और उचित है। इसी कारण वह अपने जीवनमें बड़े-से-बडे परिवर्तन बिना किसी प्रकारके सकोचके एक क्षणमे कर सकते थे।

अब तो, चूकि सर्पादिको मारना अयोग्य पाया गया, इसलिए मि० कैनलबेकको उनकी मित्रता भी सपादन करनेकी इच्छा होने लगी। पहलेपहल तो उन्होने भिन्न-भिन्न जातिके सापोकी पहचान जाननेके लिए सापोसे सबध रखनेवाली किताबें इकट्ठी की। उनसे उनको पता चला कि सभी सर्प जहरीले नही होते; बल्कि कितने ही तो खेतीकी फसलकी रक्षा भी करते रहते है। हम सबको उन्होने सर्पोंकी पहचान बताई और अतमें एक जबरदस्त अजगरको उन्होंने पाला, जो फार्ममें ही उन्हें मिल गया था। उसे वह रोज अपने हाथोसे खिलाते थे। एक दिन नम्रता-पूर्वक मैंने मि० कैलनबेकसे कहा, "यद्यपि आपका भाव तो शुद्ध है तथापि अजगर शायद इसे समझ न सकता होगा; क्योंकि आपका प्रेम

भयसे मिश्रित है। इसको छोडकर उसके साथ इस तरह क्रीडा करनेकी आपकी मेरी या किसीकी शक्ति नही है, और हम तो उसी हिम्मतको प्राप्त करना चाहते हैं। इसलिए इस सर्पके पालनमे सद्भाव तो देखता हूं; पर अहिसा नही देख सकता। हमारा कार्य तो ऐसा हो कि जिसे यह अजगर भी पहचान सके। यह तो हमारा हमेशाका अनुभव है कि प्राणिमात्र केवल भय और प्रीति इन दो ही बातोको समझते है। आप इस सर्पको जहरीला तो मानते ही नही। केवल इसका स्वभाव आदि जानने भरके लिए आपने इसे कैद कर रखा है। यह तो स्वच्छद हुआ। मित्रतामे तो इसके लिए भी स्थान नही है।

मि० कैलनबेक मेरी दलीलको समझ गए; पर उनको यह इच्छा नही हुई कि अजगरको जल्दी छोड दे। मैने किसी प्रकारका दबाव तो डाला ही नही। सर्पके बर्तावमे मै भी दिलचस्पी ले रहा था। बच्चोको तो खूब आनद आ रहा था। सबसे कह दिया गया था कि उसे कोई सतावे नही; पर वह कैदी स्वय ही अपनी राह ढूढ रहा था। पिजडेका दरवाजा खुला रह गया या शायद उसीने उसे किसी तरह खोल लिया—परमात्मा जाने क्या हुआ—दो-चार दिनके अदर ही, एक दिन सुबह जब मि० कैलन-बेक अपने कैदीको देखनेके लिए गए तो उन्होने पिजडेको खाली पाया। वह और मै दोनों खुश हुए, पर इस प्रयोगके कारण सर्प हमेशाके लिए हमारी बातचीतका विषय हो गया। मि० कैलनबेक एक गरीब जर्मन को हमारे फार्मपर लाए थे। वह गरीब भी था और पगु भी। उसकी जाघ इतनी टेढी हो गई थी कि वह बिना लकडीके चल ही नही सकता था, पर वह बडा हिम्मतवर था। शिक्षित भी था, इसलिए सूक्ष्म बातोंमे भी बडी दिलचस्पी लेता था। फार्मपर वह भी भारतीयोका साथी बनकर सबसे हिलमिलकर रहता था। उसने तो निर्भयतापूर्वक सर्पोंके साथ खेलना तक शुरू कर दिया। छोटे-छोटे सर्पोंको वह अपने हाथमे ले आता और अपनी हथेलीपर उन्हे खिलाता था। कौन कह सकता है कि फार्म

अधिक दिन तक चला होता तो इस जर्मनके प्रयोगका क्या परिणाम होता। इसका नाम आल्बर्ट था।

इस प्रयोगके कारण यद्यपि सापका डर तो कम हो गया था तथापि कोई यह न समझले कि फार्मके अदर किसीको सापका भय ही नही रहा अथवा सापको मारनेकी सबको मनाई थी। हिसा-अहिसा और पापका ज्ञान प्राप्त कर लेना एक बात है और उसके अनुसार आचरण करना दूसरी बात। जिसके दिलमे सापका डर है और जो प्राण त्याग करनेके लिए तैयार नही है, वह सकटके समयमें सापको कभी नही छोडेगा। मुझे याद है कि ऐसा ही एक किस्सा फार्मपर हुआ था। पाठकोंने यह तो स्वय ही अदाज-से जान लिया होगा कि फार्मपर सर्पोका उपद्रव खूब रहा होगा; क्योंकि हम लोग वहा गए उससे पहले वहा कोई बस्ती नही थी; बल्कि कितने ही समयसे वह निर्जन ही था। एक दिन मि० कैलनबेकके कमरेमें अचा-नक ऐसी जगह एक साप दिखाई दिया, जहासे उसे भगाना या पकडना भी करीब-करीब असभव था। पहलेपहल फार्मके एक विद्यार्थीने उसे देखा। उसने मुझे बुलाया और पूछा—अब क्या करना चाहिए ? उसे मारनेकी आज्ञा भी उसने चाही। वह बिना इजाजत भी सापको मार सकता था; परन्तु साधारणतया क्या विद्यार्थी और क्या दूसरे, मुझसे बिना पूछे ऐसी कोई बात नही करते थे। इस सापको मारनेकी इजाजत देना मैने अपना धर्म समझा और आज्ञा दे भी दी। यह लिखते समय भी मुझे यह नही मालूम होता कि मैंने वह आज्ञा देनेमे कोई गलती की। सापको हाथमे पकडने जितनी अथवा अन्य किसी प्रकारसे फार्मवासियोको निर्भय कर देने जितनी शक्ति न तो मुझमें तब थी और न आज तक उसे प्राप्त कर सका हू। (द० अ० स०, १९२५)

... ...

वॉकसरस्टके लोगोंने दो दिन पहले ही सभा की थी। उसमे अनेक प्रकारका डर बताया गया था। कितने हीने तो यह कहा था कि यदि

भारतीय ट्रासवालमें प्रवेश करेंगे तो हम उनपर गोलिया चला देगे। इस सभामें मि० कैलनबेक गोरोको समझानेके लिए गए थे; पर उनकी बात कोई सुनना ही नही चाहता था। कई तो उन्हे मारनेके लिए उठ खडे हो गये। मि० कैलनबेक स्वय कसरती जवान है। सैंडोसे उन्होने कसरत सीखी थी। उनको यो डराना मुश्किल था। एक गोरेने उन्हे द्वद्व युद्धके लिए आह्वान किया। कैलनबेकने कहा, "मैंने शाति धर्मको स्वीकार किया है। इसलिए आपकी इच्छाकी पूर्ति करनेमे मै असमर्थ हू। पर मुझपर जिसे प्रहार करना हो, वह सुख-पूर्वक करे। मै तो इस सभामे बोलता ही रहूगा। आपने इसमें सभी गोरोको निमत्रित किया है। मै आपको यह सुनानेके लिए आया हू कि आपकी तरह सभी गोरे निर्दोष मनुष्योको मारनेके लिए तैयार नही है। एक ऐसा गोरा है, जो आपसे कह देना चाहता है कि आप भारतीयोपर जिन बातोका आरोप करते है, वे असत्य है। आप जो सोच रहे है वह भारतीय नही चाहते। उन्होने तो आपके राज्यकी आवश्यकता है और न वे आपके साथ लडना चाहते हैं। वे तो शुद्ध न्यायके लिए पुकार उठा रहे है। ट्रासवालमे हमेशा रहनेके हेतुसे वे प्रवेश नही कर रहे हैं, बल्कि उनपर जो अन्यायपूर्ण कर लादा गया है उसके खिलाफ सक्रिय पुकार उठानेके उद्देश्यसे वे यह कर रहे है। वे बहादुर है, हुल्लडबाज नही। वे आपके साथ लडेगे नही, पर यदि आप उनपर गोलिया चलावेगे तो उनको सहकर भी वे इसी तरह आगे बढते जावेंगे। आपकी बदूको या बल्लमके डरसे वे पीछे पैर नही हटावेगे। वे तो स्वय दु:ख सहकर आपके हृदयको पिघला देनेवाले लोग है। बस यही कहनेके लिए मे यहा आया हू। यह कहकर मैंने तो आपकी सेवा ही की है। आप सावधान हो जाइए और अन्यायसे बचिए।" इतना कहकर मि० कैलनबेक शात हो गए। गोरे कुछ शरमा गए। वह द्वद्व युद्ध करनेवाला कसरती जवान तो अब उनका मित्र हो गया। (द० अ० स०, १९२५)

. . . .

हर्मन कैलनबेकसे मेरा परिचय युद्धके पहले ही हुआ था। वह जर्मन है और यदि जर्मन-अग्रजोंका युद्ध न हुआ होता तो वह आज भारतमे होते। उनका हृदय विशाल है। वह बेहद भोले हैं। उनकी भावनाए बड़ी तीव्र हैं। वह शिल्पका धधा करते है। ऐसा एक भी काम नही कि जिसे करते हुए उन्होने ना की हो। जब मैंने जोहान्सबर्गसे अपना घरबार उठा लिया तब हम दोनों एक साथ ही रहते थे। मेरा खर्चा भी वही उठाते थे। घर तो खुद उन्हीका था। खाने वगैरहका खर्च देनेकी बात जब मै उठाता तब वह बहुत चिढ कर कहते कि उन्हे फिजूल-खर्चीसे बचानेवाला तो मै ही था और मुझे मना करते। उनके इस कथनमे कुछ सार अवश्य था। पर गोरोके साथ मेरा जो व्यक्तिगत सबध था, उसका वर्णन यहा नही किया जा सकता। गोखले दक्षिण अफ्रीका आए तब जोहान्सबर्गमे कैलनबेकके बगलेमे ही ठहराए गये थे। गोखले इस मकानसे बडे प्रसन्न हुए। उनको पहुचानेके लिए कैलनबेक जजीबार तक मेरे साथ आए थे। पोलकके साथ वह भी गिरफ्तार हो गए थे और जेलकी सैर कर आए थे। अतमे जब दक्षिण अफ्रीका छोडकर गोखलेसे विलायतमे मिलकर मै भारत लौट रहा था तब कैलनबेक भी साथमे थे। पर लडाईके कारण उन्हे भारत आनेकी आज्ञा नही मिली। अन्य जर्मनोंके साथ इन्हे भी नजरबद रखा गया था। महायुद्धके समाप्त होते ही वह फिर जोहान्सबर्ग चले गए है और उन्होंने अपना धधा शुरू कर दिया है। जोहान्सबर्गमे सत्याग्रही कैदियोके कुटुबोंको एक साथ रखनेका विचार जब हुआ तब मि० कैलनबेकने अपना ११०० बीघेका खेत कौमको योही बिना किराया लिए सौंप दिया। (द० अ० स०, १९२५)

. . . .

मेरी उनकी (मि० कैलनबेककी) मुलाकात अनायास हो गई थी। मि० खानके वह मित्र थे। मि० खानने देखा कि उनके अंदर गहरा वैराग्यभाव था। इसलिए मेरा खयाल है कि उन्होंने उनसे मेरी मुलाकात

कराई। जिन दिनों उनसे मेरा परिचय हुआ उन दिनोंके उनके शौक और शाह-खर्चीको देखकर मै चौंक उठा था, परतु पहली ही मुलाकातमें मुझसे उन्होंने धर्मके विषयमे प्रश्न किया। उसमें बुद्ध भगवान्की बात सहज ही निकल पडी। तबसे हमारा सपर्क बढता गया, वह इस हद-तक कि उनके मनमे यह निश्चय हो गया कि जो काम मैं करू वह उन्हे भी अवश्य करना चाहिए। वह अकेले थे। अकेलेके लिए मकान-खर्चके अलावा लगभग १२००) रुपये मासिक खर्च करते थे। यहासे अतको ठेठ इतनी सादगीपर आ गए कि उनका मासिक खर्च १२०) रुपये हो गया। मेरे घर-बार बिखेर देने और जेलसे आनेके बाद तो हम दोनो एकसाथ रहने लगे थे। उस समय हम दोनो अपना जीवन अपेक्षाकृत बहुत कडाईके साथ बिता रहे थे।

दूधके सबधमे जब मेरा उनसे वार्तालाप हुआ तब हम शामिल रहते थे। एक बार मि० कैलनबेकने कहा, "जब हम दूधमें इतने दोष बताते है तो फिर छोड क्यो न दे? वह अनिवार्य तो है ही नही।" उनकी इस रायको सुनकर मुझे बडा आनद और आश्चर्य हुआ। मैंने तुरत उनकी बातका स्वागत किया और हम दोनोने टाल्स्टाय-फार्ममें उसी क्षण दूधका त्याग कर दिया। यह बात १९१२की है। (आ०, १९२७)

. . . . . .

१९१४ ई०मे जब सत्याग्रह-सग्रामका अत हुआ तब गोखलेकी इच्छासे मैंने इग्लैड होकर देश आनेका विचार किया था। इसलिए जुलाई महीनेमे कस्तूरबाई, कैलनबेक और मैं, तीनो विलायत के लिए रवाना हुए। सत्याग्रह-सग्रामके दिनोमे मैंने रेलमे तीसरे दर्जेमे सफर शुरू कर दिया था। इस कारण जहाजमे भी तीसरे दर्जेके ही टिकट खरीदे, परतु इस तीसरे दर्जेमे और हमारे तीसरे दर्जेमे बहुत अतर है। हमारे यहा तो सोने-बैठनेकी जगह भी मुश्किलसे मिलती है और सफाईकी तो बात ही क्या पूछना! किंतु इसके विपरीत यहाके जहाजोमे जगह काफी रहती थी

श्रौर सफाईका भी अच्छा खयाल रखा जाता था। कंपनीने हमारे लिए कुछ श्रौर भी सुविधाये कर दी थी। कोई हमको दिक न करने पाए, इस खयालसे एक पाखानेमे ताला लगाकर उसकी ताली हमे सौंप दी गई थी, श्रौर हम फलाहारी थे इसलिए हमको ताजे श्रौर सूखे फल देनेकी श्राज्ञा भी जहाजके खजाचीको दे दी गई थी। मामूली तौरपर तीसरे दर्जेके यात्रियोको फल कम ही मिलते है श्रौर मेवा तो कतई नही मिलता। पर इस सुविधाकी बदौलत हम लोग समुद्रपर बहुत शातिसे १० दिन बिता सके।

इस यात्राके कितने ही सस्मरण जानने योग्य है। मि० कैलनबेकको दूरबीनोका बडा शौक था। दो-एक कीमती दूरबीने उन्होने श्रपने साथ रक्खी थी। इसके विषयमे रोज हमारी श्रापसमे बहस होती। मै उन्हे यह जचानेकी कोशिश करता कि यह हमारे श्रादर्शके श्रौर जिस सादगीको हम पहुचना चाहते है उसके श्रनुकूल नही है। एक रोज तो हम दोनोंमे इस विषयपर गरमागरम बहस हो गई। हम दोनो श्रपनी कैबिनकी खिडकीके पास खडे थे।

मैने कहा—"श्रापके श्रौर मेरे बीच ऐसे झगडे होनेसे तो क्या यह बेहतर नही है कि इस दूरबीनको समुद्रमे फेक दे श्रौर इसकी चर्चा ही न करे?"

मि० कैलनबेकने तुरत उत्तर दिया—"जरूर, इस झगडेकी जडको फेक ही दीजिए।"

मैने कहा—"देखो, मै फेंके देता हू!"

उन्होने बे-रोक उत्तर दिया—"मै सचमुच कहता हू, फेक दीजिए।"

श्रौर, मैने दूरबीन फेक दी। उसका दाम कोई सात पौड था, परतु उसकी कीमत उसके दामकी श्रपेक्षा मि० कैलनबेकके उसके प्रति मोहमे थी। फिर भी मि० कैलनबेकने श्रपने मनको कभी इस बातका दु:ख न

होने दिया। उनके मेरे बीच तो ऐसी कितनी ही बाते हुआ करती थी। यह तो उसका एक नमूना पाठकोंको दिखाया है। (आ०, १९२७)

... .

कैलनबेक मुझसे कहा करता था कि तुम इतनी तेजीसे आगे बढ रहे हो कि आखिर तुम्हे सब छोड देगे, वे तुम्हारे साथ आगे बढ नही सकेगे। मैने कहा कि तुम भी छोड दोगे ? तो कहने लगा, "मै कैसे छोड सकता हू। हम तो एक जान दो शरीर जैसे है और मैने तुमको अपनी गरजके लिए ढूढा है, तुमने मुझे नही ढूढा। मै तो तुम्हे कभी नही छोड सकता।" मगर अब तो वह भी छूट गया है। उसके विचार भी मुझसे अलग पड गए है। यहूदियोके बारेमे उसका इतना पक्षपात है कि क्या कहना ! वह मानता है कि जर्मनी यहूदियोका दुश्मन है और जर्मनीसे लडनेवाले अग्रेजोके साथ मै लड रहा हू। उसका वह समर्थन नही कर पाया। जब. वह यहा आया था तब मैने उसे बहुत समझाया था कि क्यो मैने यहूदियोको हिंसासे भरे हुए कहा है। आज तो वे हिंसाको ही अपने हृदयमें पोषण दे रहे हैं। मनमे हिसा रहे तो बाहरकी अहिंसाका कोई अर्थ नही रहता। वह मेरी बात कुछ समझा भी सही। मैने उसे इस आशयका एक खुला पत्र यहूदियोको लिखनेको कहा था। उसने लिखा भी, मगर उसे ऐसा लगता था कि इस बारेमे उसकी कौन सुनेगा। इसलिए अखबारोमे भेजा नही। मैने कहा, "भले न सुने, तुम अपना धर्म पूरा करो। भले ही फिल-स्तीनमें जाकर लडो और मर जाओ, यह मै सहन करूगा, मगर आज जैसे यहूदियोंका चल रहा है वह असह्य है। हृदयमे हिंसा है तो बाहर इससे उल्टा बतानेमे कोई अर्थ नही।" (का० क०, १९९४२)

: ३६ :

कोट्स

दूसरे दिन एक बजे मैं मि० बेकरके प्रार्थना-समाजमे गया। वहा कुमारी हैरिस, कुमारी गेब, मि० कोट्स आदिसे परिचय हुआ। सबने घुटने टेककर प्रार्थना की। मैंने भी उनका अनुकरण किया। प्रार्थनामे जिसका जो मन चाहता, ईश्वरसे मागता। दिन शातिके साथ बीते, ईश्वर हमारे हृदयके द्वार खोलो, इत्यादि प्रार्थना होती। उस दिन मेरे लिए भी प्रार्थना की गई। 'हमारे साथ जो यह नया भाई आया है, उसे तू राह दिखाना। तूने जो शाति हमे प्रदान की है, वह इसे भी देना। जिस ईसामसीहने हमे मुक्त किया है, वह इसे भी मुक्त करे। यह सब हम ईसामसीहके नामपर मागते है।' इस प्रार्थनामे भजन-कीर्तन न होते। किसी विशेष बातकी याचना ईश्वरसे करके अपने-अपने घर चले जाते। यह समय सबके दोपहरके भोजनका होता था, इसलिए सब इस तरह प्रार्थना करके भोजन करने चले जाते। प्रार्थनामे पाच मिनटसे अधिक समय न लगता।

कुमारी हैरिस और कुमारी गेबकी अवस्था प्रौढ थी। मि० कोट्स क्वेकर थे। ये दोनों महिलाये साथ रहती। उन्होने मुझे हर रविवारको ४ बजे चाय पीनेके लिए अपने यहा आमत्रित किया। मि० कोट्स जब मिलते तब हर रविवारको उन्हे मैं अपना साप्ताहिक धार्मिक रोजनामचा सुनाता। मैंने कौन-कौन-सी पुस्तके पढी, उनका क्या असर मेरे दिलपर हुआ, इसकी चर्चा होती। ये कुमारिकाएँ अपने मीठे अनुभव सुनाती और अपनेको मिली परम-शातिकी बाते करती।

मि० कोट्स एक शुद्ध भाववाले कट्टर युवक क्वेकर थे। उनसे मेरा

घनिष्ठ संबंध हो गया। हम बहुत बार साथ घूमने भी जाते। वह मुझे दूसरे भाइयोके यहा ले जाते।

कोट्सने मुझे किताबोसे लाद दिया। ज्यो-ज्यो वह मुझे पहचानते जाते त्यो-त्यो जो पुस्तके उन्हे ठीक मालूम होती, मुझे पढनेके लिए देते। मैंने भी केवल श्रद्धाके वशीभूत होकर उन्हें पढना मजूर किया। इन पुस्तकोंपर हम चर्चा भी करते।

ऐसी पुस्तके मैने १८९३मे बहुत पढी। अब सबके नाम मुझे याद नही रहे हैं। कुछ ये थी—सिटी टेंपलवाले डा० पारकरकी टीका, पियर्सन की 'मेनी इनफॉलिबल प्रूफ्स', बटलर कृत 'एनेलाजी' इत्यादि। कितनी ही बाते समझमे न आती, कितनी ही पसद आती, कितनी ही न आती। यह सब मै कोट्ससे कहता। 'मेनी इनफॉलिबल प्रूफ्स'के मानी हैं 'बहुतसे दृढ प्रमाण', अर्थात् बाइबिलमें रचयिताने जिस धर्मका अनुभव किया उसके प्रमाण। इस पुस्तकका असर मुझपर बिलकुल न हुआ। पारकरकी टीका नीतिवर्द्धक मानी जा सकती है; परतु वह उन लोगोकी सहायता नही कर सकती जिन्हे ईसाई-धर्मकी प्रचलित धारणाओंपर सदेह है। बटलरकी 'एनेलाजी' बहुत क्लिष्ट और गभीर मालूम हुई। उसे पाच-सात बार पढना चाहिए। वह नास्तिकको आस्तिक बनानेके लिए लिखी गई मालूम हुई। उसमे ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करनेके लिए जो युक्तिया दी गई है, उनसे मुझे लाभ न हुआ; क्योकि यह मेरी नास्तिकता-का युग न था! और जो युक्तिया ईसामसीहके अद्वितीय अवतारके सबधमें अथवा उसके मनुष्य और ईश्वरके बीच सधि-कर्त्ता होनेके विषयमे दी गई थी, उनकी भी छाप मेरे दिलपर न पडी।

पर कोट्स पीछे हटनेवाले आदमी न थे। उनके स्नेहकी सीमा न थी। उन्होने मेरे गलेमे वैष्णवकी कठी देखी। उन्हे यह वहम मालूम हुआ और देखकर दु ख हुआ। "यह अध-विश्वास तुम जैसोको शोभा नही देता। लाओ, तोड़ दू।"

"यह कठी तोडी नही जा सकती। माताजीकी प्रसादी है।"

"पर इसपर तुम्हारा विश्वास है?"

"मै इसका गूढार्थ नही जानता। यह भी नही भासित होता कि यदि इसे न पहनू तो कोई अनिष्ट हो जायगा, परतु जो माला मुझे माताजीने प्रेम-पूर्वक पहनाई है, जिसे पहनानेमे उसने मेरा श्रेय माना, उसे मै बिना प्रयोजन नही निकाल सकता। समय पाकर जीर्ण होकर जब वह अपने-आप टूट जायगी तब दूसरी मगाकर पहननेका लोभ मुझे न रहेगा; पर इसे नही तोड सकता।"

कोट्स मेरी इस दलीलकी कद्र न कर सके, क्योकि उन्हे तो मेरे धर्मके प्रति ही अनास्था थी। वह तो मुझे अज्ञान-कूपसे उबारनेकी आशा रखते थे। वह मुझे यह बताना चाहते थे कि अन्य धर्मोंमे थोडा-बहुत सत्याश भले ही हो, परंतु पूर्ण सत्य-रूप ईसाई-धर्मको स्वीकार किए बिना मोक्ष नही मिल सकता और ईसामसीहकी मध्यस्थताके बिना पाप-प्रक्षालन नही हो सकता तथा पुण्य-कर्म सारे निरर्थक है। कोट्सने जिस प्रकार पुस्तकोसे परिचय कराया उसी प्रकार उन ईसाइयोसे भी कराया, जिन्हे वह कट्टर समझते थे। इनमे एक प्लीमथ ब्रदर्संका भी परिवार था।

'प्लीमथ ब्रदरन्' नामक एक ईसाई-सम्प्रदाय है। कोट्सके कराये बहुतेरे परिचय मुझे अच्छे मालूम हुए। ऐसा जान पडा कि वे लोग ईश्वर-भीरु थे, परतु इस परिवारवालोने मेरे सामने यह दलील पेश की—"हमारे धर्मकी खूबी ही तुम नही समझ सकते। तुम्हारी बातोसे हम देखते है कि तुम हमेशा बात-बातमे अपनी भूलोका विचार करते हो, हमेशा उन्हे सुधारना पडता है, न सुधरे तो उनके लिए प्रायश्चित करना पडता है। इस क्रियाकाडसे तुम्हे मुक्ति कब मिल सकती है? तुमको शाति तो मिल ही नही सकती। हम पापी है, यह तो आप कबूल ही करते है। अब देखो हमारे धर्म-मन्तव्यकी परिपूर्णता। वह कहता है

मनुष्यका प्रयत्न व्यर्थ है। फिर भी उसे मुक्तिकी तो जरूरत है ही। ऐसी दशामे पापका बोझ उसके सिरसे उतरेगा किस तरह ? इसकी तरकीब यह कि हम उसे ईसामसीहपर ढो देते है, क्योकि वह तो ईश्वरका एकमात्र निष्पाप पुत्र है। उसका वरदान है कि जो मुझे मानता है वह सब पापोसे छूट जाता है। ईश्वरकी यह अगाध उदारता है। ईसामसीह-की इस मुक्ति-योजनाको हमने स्वीकार किया है, इसलिए हमारे पाप हमे नही लगते। पाप तो मनुष्यसे होते ही है। इस जगत्मे बिना पापके कोई कैसे रह सकता है ? इसलिए ईसामसीहने सारे ससारके पापोका प्रायश्चित एकबारगी कर लिया। उसके इस बलिदानपर जिसकी श्रद्धा हो वही शाति प्राप्त कर सकता है। कहा तुम्हारी शाति और कहा हमारी शाति !"

यह दलील मुझे बिलकुल न जची। मैने नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया—"यदि सर्वमान्य ईसाई-धर्म यही हो, जैसा कि आपने बयान किया है, तो इससे मेरा काम नही चल सकता। मै पापके परिणामसे मुक्ति नही चाहता। मै तो पाप-प्रवृत्तिसे, पाप-कर्मसे, मुक्ति चाहता हू। जबतक वह न मिलेगी मेरी अशाति मुझे प्रिय लगेगी।"

प्लीमथ ब्रदरने उत्तर दिया—"मै तुमको निश्चयसे कहता हू कि तुम्हारा यह प्रयत्न व्यर्थ है। मेरी बातपर फिरसे विचार करना।"

और इन महाशयने जैसा कहा था वैसा ही कर भी दिखाया—जान-बूझकर बुरा काम कर दिखाया।

परतु तमाम ईसाइयोकी मान्यता ऐसी नही होती, यह बात तो मै इनसे परिचय होनेके पहले भी जान चुका था। कोट्स खुद पाप-भीरु थे। उनका हृदय निर्मल था, वह हृदय-बुद्धिकी सभावनापर विश्वास रखते थे। वे बहने भी इसी विचारकी थी। जो-जो पुस्तके मेरे हाथ आई उनमे कितनी ही भक्ति-पूर्ण थी, इसलिए प्लीमथ ब्रदर्सके परिचयसे कोट्सको जो चिंता हुई थी उसे मैने दूर कर दिया और उन्हे विश्वास दिलाया कि प्लीमथ ब्रदरकी अनुचित धारणाके आधारपर मैं सारे ईसाई-

धर्मके खिलाफ अपनी राय न बना लूगा । मेरी कठिनाइया तो बाइबिल तथा उसके रूढ़ अर्थके सबधमे थी । (आ०, १९२७)

: ४० :

मणिलाल कोठारी

हरिजन-आदोलन इतनी तेजीसे शुरू हुआ उसके पहलेसे ही मणिलाल कोठारीको मै जानता था और जबसे मेरा उनसे परिचय हुआ तभी मैंने यह देख लिया था कि उनमे छूतछातकी जरा भी गध नही थी। हरिजनो-की सहायता करते हुए जो जोखिम उठानी चाहिए उसे उठानेको वे हमेशा तैयार रहते थे । अगर यह कहा जाय कि अच्छे कामोके लिए पैसा इकट्ठा करनेकी उनमे अद्वितीय शक्ति थी तो इसमे कोई अतिशयोक्ति नही । उनमे यो तो बहुत-सी शक्तिया थी, किंतु पारमार्थिक कार्योंके लिए धन-सग्रह करनेकी उनमे जो शक्ति थी, उसके लिए तो लोग हमेशा ही उन्हे याद करेंगे । हरिजन-कार्यके लिए उन्होने काफी पैसा इकट्ठा किया था और हिम्मतके साथ मुझसे कहा था कि अगर मै अच्छा हो जाऊ तो जितना पैसा आपको चाहिए उतना ला दूगा । पैसा इकट्ठा करा देनेके लिए जहा-तहासे उनके पास मागे आती ही रहती थी । मणिलाल तीव्र लगनके आदमी थे । कोई भी पारमार्थिक काम हो, वह उन्हे अपनी तरफ खीच सकता था । सेवा करनेका उनका लोभ उन्हे चाहे जिस जोखिममे उतार सकता था । उनकी कमी उनके कुटुबको तो खटकेगी ही हरिजनोंको भी खटकेगी, पर दूसरे अनेक सेवाक्षेत्रोमे उनके अभावकी बहुत समयतक याद रहेगी, इसमे सदेह नही ।

ईश्वर उनकी आत्माको शाति प्रदान करे । (ह० से०, २३ १० ३७)

: ४१ :

धर्मानन्द कौसंबी

[बौद्ध विद्वान श्रीकौसबीकी मृत्युका समाचार देते हुए गाधीजीने कहा]

शायद आपने उनका नाम नही सुना होगा। इसलिए शायद आप दु:ख मानना नही चाहेगे। वैसे किसी मृत्युपर हमे दु:ख मानना चाहिए भी नही, लेकिन इन्सानका स्वभाव है कि वह अपने स्नेही या पूज्यके मरनेपर दु:ख मनाता ही है। हम लोग ऐसे बने है कि जो अपने कामकी डुग्गी पिटवाता फिरता है और राज्य-कारणमे उछाले भरता है, उसको तो हम आसमानपर चढा देते है, लेकिन मूक काम करनेवालोको नही पूछते।

कौसबीजी ऐसे ही एक मूक कार्यकर्त्ता थे। उनका जन्म गोवामे हुआ था। जन्मसे वह हिंदू थे, पर उनको ऐसा विश्वास बैठ गया था कि बौद्ध धर्ममे अहिंसा, शील आदि जितने बढे-चढे है, उतने दूसरे धर्ममे, वेद-धर्ममे भी नही है। इसलिए उन्होने बौद्ध धर्म स्वीकार किया और बौद्ध शास्त्रोके अध्ययनमे लग गए और उसमे इतने बडे विद्वान् हो गए कि शायद ही हिंदुस्तानमे उनकी बराबरीका और कोई हो। उन्होने गुजरात विद्यापीठ व काशी विद्यापीठमे पाली भाषा पढाई और अपनी अगाध विद्वत्ताका ज्ञान-दान किया था।

उन्होने मेरे पास १०००) भेज दिए, जो किसीने उनको दिए थे। उन्होंने मुझको लिखा था कि किसीको पाली पढनेके लिए लंका भेज देना। लेकिन मैंने उनसे पूछा कि क्या लंका जाकर पढनेसे किसीको बौद्ध धर्म प्राप्त हो जायगा? मैंने तो दुनियामे बौद्धोसे कहा है कि आपको अगर बौद्ध धर्म जानना है तो आप उसके जन्म-स्थान भारतमे ही उसे

पायेंगे। जहापर वेद-धर्मसे वह निकला है, वही आपको उसे खोजना है और शकराचार्य-जैसे अद्वितीय विद्वान्, जो प्रच्छन्न बुद्ध कहलाए, उनके ग्रथोको भी आप समझेंगे तब बौद्ध धर्मका गूढ रहस्य आप जान पायेंगे।

लेकिन कौसबीजीकी विद्वत्तासे मै अपनी तुलना नही कर सकता। मै तो इग्लैडमें भोज खाकर बना हुआ बैरिस्टर हू। मेरे पास सस्कृतका ज्ञान जरा-सा है। अगर आज मै महात्मा बना हू तो इसलिए नही कि अग्रेजीका बैरिस्टर हू, पर इसलिए कि मैने सेवा की है और वह सेवा सत्य और अहिसाके द्वारा की है। इस सत्य और अहिसाकी पूजामे जो थोडी-सी सफलता मुझे मिलती चली गई उसीके कारण आज मेरी थोडी-बहुत पूछ है।

कौसबीजीकी समझमे यह समा गया कि अब यह शरीर अधिक काम करनेके योग्य नही रहा है तो उन्होने अनशन करके प्राण-त्याग करनेकी ठानी। टडनजीके कहनेपर मैने उनका अनशन उनकी (कौसबीजीकी) अनिच्छासे तुडवाया, पर उनका हाजमा बहुत खराब हो चुका था और कुछ भी खुराक ले ही नही सकते थे। तब दुबारा सेवाग्राममे चालीस दिनतक केवल जलपर ही रहकर उन्होने शरीरात किया। बीमारीमे नाममात्रकी सेवा और औषधि भी नही ली। जन्म-स्थान गोवामे जानेका मोह भी उन्होने तजा और अपने पुत्र आदिको अपने पास न आनेकी आज्ञा दी। मृत्युके बादके लिए कह गए कि 'मेरा कोई स्मारक न बनाया जाय।' शरीरको जलाने या दफनानेमे जो सस्ता पडे वह किया जाय और इस तरह उन्होने बुद्धका नाम रटते-रटते अतिम गहरी निद्रा ली, जो हरेक जन्मनेवालेको कभी-न-कभी लेनी ही है। मृत्यु हरेकका परम मित्र है, वह अपने कर्मके मुताबिक आवेगा ही। भले ही कोई यह बता दे कि अमुकका जन्म अमुक समय होगा, पर मौत कब आवेगी यह कोई भी आजतक नही बता पाया है। (ग्रा० प्र० ५.६.४७)

... .

प्रोफेसर कोसबीजी जो बडे विद्वान थे और पाली भाषामे अग्रगण्य माने जाते थे। वे अभी-अभी सेवाग्राम आश्रममे चल बसे । उनके बारेमे वहांके सचालक बलवतसिहका पत्र है, जिसमे कहा गया है कि ऐसी मृत्यु आजतक मैने नही देखी । यह तो बिल्कुल ऐसी हुई जैसी कबीरजीने बताई है .

दास कबीर जतन सो ओढी,
ज्यो-की-त्यो धर दीनी चदरिया।

इस तरह हम सभी लोग मृत्युकी मैत्री साध ले तो हिदुस्तानका भला ही होनेवाला है। (प्रा० प्र०, ८ ६ ४७)

: ४२ :

सरदार खडगसिंह

जेलकी चहारदीवारीसे बाहर अपने बीच सरदार खडगसिहको पुनः राष्ट्रीय काम करते हुए देखकर प्रत्येक देशभक्तको आनद होगा। अपने दुर्दमनीय स्वभाव और छुटकारा पानेके लिए अधिकारियोके सामने अपना सिर झुकानेसे इन्कार करनेके कारण अपने देशभाइयोंके हृदयमे उन्होने बहुत ऊचा स्थान प्राप्त कर लिया है। परमात्मासे प्रार्थना है कि इस स्वाधीनताके युद्धमे वे वर्षोतक देशकी सेवा करे। (हि० न०, २३ ६ २७)

: ४३ :

डा० एन० बी० खरे

पिछले सप्ताह डाक्टर खरे और उनकी हरिजन-सेवक-समितिने मेरे प्रवासके कार्यक्रमके सबधमे बडी ही सुदर व्यवस्था की थी। डाक्टर खरेको स्वेच्छासे काम करनेवाले अनेक सुयोग्य साथियोकी सहायता न मिलती तो यह कार्यक्रम पूरा ही नही हो सकता था। डाक्टर साहबने, हृदयकी पुरानी व्याधिसे पीडित होते हुए भी, इन कठिन दिनोमे परिश्रम करनेमे कोई कसर उठा नही रक्खी और अपने साथियोसे भी उन्होंने खूब काम लिया। नागपुरकी विराट् सभामे बिजलीकी सैकडो बत्तिया लगाने और ऊचा पक्का मच तैयार करनेमे जो खर्च पडा वह कुछ सज्जनोंने आपसमे ही इकट्ठा करके दे दिया था। दानकी थेलियोमेंसे इस खर्चके लिए एक पैसा भी नही निकाला गया। उन दिनो श्रीगणपत राव टिकेकरका मकान, जहा मै ठहरा हुआ था, एक तरहसे धर्मशाला बन गया था। टिकेकर-बधुओने हमारे बडे दलको तथा दूसरे कार्योंके सबधमे आए हुए अन्य लोगोको आराम और सुविधाए पहुचानेमे परिश्रम तथा खर्चमे जरा भी कमी नही रक्खी। मैने देखा कि नागपुर और आसपासके गावोमे मेरे दौरेको सफल बनानेमे काग्रेसवालो एव दूसरे लोगोने पूरा सहयोग दिया। इसमे सदेह ही नही कि उन सबके सहयोगसे मेरा यह दौरा सफल हुआ। डाक्टर खरे और उनके साथियोने इस अवसरपर जो असीम परिश्रम किया उसके लिए मै उन्हे धन्यवाद देता हू। इस महान् शुद्धि-कार्यमे जो परिश्रम और सावधानी उन्होने दिखाई, वह आवश्यक ही थी।
(ह० से०, २४ ११ ३३)

: ४४ :

नारायण मोरेश्वर खरे

हाल हीमे स्थापित हुए सत्याग्रह-आश्रमके लिए एक अच्छा सगीत-शिक्षक देनेको जब मैने स्वर्गीय मगनलाल गाधीको प० विष्णु दिगबरके पास भेजा तो पडित विष्णु दिगबरजी समझ गए कि मै किस तरहका आदमी चाहता हू। पडित खरेका उन्होने जो चुनाव किया वह ठीक ही निकला, क्योकि जिस कामके लिए उन्हे लाया गया उसे उन्होने इतनी अच्छी तरह किया जिससे अच्छी तरह और किसीने न किया होता। उनकी मृत्युसे जो स्थान खाली हुआ है वह शायद खाली ही बना रहेगा, क्योकि जिन्होने कलाको अपनाया है, उनमे ऐसे बहुत कम है जिन्होने उसमे पडकर भी अपने जीवनको शुद्ध और निर्दोष बनाये रक्खा हो। बल्कि हम लोगोमें किसी कदर यह भावना-सी जम गई है कि कलाका व्यक्तिगत जीवनकी शुद्धतासे कोई सरोकार नही है। लेकिन अपने सारे अनुभवके आधारपर मै कह सकता हू कि इससे असत्य और कोई बात नही हो सकती। ज्यो-ज्यो मै अपने पार्थिव जीवनके अतपर आ रहा हू, मै यह कह सकता हू कि जीवनकी शुद्धता ही सबसे ऊची और सच्ची कला है। कृत्रिम आवाजसे सुदर सगीत पैदा करनेकी कला तो बहुत लोग हासिल कर सकते है, लेकिन शुद्ध जीवनकी एकरसतासे उस सगीतको पैदा करनेकी कला बिरले ही प्राप्त करते है। पडित खरे उन्ही बिरले व्यक्तियोमेंसे थे, जिन्होने सपूर्णताके साथ उस कलाको प्राप्त किया है। ऐसा कोई अवसर नही हुआ जबकि उनके जीवनकी शुद्धताके बारेमे मुझे जरा-सा भी सदेह हुआ हो।

पडितजीने सगीतमे गुजरातका जो रस पैदा किया है उसे गुजरातको बराबर जारी रखना चाहिए। मै आशा करता हू कि उनके दोनो बच्चे

उन्हींके योग्य साबित होगे और उनकी वीर पत्नी अपने त्यागमय जीवनके द्वारा भारतीय विधवाका आदर्श उपस्थित करेगी, इसमे मुझे कोई सन्देह नही है । रही पडितजीकी बात, सो यह तो ठीक है कि अपने जीवनके मध्यकालमे ही उनकी मृत्यु हो गई है, लेकिन उनकी मौत ऐसी मौत है कि हरएक उसके लिए ईर्षा करेगा, क्योकि इस पुण्यस्थान मे काम करते हुए उनकी मृत्यु हुई है और अपनी मृत्युका ज्ञान होजानेके कारण राम-नामका उच्चारण करते हुए तथा उसी पवित्र नामकी ध्वनि श्रवण करते हुए उनका अवसान हुआ है। ईश्वर करे कि गुजरात उनके मृदु स्मरणको सुरक्षित रखे ! (ह० से० १९ २ ३८)

• •

तार माना जासकने जैसा नही है । जब तुमने बीमारीकी बात कही थी तब मनमे कुछ खटका हुआ था, लेकिन तुरत ही उसकी उपेक्षा करदी और यह मानकर बैठ गया कि उनका कुछ बिगडेगा नही । दूसरे पडितजीका मिलना अशक्य समझता हू । सगीत और श्रेष्ठ नीतिका मेल कहा ढूढूगा ? (मृत्युपर दिया गया तार)

: ४५ :

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

खान अब्दुल गफ्फार खाके सपर्कमे आनेकी अभिलाषा तो मुझे हमेशा रही है, लेकिन गत वर्षके आखिरी महीनोसे पहले मुझे कभी ऐसा अवसर नही मिला कि मै कुछ समय तक उनके साथ रहता । परंतु हजारीबाग जेलसे छूटनेके बाद, सौभाग्यवश शीघ्र ही, न केवल खान अब्दुल गफ्फार खा, बल्कि उनके भाई डा० खानसाहब भी मेरे पास आ गए। भाग्यकी बात

है कि २७ दिसबर तक सीमाप्रातमे उनका प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया और काग्रसके आदेशके अनुसार वे आज्ञा भग कर नही सकते थे। अत उन्होंने वर्धामे सेठ जमनालाल बजाजका आतिथ्य स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मुझे इन भाइयोके घनिष्ट सपर्कमे आनेका मौका मिल गया। जितना-जितना मै उन्हे जानता गया, उतना ही अधिक मै उनकी ओर आकर्षित होने लगा। उनकी पारदर्शी सचाई, स्पष्टवादिता और हद दर्जेकी सादगीका मुझपर बहुत प्रभाव पडा। साथ ही मैने यह भी देखा कि सत्य और अहिसामे केवल नीतिके तौरपर नही, वरन् ध्येयके रूपमे उनका विश्वास हो गया है। छोटे भाई खान अब्दुल गफ्फार खा तो मुझे गहरी धार्मिक भावनाओसे ओतप्रोत प्रतीत हुए, परतु उनके विचार सकीर्ण नही है। मुझे तो वह विश्वप्रेमी मालूम पडे। उनमे यदि कुछ राजनीतिकता है तो उसका आधार उनका धर्म है। और डाक्टर साहबकी तो कोई राजनीति है ही नही। ('दो खुदाई खिदमतगार' की भूमिका)

खुदाई खिदमतगार चाहे जैसे हो, या अतमे वे चाहे जैसे साबित हो, पर उनके नेताके बारेमे तो, जिसे वे बादशाह खान कहकर खुश होते है, कोई सदेह नही हो सकता। वह तो असदिग्ध रूपसे ईश्वर-भीरु पुरुष है। उसकी प्रतिक्षणकी अखड उपस्थितिमे उनकी परम श्रद्धा है और वह बखूबी जानते है कि उनका आदोलन तभी प्रगति करेगा जब ईश्वरकी वैसी इच्छा होगी। ईश्वरके इस कार्यमे अपनी सारी आत्माको उडेलकर, परिणामकी वह बहुत ज्यादा फिक्र नही करते। उनके लिए तो यह महसूस करना ही काफी है कि अहिसाको उसके पूरे रूपमे स्वीकार किए बगैर पठानोकी मुक्ति नही। इस बातमे वह कोई गौरव अनुभव नही करते कि पठान अच्छे लडाका है। वह उनकी बहादुरीकी तो कद्र करते है, लेकिन उनका ऐसा खयाल है कि बहुत ज्यादा प्रशसासे उसे बिगाड दिया गया है। अपने पठानोको वह समाजके गुडोके रूपमे नही देखना चाहते। उनका यह विश्वास

है कि पठानोको अज्ञानमे रखकर उनसे अपनी स्वार्थ-सिद्धि की गई है। वह पठानोको और अधिक वीर बनाना चाहते है और चाहते है कि उनकी वीरताके साथ सच्चे ज्ञानका भी समावेश होजाय। उनका खयाल है कि ऐसा केवल अहिसाके द्वारा ही हो सकता है।

और चूकि खानसाहब अहिसामे विश्वास करते है, इसलिए उन्होंने चाहा कि खुदाई खिदमतगारोके बीच जितने अधिक समयतक मै रह सकू उतने अधिक समयतक रहू। मुझे तो वहा आनेके लिए किसी प्रलोभनकी जरूरत ही नही थी, क्योकि मै तो खुद ही उनसे परिचय प्राप्त करनेके लिए उत्सुक था और उनके दिलो तक पहुचना चाहता था। अब भी मै ऐसा कर सका हू या नही, यह मै नही जानता। बहरहाल, मैने प्रयत्न तो किया ही है।

लेकिन यह बतानेसे पहले कि यह मैने किस तरह और किस हदतक किया, मुझे एक शब्द खानसाहबकी मेजबानीके बारेमे भी जरूर कह देना चाहिए। इस सारे दौरेमे उन्हे इस बातकी बडी ही फिक्र रही कि मुझे जितनी भी सुविधा पहुचाई जा सकती हो उतनी पहुचाई जाय। मुझे किसी किस्मकी दिक्कत या कमी न होने देनेके लिए उन्होने कोई बात उठा नही रक्खी। मेरी सभी जरूरतोका वह पहलेसे ही अदाज लगा लेते थे, और उन्होने जो कुछ किया उसमे कोई दिखावा नही था; बल्कि उनके लिए वह सब बिलकुल स्वाभाविक था। उन्होने जो कुछ किया, सब दिलसे किया। फरेब या बनावट तो उनमे है ही नही। दिखावेसे तो वह बिलकुल दूर है। इसलिए वह जो भी देख-भाल रखते वह न तो अखरती और न उससे मेरे काममे कोई रुकावट ही पडती। यही कारण है कि तक्षशिलामे जब हम एक-दूसरेसे जुदा हुए तो हमारी आखे भर आई। जुदाई मुश्किल थी, और इसी आशामे हम एक-दूसरेसे विदा हुए कि शायद अगले मार्चमे ही हम फिर मिलेगे। सीमाप्रातका मेरे लिए ऐसी जगह बना रहना आवश्यक है, जहा मै

अक्सर जाता रहूं, क्योंकि शेष भारत सच्ची अहिंसाका प्रदर्शन करनेमें चाहे असफल रहे, सीमाप्रातसे यह आशा करनेकी काफी गुजाइश है कि वह इस अग्नि-परीक्षामे खरा उतरेगा। इसका कारण स्पष्ट है। वह यह कि बादशाह खानके अनुयायी, जिनकी सख्या एक लाखसे अधिक बतलाई जाती है, उनकी आज्ञाका स्वेच्छापूर्वक पालन करते है। उनके कहनेपर वे चलते है। जहा उन्होने कुछ कहा नही कि तुरत उसपर अमल होता है। पर खुदाई खिदमतगारोकी उनमे जो श्रद्धा है उसके होते हुए भी, खुदाई खिदमतगार रचनात्मक अहिंसाकी परीक्षामे पूरे उतरेगे या नही, यह अभी देखनेकी ही बात है।

खानसाहब और मै यह शुरूमें ही तय कर चुके थे कि विभिन्न केन्द्रोमे तमाम खुदाई खिदमतगारोके सामने भाषण करनेके बजाय मुझे उनके नेताओ तक ही मर्यादा बना लेनी चाहिए। इससे मेरी शक्तिका क्षय नही होगा और उसका अधिक-से-अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग होगा। हुआ भी यही। पाच हफ्तेके अदर हम सारे केन्दोमे हो आए और हरएक केन्द्रमे कोई एक घटा या उससे कुछ अधिक समयतक बातचीत की। खानसाहब मेरे बहुत योग्य और विश्वस्त दुभाषिये साबित हुए। मैने जो कुछ कहा उसमे उनका विश्वास था, इसलिए मेरी बातोंका उलथा अपनी जबानमे करनेमे उन्होने अपनी सारी शक्ति लगा दी। वह एक जन्मजात वक्ता है और बडे शानदार और प्रभावकारी ढगसे बोलते है।

(ह० से०, १९ ११ ३८)

· ·

मिस म्यूरियल लेस्टर, जिनके यहा गोलमेज कानफ्रेंसके समय ईस्ट-एण्ड (लदन) में मै ठहरा था और जो यह लिखते समय सीमाप्रातमे है, बादशाह खानसे मिलकर उनके बारेमे इस प्रकार लिखती है :

"अब मैं खान अब्दुल गफ्फार खांको पहचानने लगी हूं। मुझे ऐसा लगता है कि जहांतक अद्भुत व्यक्तियोंसे मिलनेका सवाल है, अपने

जीवनमें ऐसा सम्मान और कहीं मिलनेकी कोई संभावना नहीं है । वह तो नये टेस्टामेंटकी सुजनताके साथ पुराने टेस्टामेंटके राजा ही है। कितने ऊंचे संत हैं वह ! आपको धन्यवाद है कि आपके द्वारा हमें उनके परिचयमें आना संभव हुआ।

"कल वह हमें उत्तमंजई ले जा रहे हैं। मीराको फिरसे देखनेमें बड़ा आनंद आयगा।"

मै अगर यह समझता कि यह एक असतुलित मस्तिष्ककी अति-शयोक्ति है तो मै व्यक्तिगत रूपसे की गई इस प्रशसाको कभी प्रकाशित न करता । यह तो सच है कि म्यूरियल लेस्टर जिन लोगोसे मिलती है उनकी अच्छाइयोपर ही झट उनका ध्यान जाता है। लेकिन यह कोई बुरी बात नही, बल्कि एक सद्‌गुण है। बुराइयोंसे खाली तो कोई नही है, यहातक कि ईश्वरसे डरकर चलनेवाले सत पुरुष भी नही बचे है ! वे सत इसलिए नही है कि उनमे कोई बुराई नही है, बल्कि इसलिए है कि वे अपनी बुराइयोको जानते है, उनसे बचना चाहते है, उन्हे छिपाते नही और उनस मुक्त होकर अच्छे बननेके लिए हमेशा तैयार रहते है। ऐसे ही खानसाहब है, जो खुदाई खिदमतगार कहलानेमे ही फख्र समझते है। वह एक श्रद्धालु मुसलमान है, जो रोजे व नमाजमे कभी नही चूकते। कुरानकी उनकी व्याख्या इतनी उदार है कि उससे उदार व्याख्या मैं और नही जानता। खुदाई खिदमतगारोमे कताई वगैरह जारी करनेके लिए मैंने उन्हे अपना एक आदमी देनेके लिए कहा था, जिसका उन्हें चुनाव करना था। इसके लिए उन्होने जानबूझकर मीराबेनको चुना। अभी हालतक वह उन्हीके मकानमे रहती भी थी और अब उनके घरसे लगे हुए मकानमे रह रही है, जहा वह अपना कताई-वर्ग चलाती है। वह मुझे प्राय. रोज पत्र लिखती है। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि जिन लोगोसे वह प्रेम करती है उनकी आलोचना करनेसे कभी नही चूकती। फिर भी उनके पत्रोमे इस श्रेष्ठ फकीरके बारेमे ऐसे ही

भाव प्रदर्शित किए गए थे, जैसे म्यूरियल लेस्टरने अपनी पहली मुलाकातमे व्यक्त किए है। इतनेपर भी अग्रेज अधिकारी उनका कोई उपयोग नही करते। वे तो उनसे डरते है और उनमे अविश्वास करते है। इस अविश्वाससे अगर प्रगतिमे कोई रुकावट न पडती और भारत तथा इग्लैड और इसलिए सारे ससार को हानि न होती तो मै इस अविश्वासकी कोई परवा न करता (ह० से०, २८ १.३९)

जहा हर तरफ 'शुद्ध अहिंसा' की होली जल रही है, वहा खानसाहबकी जीती-जागती अहिसा कायम है। यह बात हमारे लिए चिराग जैसी रोशन है। खानसाहबका निवेदन[1] मनन करनेके काबिल है। खानसाहबको शोभा भी यही देता है। खानसाहब पठान है। पठान तो तलवार-बदूक साथ लेकर पैदा हुए है, ऐसा कहा जा सकता है।

रौलट एक्टकी लड़ाईके जमानेमे जब खुदाई खिदमतगार आमादा हुए तब खानसाहबने उनके हथियार छुडवा दिए। सरकारके साथ तो लड़ना ही था, लेकिन खानसाहबने अहिसाका सच्चा तजुरबा दूसरी जगह पाया। पठानोमे बदला लेनेका कानून ऐसा सख्त है कि अगर एक खान्दानमे खून हो गया हो तो उसका बदला खूनसे ही लेकर छुटकारा होता है। एक बार खूनका बदला लिया तो फिर उस खूनका बदला लेना होता है। इस तरह पीढी-दर-पीढ़ी खूनका बदला खूनसे लेनेका कही अत ही नही आता था। यह भी हिंसाकी हद और हिंसाका दिवाला था, क्योकि इस तरह खूनका बदला लेते-लेते खान्दान बरबाद हो जाते थे। खानसाहबने पठानोकी ऐसी बरबादी देखी और अहिसामे उनकी बेहतरी पाई। उन्होने सोचा कि अगर मै पठान लोगोको समझा सकू कि हमको न सिर्फ

---

[1]द्वितीय महायुद्धमें सहयोगके प्रश्नको लेकर खानसाहब कांग्रेससे अलग हो गए थे। —संपादक

खूनका बदला नही लेना है; बल्कि खूनको भूल जाना है तो एक दूसरेसे बदला बद हो जाएगा, हम जीवित रह सकेंगे और जीवनको सफल भी बना सकेंगे। यह नकदका सौदा है। उनके अनुयायियोने उसपर अमल किया। अब ऐसे खुदाई खिदमतगार पाए जाते है, जो खूनका बदला लेना भूल गए हैं। यह शक्तिशालीकी अहिसा या सच्ची अहिसा कही जा सकती है।

अगर खानसाहब काग्रेसमे रहते तो उनकी जिदगीका काम खाकमें मिल जाता। वह पठानोसे किस मुहसे कहते कि 'तुम लडाईमे भरती हो जाओ? वह बदला न लेने का कानून अब रद हुआ समझो!' ऐसी भाषा पठान समझ ही नही सकते। वह तो तुरत यही जवाब देते कि जर्मनी अपना बदला ले रहा है, इगलैंड मुकाबिला कर रहा है, यह हार जाएगा तो खुद लडाईकी तैयारी करेगा। इसलिए इस लडाईमें और हमारे खूनका बदला खूनसे लेनेमे रत्तीभर भी फर्क नही। ऐसी दलीलोके सामने खान-साहबकी जबान बन्द हो जाती। इसलिए उन्होने अपना ही काम जारी रखना पसद करके काग्रेससे निकल जानेका फैसला किया। खानसाहबको अहिसाका सदेश पहुचानेमे कहातक सफलता हुई है, वह मै नही जानता। इतना ही जानता हू कि खानसाहबकी श्रद्धा दिमागी नही, केवल दिलसे निकली हुई है, इसलिए वह हमेशा कायम है। अब कबतक उनके चेले उनकी तालीममे लगे रहेगे, यह खुद खानसाहब भी नही कह सकते और न इसकी उनको परवाह है। उनको तो अपना कर्त्तव्य पूरा करना है। परिणाम खुदापर छोड दिया है। उनकी अहिसाका आधार कुरान शरीफ है। खानसाहब पक्के मुसल्मान है। वह मेरे साथ लगभग एक सालतक रहे। बावजूद बीमार होनेके, उन्होने न कभी नमाज कजा की, न रोजा। खानसाहबके दिलमे दूसरे मजहबोके प्रति पूरा आदर है। उन्होने गीताका भी थोडा अभ्यास किया है। वह हमेशा बहुत कम पढ़ते है; लेकिन जो पढते या सुनते है वह अगर अमलमे लानेके योग्य हो तो उसपर अमल करनेमे उन्हे देर नही लगती। वह लबी-चौड़ी दलीलोंमे नही पड़ते।

जरा समझा और तुरत 'हा' या 'ना' कह सकते हैं। अगर खानसाहबको स्पष्ट सफलता हासिल हुई तो उससे बहुत सारी उलझनें सुलझ सकती है। आज तो कुछ नही कहा जा सकता। चाकपर मिट्टी है, मटका उतरेगा या गागर, इस बातको तो खुदा ही ज्यादा अच्छी तरह जानता है।

(ह० से०, २० ७.४०)

'एसोसिएटेड प्रेस' ने बादशाह खानके विषयमे नीचे लिखा सवाद प्रचारित किया है

"सीमाप्रातकी प्रांतीय काग्रेस-कमिटीने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया हैं :

'देशके कई समाचार-पत्रोंमें पठानोके निर्विवाद नेता खान अब्दुल गफ्फार खाके विरुद्ध और खुदाई खिदमतगार आंदोलनके विरुद्ध, जो प्रचार किया जा रहा है, उसके बारेमें हम जनताको सावधान करना चाहते हैं। कुछ इस ढंगका इशारा किया गया है कि सीमाप्रांतके कार्यकर्त्ताओके बीच फूट पड़ गई है और दलबदियोने उनके बीच अपनी मनहूस शक्ल दिखानी शुरू की है। अभीतक एक भी खुदाई खिदमतगारने त्यागपत्र नहीं दिया है। वे सब खान अब्दुल गफ्फार खांके नेतृत्वमें एक अभेद्य दलकी नाई सगठित हैं। उनके दरमियान दलबदीकी सब बातें सर्वथा निर्मूल है। फूटकी ये सब दतकथाए कुछ ऐसे स्वार्थी और पदलोलुप व्यक्तियोके दिमागकी उपज है, जो समझते हैं कि इस तरह वे अपना उल्लू सीधा कर सकेंगे। इस सब प्रचारके पीछे सरकारकी प्रेरणा तो है ही; परंतु सीमाप्रांतकी जनतामें इन लोगोका कोई साथी नहीं है। वहांका हरएक राष्ट्रवादी बखूबी समझता है कि पदग्रहणकी बात तो दूर रही, आज भारतमें अंग्रेज सरकारके साथ हमें कोई मतलब ही नहीं हो सकता। हिंदुस्तानके अन्य भागोमें पार्लमेंटरी कार्यक्रमके लिए चाहे जो आकर्षण हो, सीमाप्रांतमें तो उसके लिए कतई स्थान नहीं।

'खान अब्दुल गफ्फार खांने देहातोमें आंतरिक सुव्यवस्था और अन्न-वस्त्रके स्वावलंबनके बारेमें जो शांत, पारमार्थिक रचनात्मक कार्य किया है, उसने वहांकी जनतामें और खास तौरपर गरीब जनतामें उनकी लोकप्रियता और भी बढ़ा दी है। वे सरहदके आसपासवाले कबीलोंमें सुलह और शांतिके सदेशको पहुचानेका स्वप्न देख रहे हैं।

'आनेवाले सकटके समयमें जनताकी सच्ची सेवा करनेवाली एक शांत और अहिंसक सेनाको तैयार करनेमें उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। करोडो रुपये खर्च करके जो काम करनेमें सरकार असफल रही है, उसे वे जनताकी शुद्ध ऐच्छिक सहायता द्वारा करनेका प्रयत्न कर सहानुभूति और सहयोगके अधिकारी हैं। हम आशा करते हैं कि सीमा-प्रातकी जनता उनके आह्वानका ठीक-ठीक जवाब देगी और देशके सब सच्चे हितैषी समाचार-पत्र और पत्रकार तमाम पूर्वाग्रहोको छोड़कर उनके इस कार्यमें रस लेंगे।' "

सीमाप्रान्तीय समितिने यह प्रस्ताव पास करके और विज्ञप्तिके रूपमे इसे प्रचारित करके ठीक ही किया है, परतु बादशाह खानकी कीर्ति सीमाप्रातकी प्रातीय समितिके इस प्रस्तावकी अपेक्षा कही अधिक सबल आधारपर अवलबित है। उनकी कीर्तिका आधार चौथाई सदीसे भी अधिक कालतककी हुई उनकी नि स्वार्थ जनसेवा और उसके फल-स्वरूप प्राप्त उनकी लोकप्रियता है। अपने निदकोकी सब कुचेष्टाओके बावजूद खानसाहब अबतककी सभी अग्नि-परीक्षाओमे उत्तीर्ण हुए है। मुझे इसमे जरा भी शक नही कि आगे चलकर जब फिर परीक्षाका समय आवेगा तो वे पहलेकी भाति ही अपनी लोकप्रियताका प्रमाण देगे।

(ह० से०, ५ ७ ४२)

• •

बादशाह खान मेरे दोस्त हैं। मौलाना आजाद तथा जवाहरलालके महल छोडकर मेरी झोपडीमे आकर टिकते है। यहा गोश्त नही मागते।

मेरे साथ ही रोटी-फल लेते है। वे पूरे फकीर है। उनके भाई डा० खान साहब बिना उनकी मददके काम नही चला सकते। हम उन्हे सीमात गाधी कहते है, पर वहा गाधीको ही कोई नही जानता तो सीमात गाधीको कौन जाने? वहा तो यह बादशाह कहलाते है और जिस झोपडीमे जाइए, वहा पठान अपने इस बादशाहपर खुश हो जाते है।

ऐसे बादशाहके इलाकेमे जनमत-सग्रह करनेकी बात तय कर दी गई है और वह भी तब जब पठानका खून अभी ठडा नही हुआ है, जिसका कि खून सदा गरम ही रहता आया है और बादशाहने अपनी जिदगी उस खूनको ठडा करनेमे खपा रखी है। (प्रा० प्र०, ११ ६ ४७)

पठान तलवारबाज होता है। कोई पठान ऐसा नही होता जो तलवार और बदूक चलाना न जानता हो। पीढी-दर-पीढी पठान खूनका बदला लेता रहा है। पर बादशाह खानने देखा कि हथियारोकी बहादुरीसे भी ज्यादा बुलदी, मरकर स्वरक्षा करनेमे है। बादशाह खानका खयाल था कि पठान लोग यह ऊची बहादुरी अपना ले और एक होकर सबकी खिदमत करे, पर यह ख्वाब पूरा होनेसे पहले वहा यह जनमत-सग्रहका झगडा फैल गया।

कुछ कहेगे कि हम पाकिस्तानके साथ रहेगे, कोई कहेगे कि काग्रेसके साथ रहेगे, और काग्रेस तो आज बदनाम है कि वह हिदुओकी हो गई। इस बातपर पठान अलग-अलग होगे और ऐसी यादवस्थली मचेगी कि जिसका दबाना दुश्वार होगा। वे आपसमे कट मरेगे। बादशाह खान चाहते है कि किसी तरहसे जनमतसग्रहकी बलासे छूटकर पठान आजाद रहे। वे खुद अपने कानून बनावे और एक रहे, फिर चाहे वे पाकिस्तानमे रहे चाहे हिदुस्तानमे मिलें। वे कहते है कि हमारे पास पैसा नही है। हम तो मिस्कीन आदमी है। हम अपना स्वतन्त्र राष्ट्र

बनाना नही चाहते, पर किसमें मिलेंगे इसके बारेमे आपसी झगडा मिट जानेके बाद ही हम निश्चय करेगे। (प्रा० प्र०, १७.६.४७)

. . . . . .

लोगोकी आखे आज सरहदी सूबेमे होनेवाले जन-मतकी तरफ लगी हुई है, क्योकि सरहदी सूबा कानूनन काग्रेसका रहा है और आज भी है। बादशाह खान और उनके साथियोसे कहा जाता है कि पाकिस्तान या हिंदुस्तान, दोमेंसे किसी एकको चुनो। हिंदुस्तानका आज गलत अर्थ हो गया है—हिंदुस्तानका हिंदू और पाकिस्तानका मुसलमान। बादशाह खान इस कठिनाईमेंसे कैसे निकले? काग्रेसने वचन दिया है कि डा० खानसाहबकी सीधी देख-रेखके नीचे सरहदी सूबेमे जनमत लिया जायगा। वह तो नियत तारीखपर ही होगा। खुदाई खिदमतगार मत नही देगे। सो मुस्लिम लीगको सीधी जीत मिलेगी और खुदाई खिदमतगारोको अपनी आत्माकी आवाजके खिलाफ काम नही करना पडेगा, बशर्तेकि उनकी आत्माकी आवाज है, ऐसा माना जाय। ऐसा करनेमे क्या जन-मतकी शर्तोका भग होता है? वही खुदाई खिदमतगार जिन्होने बहादुरीसे ब्रिटिश सरकारका सामना किया, अब हारसे डरनेवाले नही है। हार होगी, यह पक्की तरह जानते हुए अलग-अलग दल रोज चुनावमे हिस्सा लेते है। जब एक दल चुनावमे हिस्सा नही लेता तब भी तो हार निश्चित ही होती है।

पठानिस्तानकी नई माग पेश करनेके लिए बादशाह खानको ताना दिया जाता है। काग्रेसकी वजारत बननेसे पहले भी, जहातक मै जानता हू, बादशाह खानके सिरपर यही धुन सवार थी कि अपने घरमे पठानोको पूरी आजादी हो। बादशाह खान एक अलग स्टेट बनाना नही चाहते। अगर वह अपने घरमे अपना विधान बना सके तो वह खुशीसे दोमेंसे एक सघको कबूल कर लेगे। मुझे तो समझमें नही आता कि पठानिस्तानकी इस मागके सामने किसीको क्या उज्र हो सकता है।

हा, पठानोंको पाठ सिखाना हो और उन्हे किसी-न-किसी तरह झुकाना ही हो तो बात अलग है। बादशाह खानपर एक बडा इल्जाम यह लगाया जा रहा है कि वह अफगानिस्तानके हाथोमे खेल रहे है। मै समझता हू कि वह कभी किसी तरहकी धोखेबाजी कर ही नही सकते। वह सरहदी सूबेको अफगानिस्तानमे जज्ब होने नही देगे।

उनके दोस्त होनेके नाते मै मानता हू कि उनमे एक ही कमी है। वे बहुत ही शक्की है, खासकर अग्रेजोके काम और नीयतपर वह हमेशा शुबहा करते है। मै सबसे कहूगा कि वे उनकी इस कमजोरीको, जो कि खास उन्हीमे नही है, नजरअदाज कर दे। यह जरूर है कि इतने बडे नेताके लिए यह शोभा नही देता। अगर्चे मैने उसको एक कमजोरी कहा है और जो एक तरहसे ठीक ही है, मगर दूसरी प्रकारसे इसको एक खूबी मानना चाहिए, क्योकि वे चाहे भी तो अपने विचारोको छिपा नही सकते। (प्रा० प्र०, ३०.६.४७)

: ४६ :

आदमजी मियां खान

यदि मै देश जाऊ तो फिर काग्रेसका और शिक्षा-मडलके कामका कौन जिम्मा ले ? दो साथियोपर नजर गई आदमजी मिया खान और पारसी रुस्तमजी। व्यापारी-वर्गमेसे बहुतेरे काम करनेवाले ऊपर उठ आए थे, पर उनमें प्रथम पक्तिमे आने योग्य यही दो सज्जन ऐसे थे जो मत्रीका काम नियमित रूपसे कर सकते थे और जो दक्षिण अफ्रीकामे जन्मे भारतवासियोका मन हरण कर सकते थे। मत्रीके लिए मामूली अग्रेजी जानना तो आवश्यक था ही। मैने इनमेसे स्वर्गीय आदमजी

मिया खानको मंत्री-पद देनेकी सिफारिश की और वह स्वीकृत हुई। अनुभवसे यह पसंदगी बहुत ही अच्छी साबित हुई। अपनी उद्योगशीलता, उदारता, मिठास और विवेकके द्वारा सेठ आदमजी मिया खानने अपना काम सतोषजनक रीतिसे किया और सबको विश्वास हो गया कि मत्रीका काम करनेके लिए वकील बैरिस्टरकी अथवा पदवीधारी बड़े अंग्रेजीदाकी जरूरत न थी। (आ० १९२७)

: ४७ :

गंगाबहन

हम कह सकते है कि गगाबहनने जीकर आश्रमको सुशोभित किया और मरकर भी आश्रमको सुशोभित किया। (बड़ी गगाबहनको भेजा पत्र)

. .

गगाबहनकी मृत्युके समाचार जानकर हम सबको दुःख हुआ। मुझे खुशी है कि उन्होने अमर श्रद्धाके साथ जीना जाना और मरना जाना। तोतारामजी आनदमे है, इसमे आश्चर्य नही। (आश्रमको दिया गया तार)

. . .

देखो, इस निरक्षर स्त्रीको! इसकी मौत कैसी है! दोनोने आश्रमको सुशोभित किया। तोतारामजी गिरमिटिया थे। वहा फीजीके किसी गिरमिटियेकी लडकीसे शादी की होगी, इसलिए दोनो गिरमिटिये ही कहलायेगे। मगर दोनोने कैसी जिदगी गुजारी!

(म० डा०, ६.५.३२)

... .

गगादेवीका चेहरा अब भी मेरी आखोके सामने फिरा करता है, उनकी

बोलीकी भनक मेरे कानोमें पड़ती है। उनके स्मरणोकी याद करते अब भी मैं थका नही। उनके जीवनसे हम सबको और बहनोको खासतौरसे बहुत सबक सीखने है। वह लगभग निरक्षर होनेपर भी ज्ञानी थी। हवा, पानी बदलनेके लिए जाने लायक होने पर भी स्वेच्छासे जानेसे अंततक इन्कार करती रहनेवाली वह अकेली ही थी। जो बच्चे उन्हे मिले, उनकी सम्हाल उन्होंने अपने बच्चे मानकर की। उन्होने किसी दिन किसीके साथ तकरार की हो या किसीपर खफा हुई हो, इसकी जानकारी मुझे नही है। उनको जीनेका उल्लास न था, मरनेका भय न था। उन्होंने हँसते हुए मृत्युको गले लगाया। उन्होने मरनेकी कला हस्तगत कर ली थी। जैसे जीनेकी कला है, वैसे ही मरनेकी भी कला है।

(य० म०, ३०.५ ३२)

: ४८ :

लाला गंगाराम

एक मित्रके पत्रसे मुझे स्यालकोटके लाला गगारामके स्वर्गवासकी खबर मिली है। वे ६० वर्षकी अवस्थामें गत ४ नवबरको एकाएक दिलकी धडकन बद होनेसे परलोक सिधार गए। सन् १६१६मे लाहौरमे स्वर्गीय रामभजदत्त चौधरीके मकान पर उनसे मिलनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे एक हरिजन-कार्यकर्त्ता थे। हरिजन-सेवाके अर्थ उन्होने अपना जीवन अर्पण कर दिया था। उन्होने हरिजनोकी नई बस्तिया बसवाई थी। हरिजन-कार्यको निश्चय ही उनके निधनसे हानि पहुची है। स्वर्गीय लाला गगारामके कुटुब तथा उनके प्यारे हरिजनोके प्रति मै समवेदना प्रकट करता हू। (ह० से०, ८.१२.३३)

: ४६ :

सर गंगाराम

मृत्युने सर श्रीगगारामको क्या उठाया, हमारे बीचसे एक सुयोग्य और व्यवहारदक्ष खेतीशास्त्रके जानकारको, एक महान दाताको और विधवाओके बधुको, उठा लिया। सर गगाराम यो तो वयोवृद्ध थे, किंतु उनमे उत्साह युवकोका-सा था। उनकी आशावादिता भी उतनी ही प्रबल थी जितना कि उनका अपने विचारोंका आग्रह। इधर मुझे उनसे निकटका सबध प्राप्त करनेका सुअवसर मिला था और यद्यपि हम अनेक बातोमे एक-दूसरेसे भिन्न मत ही रखते थे तथापि मैने देखा कि वे एक सच्चे सुधारक और महान कार्यकर्त्ता थे। और यद्यपि उनके अनुभव और वयोमानके कारण मैने उनके विचारोसे बार-बार आदरपूर्वक, किंतु दृढ विरोध प्रकट किया तथापि मेरे प्रति, जिसे वे अपनी तुलनामे कलका युवक समझते थे, उनका प्रेम तो बढता ही जाता था। साथ-ही-साथ भारतकी दरिद्रताके विषयमे उनके कुछ विचित्र विचारोसे मेरा विरोध भी। वे मेरे साथ लबे वाद-विवाद करनेके लिए इतने उत्सुक थे तथा मुझे अपने विचारोका कायल कर देनेकी उन्हे इतनी दृढ आशा थी कि उन्होने उनके अपने खर्चेसे मुझे इगलैड चलनेतकके लिए आग्रह किया और मेरे दिमागसे सब पागलपनकी बातोको निकाल देनेका विश्वास दिलाया। यद्यपि मै उनकी इस बातको कबूल नही कर सका और यद्यपि उन्होने तो उसे सच्चे दिलसे ही पेश किया था, तथापि उनके इगलैड जानेसे पहले उनसे मिलकर उन्हे चरखेका, जिसे वे केवल जला देने योग्य ही समझते थे, कायल कर देनेका मैने वचन दिया था। अत पाठक अनुमान कर सकते है कि उनकी अकस्मात मृत्युकी यह वार्ता सुनकर मुझे कितना दु ख हुआ होगा। पर यह तो ऐसी मृत्यु है, जिसे हम सब अपने लिए चाहेगे,

क्योकि वे इगलैड किसी आमोद-प्रमोदके लिए नही गए थे, बल्कि ऐसे कार्यके लिए गए थे, जिसे वे अपना अत्यन्त जरूरी कर्त्तव्य समझते थे। इसलिए वे तो कर्त्तव्य क्षेत्रहीमे मर गए। भारतको हर तरहसे इस बातका अभिमान है कि सर गगारामके समान पुरुष उसके विख्यात सपूतोमेसे एक है। दिवगत सुधारकके कुटुबी जनोको मै अपने धन्यवाद और सम-वेदना साथ-साथ भेजता हू। (हि० न०, २१.७.२७)

: ५० :

कस्तूरबा गांधी

मै जानता था कि बहनोको जेल[1] भेजनेका काम बहुत खतरनाक था। फिनिक्समें रहनेवाली अधिकतर बहने मेरी रिश्तेदार थी, वे सिर्फ मेरे लिहाजके कारण ही जेल जानेका विचार करें और फिर ऐन मौकेपर घबराकर या जेलमे जानेके बाद उकताकर माफी वगैरह माग ले तो मुझे सदमा पहुचे। साथ ही, इसकी वजहसे लडाईके एकदम कमजोर पड जानेका डर भी था। मैंने तय किया था कि मै अपनी पत्नीको तो हरगिज नही ललचाऊगा। वह इन्कार भी नही कर सकती थी और 'हा' कह दे तो उस 'हा'की भी कितनी कीमत की जाय, सो मै कह नही सकता था। ऐसे जोखिमके काममे स्त्री स्वय जो निश्चय करे, पुरुषको वही मान लेना चाहिए और कुछ भी न करे तो पतिको उसके बारेमे तनिक भी दुखी नही होना चाहिए, इतना मै समझता था। इसलिए मैने उनके साथ कुछ भी बात न करनेका इरादा कर रक्खा था। दूसरी बहनोसे मैने चर्चा की। वे

---

[1] दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके संबधमें।

जेल-यात्राके लिए तैयार हुई। उन्होने मुझे विश्वास दिलाया कि वे हर तरहका दुख सहकर भी अपनी जेल-यात्रा पूरी करेगी। मेरी पत्नीने भी इन सब बातोका सार जान लिया और मुझसे कहा,

"मुझसे इस बातकी चर्चा नही करते, इसका मुझे दुख है। मुझमें ऐसी क्या खामी है कि मै जेल नही जा सकती। मुझे भी उसी रास्ते जाना है, जिस रास्ते जानेकी सलाह आप इन बहनोको दे रहे है।"

मैने कहा, "मै तुम्हे दुख पहुचा ही नही सकता। इसमे अविश्वासकी भी कोई बात नही। मुझे तो तुम्हारे जानेसे खुशी ही होगी, लेकिन तुम मेरे कहनेपर गई हो, इसका तो आभास तक मुझे अच्छा नही लगेगा। ऐसे काम सबको अपनी-अपनी हिम्मतसे ही करने चाहिए। मै कहू और मेरी बात रखनेके लिए तुम सहज ही चली जाओ और बादमे अदालत के सामने खडी होते ही काप उठो और हार जाओ या जेलके दुखसे ऊब उठो तो इसे मै अपना दोष तो नही मानूगा, लेकिन सोचो कि मेरा क्या हाल होगा। मै तुमको किस तरह रख सकूगा और दुनियाके सामने किस तरह खडा रह सकूगा। बस, इस भयके कारण ही मैने तुम्हे ललचाया नही।"

मुझे जवाब मिला, "मै हारकर छूट आऊ तो मुझे मत रखना। मेरे बच्चेतक सह सके, आप सब सहन कर सके और अकेली मै ही न सह सकू, ऐसा आप सोचते कैसे है? मुझे इस लडाईमे शामिल होना ही होगा।"

मैने जवाब दिया, "तो मुझे तुमको शामिल करना ही होगा। मेरी शर्त तो तुम जानती ही हो। मेरे स्वभावसे भी तुम परिचित हो। अब भी विचार करना हो तो फिर विचार कर लेना और भलीभाति सोचनेके बाद तुम्हे यह लगे कि शामिल नही होना है तो समझना कि तुम इसके लिए आजाद हो। साथ ही, यह भी समझ लो कि निश्चय बदलनेमे अभी शरमकी कोई बात नही है।"

मुझे जवाब मिला, "मुझे विचार-विचार कुछ नही करना है। मेरा निश्चय ही है।" (द० अ० स०, १९२५)

. . . .

जिन दिनो मेरा विवाह हुआ, छोटे-छोटे निबध—पैसे-पैसे या पाई-पाईके, सो याद नही पडता—छपा करते। इनमे दापत्य प्रेम, मितव्ययता, बाल-विवाह इत्यादि विषयोकी चर्चा रहा करती। इनमेसे कोई-कोई निबध मेरे हाथ पडता और उसे मै पढ जाता। शुरूसे यह मेरी आदत रही कि जो बात पढनेमे अच्छी नही लगती उसे भूल जाता और जो अच्छी लगती उसके अनुसार आचरण करता। यह पढा कि एक-पत्नी-व्रतका पालन करना पतिका धर्म है। बस, यह मेरे हृदयमे अकित हो गया। सत्यकी लगन तो थी ही। इसलिए पत्नीको धोखा या भुलावा देनेका तो अवसर ही न था। और यह भी समझ चुका था कि दूसरी स्त्रीसे सबध जोडना पाप है। फिर कोमल वयमें एक-पत्नी-व्रतके भग होनेकी सभावना भी कम रहती है।

परतु इन सद्विचारोका एक बुरा परिणाम निकला। 'यदि मै एक-पत्नी-व्रतका पालन करता हू तो मेरी पत्नीको भी एक-पति-व्रतका पालन करना चाहिए।' इस विचारसे मै असहिष्णु-ईर्ष्यालु पति बन गया। फिर 'पालन करना चाहिए'मेसे 'पालन करवाना चाहिए' इस विचारतक जा पहुचा और यदि पालन करवाना हो तो फिर मुझे पत्नीकी चौकीदारी करनी चाहिए। पत्नीकी पवित्रतापर तो सदेह करनेका कोई कारण न था; परतु ईर्ष्या कही कारण देखने जाती है? मैने कहा—"पत्नी हमेशा कहा-कहा जाती है, यह जानना मेरे लिए जरूरी है। मेरी इजाजत लिये बिना वह कही नही जा सकती।" मेरा यह भाव मेरे और उनके बीच दुखद झगडेका मूल बन बैठा। बिना इजाजतके कही न जा पाना तो एक तरहकी कैद ही हो गई, परतु कस्तूरबाई ऐसी मिट्टीकी न बनी थी, जो ऐसी कैदको बरदाश्त करती। जहा जी चाहे, मुझसे बिना पूछे

जरूर चली जाती। ज्यो-ज्यों मै उन्हे दबाता त्यों-त्यो वह अधिक आजादी लेती और त्यो-ही-त्यो मै और बिगडता। इस कारण हम बाल-दपतीमें अबोला रहना एक मामूली बात हो गई। कस्तूरबाई जो आजादी लिया करती उसे मै बिलकुल निर्दोष मानता हू। एक बालिका, जिसके मनमें कोई बात नही है, देव-दर्शनको जानेके लिए अथवा किसीसे मिलने जानेके लिए क्यो ऐसा दबाव सहन करने लगी ? 'यदि मै उसपर दबाव रखू तो फिर वह मुझपर क्यो न रखे ?' पर यह बात तो अब समझमें आती है। उस समय तो मुझे पतिदेवकी सत्ता सिद्ध करनी थी।

इससे पाठक यह न समझे कि हमारे इस गार्हस्थ्य-जीवनमे कहीं मिठास थी ही नही। मेरी इस वक्रताका मूल था प्रेम—मै अपनी पत्नीको आदर्श स्त्री बनाना चाहता था। मेरे मनमे एकमात्र यही भाव रहता था कि मेरी पत्नी स्वच्छ हो, स्वच्छ रहे, मै सीखू सो सीखे, मै पढू सो पढे और हम दोनो एक-मन दो-तन बनकर रहे।

मुझे खयाल नही पड़ता कि कस्तूरबाईके भी मनमें ऐसा भाव रहा हो। वह निरक्षर थी। स्वभाव उनका सरल और स्वतत्र था। वह परिश्रमी भी थी, पर मेरे साथ कम बोला करती। अपने अज्ञानपर उन्हे असतोष न था। अपने बचपनमे मैने कभी उनकी ऐसी इच्छा नही देखी कि 'वह पढते है तो मै भी पढू।' इससे मै मानता हू कि मेरी भावना इकतरफा थी। मेरा विषय-सुख एक ही स्त्रीपर अवलबित था और मै उस सुखकी प्रतिध्वनिकी आशा लगाये रहता था। अस्तु, प्रेम यदि एक-पक्षीय भी हो तो वह सर्वांशमे दुःख नही हो सकता।

मुझे कहना चाहिए कि मै अपनी पत्नीसे जहातक सबध है, विषयासक्त था। स्कूलमे भी उसका ध्यान आता और यह विचार मनमे चला ही करता था कि कब रात हो और कब हम मिले। वियोग असह्य हो जाता था। कितनी ही ऊट-पटाग बाते कह-कहकर मै कस्तूरबाईको देरतक सोने न देता। इस आसक्तिके साथ ही यदि मुझमे कर्त्तव्यपरायणता न

होती तो, मैं समझता हू, या तो किसी बुरी बीमारीमे फसकर अकाल ही कालकवलित हो जाता अथवा अपने और दुनियाके लिए भारभूत होकर वृथा जीवन व्यतीत करता होता । 'सुबह होते ही नित्यकर्म तो हर हालतमे करने चाहिए' 'झूठ तो बोल ही नही सकते', आदि अपने इन विचारोंकी बदौलत मै अपने जीवनमे कई सकटोसे बच गया हू ।

मै ऊपर कह आया हू कि कस्तूरबाई निरक्षर थी । उन्हे पढानेकी मुझे बडी चाह थी । पर मेरी विषय-वासना मुझे कैसे पढाने देती ? एक तो मुझे उनकी मर्जीके खिलाफ पढाना था, फिर रातमे ही ऐसा मौका मिल सकता था । बुजुर्गोके सामने तो पत्नीकी तरफ देखतक नही सकते, बात करना तो दूर रहा ! उस समय काठियावाडमे घूघट निकालनेका निरर्थक और जगली रिवाज था, आज भी थोडा-बहुत बाकी है । इस कारण पढानेके अवसर भी मेरे प्रतिकूल थे । इसलिए मुझे कहना होगा कि युवावस्थामे पढानेकी जितनी कोशिशे मैने की वे सब प्राय बेकार गई और जब मै विषय-निद्रासे जगा तब तो सार्वजनिक जीवनमे पड चुका था । इस कारण अधिक समय देने योग्य मेरी स्थिति नही रह गई थी । शिक्षक रखकर पढानेके मेरे यत्न भी विफल हुए । इसके फलस्वरूप आज कस्तूरबाई मामूली चिट्ठी-पत्री व गुजराती लिखने-पढनेसे अधिक साक्षर न होने पाई । यदि मेरा प्रेम विषयसे दूषित न हुआ होता तो, मै मानता हू, आज वह विदुषी हो गई होती । उनके पढनेके आलस्यपर मै विजय प्राप्त कर पाता, क्योकि मै जानता हू कि शुद्ध प्रेमके लिए दुनियामे कोई बात असभव नही ।

इस तरह अपनी पत्नीके साथ विषय-रत रहते हुए भी मै कैसे बहुत कुछ बच गया, इसका एक कारण मैने ऊपर बताया । इस सिलसिलेमे एक और बात कहने जैसी है । सैकडो अनुभवोसे मैने यह निचोड निकाला है कि जिसकी निष्ठा सच्ची है, उसे खुद परमेश्वर ही बचा लेता है । हिंदू-ससारमे जहा बाल-विवाहकी घातक प्रथा है वहा उसके साथ ही

उसमेंसे कुछ मुक्ति दिलानेवाला भी एक रिवाज है। बालक वर-वधूको मा-बाप बहुत समयतक एक साथ नही रहने देते। बाल-पत्नीका आधेसे ज्यादा समय मायकेमे जाता है। हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ। अर्थात् हम १३ और १८ सालकी उम्रके दरमियान थोडा-थोडा करके तीन सालसे अधिक साथ न रह सके होगे। छ-आठ महीने रहना हुआ नही कि पत्नीके मा-बापका बुलावा आया नही। उस समय तो वे बुलावे बडे नागवार मालूम होते, परतु सच पूछिए तो उन्हीकी बदौलत हम दोनो बहुत बच गए। फिर १८ सालकी अवस्थामे मै विलायत गया, लबे और सुदर वियोगका अवसर आया। विलायतसे लौटनेपर भी हम एक साथ तो छ महीने मुश्किलसे रहे होगे, क्योकि मुझे राजकोट-बबई बार-बार आना-जाना पडता था। फिर इतनेमे ही दक्षिण अफ्रीकाका निमत्रण आ पहुचा, और इस बीच तो मेरी आखे बहुत-कुछ खुल भी चुकी थी।

विलायत जाते समय जो वियोग-दु ख हुआ था, वह दक्षिण अफ्रीका जाते हुए न हुआ, क्योकि माताजी तो चल बसी थी और मुझे दुनियाका और सफरका अनुभव भी बहुत-कुछ हो गया था। राजकोट और बबई तो आया-जाया करता ही था। इस कारण अबकी बार सिर्फ पत्नीका ही वियोग दु खद था। विलायतसे आनेके बाद दूसरे एक बालकका जन्म हो गया था। हम दपतीके प्रेममे अभी विषय-भोगका अश तो था ही। फिर भी उसमे निर्मलता आने लगी थी। मेरे विलायतसे लौटनेके बाद हम बहुत थोडा समय एक साथ रहे थे और मै ऐसा-वैसा ही क्यों न हो, उसका शिक्षक बन चुका था। इधर पत्नीकी बहुतेरी बातोमे बहुत-कुछ सुधार करा चुका था और उन्हे कायम रखनेके लिए भी साथ रहनेकी आवश्यकता हम दोनोको मालूम होती थी। परतु अफ्रीका मुझे आकर्षित कर रहा था। उसने इस वियोगको सहन करनेकी शक्ति दे दी थी। 'एक सालके बाद तो हम मिलेगे ही'—कहकर और दिलासा देकर मैंने राजकोट छोडा और बबई पहुचा।

लडाईके कामसे मुक्त होनेके बाद मैंने सोचा कि अब मेरा काम दक्षिण अफ्रीकामे नही, बल्कि देशमे है। दक्षिण अफ्रीकामें बैठे-बैठे मैं कुछ-न-कुछ सेवा तो जरूर कर पाता था, परतु मैंने देखा कि यहा कही मेरा मुख्य काम धन कमाना ही न हो जाय।

देशसे मित्र लोग भी देश लौट आनेको आकर्षित कर रहे थे। मुझे भी जचा कि देश जानेसे मेरा अधिक उपयोग हो सकेगा। नेटालमे मि० खान और मनसुखलाल नाजर थे ही।

मैने साथियोसे छुट्टी देनेका अनुरोध किया। बडी मुश्किलसे उन्होंने एक शर्तपर छुट्टी स्वीकार की। वह यह कि एक सालके अदर लोगोको मेरी जरूरत मालूम हो तो मै फिर दक्षिण अफ्रीका आ जाऊगा। मुझे यह शर्त कठिन मालूम हुई, परतु मै तो प्रेम-पाशमे बधा हुआ था।

काचे रे तांतणे मने हरजीए बांधी
जेम ताणे तेम तेमरी रे
मने लागी कटारी प्रेमनी।[1]

मीराबाईकी यह उपमा न्यूनाधिक अशमे मुझपर घटित होती थी। पच भी परमेश्वर ही है। मित्रोकी बातको टाल नही सकता था। मैंने वचन दिया। इजाजत मिली।

इस समय मेरा निकट-सबध प्राय नेटालके ही साथ था। नेटालके हिंदुस्तानियोने मुझे प्रेमामृतसे नहला डाला। स्थान-स्थानपर अभिनदन पत्र दिए गए और हरएक जगहसे कीमती चीजे नजर की गईं।

१८९६में जब मैं देश आया था तब भी भेटे मिली थी, पर इस बारकी भेटो और सभाओके दृश्योसे मै घबराया। भेंटमे सोने-चादीकी चीजे तो थी ही; पर हीरेकी चीजे भी थी।

---

[1] प्रभुजीने मुझे कच्चे सूतके प्रेम-धागेसे बाध लिया है। ज्यों-ज्यों वह उसे तानते है त्यों-त्यो मै उनकी होती जाती हू।

इन सब चीजोको स्वीकार करनेका मुझे क्या अधिकार हो सकता है ? यदि मै इन्हे मजूर कर लू तो फिर अपने मनको यह कहकर कैसे मना सकता हू कि मै पैसा लेकर लोगोकी सेवा नही करता था ? मेरे मवक्किलोकी कुछ रकमोंको छोडकर बाकी सब चीजे मेरी लोक-सेवाके ही उपलक्ष्यमे दी गई थी । पर मेरे मनमे तो मवक्किल और दूसरे साथियोमें कुछ भेद न था । मुख्य-मुख्य मवक्किल सब सार्वजनिक काममें भी सहायता देते थे ।

फिर उन भेंटोमे एक पचास गिनीका हार कस्तूरबाईके लिए था । मगर उसे जो चीज मिली वह भी थी तो मेरी ही सेवाके उपलक्ष्यमे । अतएव उसे पृथक् नही मान सकते थे ।

जिस शामको इनमेसे मुख्य-मुख्य भेटे मिली, वह रात मैने एक पागल की तरह जागकर काटी । कमरेमे यहा-से-वहा टहलता रहा, परतु गुत्थी किसी तरह सुलझती न थी । सैकडों रुपयोकी भेटे न लेना भारी पड़ रहा था, पर ले लेना उससे भी भारी मालूम होता था ।

मै चाहे इन भेटोको पचा भी सकता, पर मेरे बालक और पत्नी ? उन्हे तालीम तो सेवाकी मिल रही थी । सेवाका दाम नही लिया जा सकता था, यह हमेशा समझाया जाता था । घरमे कीमती जेवर आदि मै नही रखता था । सादगी बढती जाती थी । ऐसी अवस्थामे सोनेकी घडिया कौन रखेगा ? सोनेकी कठी और हीरेकी अगूठिया कौन पहनेगा ? गहनोका मोह छोडनेके लिए मै उस समय भी औरोसे कहता रहता था । अब इन गहनो और जवाहरातको लेकर मै क्या करूगा ?

मै इस निर्णयपर पहुचा कि वे चीजे मै हरगिज नही रख सकता । पारसी रुस्तमजी इत्यादिको इन गहनोका ट्रस्टी बनाकर उनके नाम एक चिट्ठी तैयार की और सुबह स्त्री-पुत्रादिसे सलाह करके अपना बोझ हल्का करनेका निश्चय किया ।

मै जानता था कि धर्मपत्नीको समझाना मुश्किल पडेगा । मुझे

विश्वास था कि बालकोंको समझानेमे जरा भी दिक्कत पेश न आवेगी। अत: उन्हे वकील बनानेका विचार किया।

बच्चे तो तुरत समझ गए। वे बोले, "हमे इन गहनोसे कुछ मतलब नही। ये सब चीजे हमे लौटा देनी चाहिए और यदि जरूरत होगी तो क्या हम खुद नही बना सकेंगे?"

मै प्रसन्न हुआ। "तो तुम बाको समझाओगे न?" मैने पूछा।

"जरूर-जरूर। वह कहा इन गहनोको पहनने चली है! वह रखना चाहेगी भी तो हमारे ही लिए न? पर जब हमे ही इनकी जरूरत नही है तब फिर वह क्यो जिद करने लगी?"

परतु काम अदाजसे ज्यादा मुश्किल साबित हुआ।

"तुम्हें चाहे जरूरत न हो और लडकोंको भी न हो। बच्चोका क्या? जैसा समझा दे समझ जाते है। मुझे न पहनने दो, पर मेरी बहुओको तो जरूरत होगी। और कौन कह सकता है कि कल क्या होगा? जो चीजे लोगोने इतने प्रेमसे दी है उन्हे वापस लौटाना ठीक नही।" इस प्रकार वाग्धारा शुरू हुई और उसके साथ अश्रु-धारा आ मिली। लड़के दृढ रहे और मै भला क्यो डिगने लगा?

मैने धीरेसे कहा—"पहले लडकोकी शादी तो हो लेने दो। हम बचपनमे तो इनके विवाह करना चाहते ही नही है। बडे होनेपर जो इनका जी चाहे सो करे। फिर हमे क्या गहनो-कपड़ोंकी शौकीन बहुए खोजनी है? फिर भी अगर कुछ बनवाना ही होगा तो मै कहा चला गया हू?"

"हा, जानती हू तुमको। वही न हो, जिन्होने मेरे भी गहने उतरवा लिए है! जब मुझे ही नही पहनने देते हो तो मेरी बहुओको जरूर ला दोगे! लड़कोको तो अभीसे वैरागी बना रहे हो! इन गहनोको मै वापस नही देने दूगी और फिर मेरे हारपर तुम्हारा क्या हक है?"

"पर यह हार तुम्हारी सेवाकी खातिर मिला है या मेरी ?" मैने पूछा ।

"जैसा भी हो तुम्हारी सेवामे क्या मेरी सेवा नही है ? मुझसे जो रात-दिन मजूरी कराते हो, क्या वह सेवा नही है ? मुझे रुला-रुलाकर जो ऐरे-गैरोको घरमे रखा और मुझसे सेवा-टहल कराई, वह कुछ भी नही ?"

ये सब बाण तीखे थे । कितने ही तो मुझे चुभ रहे थे । पर गहने वापस लौटानेका मैं निश्चय कर चुका था । अतको बहुतेरी बातोमें मैं जैसे-तैसे सम्मति प्राप्त कर सका । १८९६ और १९०१मे मिली भेटे लौटाई । उनका ट्रस्ट बनाया गया और लोक-सेवाके लिए उसका उपयोग मेरी अथवा ट्रस्टियोकी इच्छाके अनुसार होनेकी शर्तपर वह रकम बैंकमे रखी गई । इन चीजोको बेचनेके निमित्तसे मैं बहुत बार रुपया एकत्र कर सका हू । आपत्ति-कोषके रूपमे वह रकम आज भी मौजूद है और उसमे वृद्धि होती जाती है ।

इस बातके लिए मुझे कभी पश्चात्ताप नही हुआ । आगे चलकर कस्तूरबाईको भी उसका और औचित्य जचने लगा । इस तरह हम अपने जीवनमे बहुतेरे लालचोसे बच गए है ।

मेरा यह निश्चित मत हो गया है लोक-सेवकको जो भेंट मिलती है, वे उसकी निजी चीज कदापि नही हो सकती ।

मेरे जीवनमे ऐसी अनेक घटनाए होती रही है, जिनके कारण मै विविध धर्मों तथा जातियोंके निकट परिचयमे आ सका हू । इन सब अनुभवोपर यह कह सकते है कि मैने घरके या बाहरके, देशी या विदेशी हिंदू या मुसलमान तथा ईसाई, पारसी या यहूदियोसे भेद-भावका खयाल तक नही किया । मै कह सकता हू कि मेरा हृदय इस प्रकारके भेद-भावको जानता ही नही । इसको मै अपना एक गुण नही मानता हू, क्योंकि जिस प्रकार अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहादि यम-नियमोके अभ्यासका

तथा उनके लिए अब भी प्रयत्न करते रहनेका पूर्ण ज्ञान मुझे है उसी प्रकार इस अ-भेद-भावको बढानेके लिए मैने कोई खास प्रयत्न किया है, ऐसा याद नही पडता ।

जिस समय डरबनमे मै वकालत करता था, उस समय बहुत बार मेरे कारकुन मेरे साथ ही रहते थे । वे हिंदू और ईसाई होते थे, अथवा प्रातोके हिसाबसे कहे तो गुजराती और मद्रासी । मुझे याद नही आता कि कभी उनके विषयमे मेरे मनमे भेद-भाव पैदा हुआ हो । मै उन्हें बिलकुल घरके ही जैसा समझता और उसमे मेरी धर्मपत्नीकी ओरसे यदि कोई विघ्न उपस्थित होता तो मै उससे लडता था । मेरा एक कारकुन ईसाई था । उसके मा-बाप पचम जातिके थे । हमारे घरकी बनावट पश्चिमी ढगकी थी । इस कारण कमरेमे मोरी नही होती थी—और न होनी चाहिए थी, ऐसा मेरा मत है । इस कारण कमरोमे मोरियोकी जगह पेशाबके लिए एक अलग बर्तन होता था । उसे उठाकर रखनेका काम हम दोनों—दपतीका था, नौकरोका नही । हा, जो कारकुन लोग अपनेको हमारा कुटुबी-सा मानने लगते थे वे तो खुद ही उसे साफ कर भी डालते थे, लेकिन पचम जातिमे जन्मा यह कारकुन नया था । उसका बर्तन हमे ही उठाकर साफ करना चाहिए था, दूसरे बर्तन तो कस्तूरबाई उठाकर साफ कर देती, लेकिन इन भाईका बर्तन उठाना उसे असह्य मालूम हुआ । इससे हम दोनोमे झगडा मचा । यदि मै उठाता हू तो उसे अच्छा नही मालूम होता था और खुद उसके लिए उठाना कठिन था । फिर भी आंखोसे मोतीकी बूदे टपक रही है, एक हाथ मे बर्तन लिये अपनी लाल-लाल आखोसे उलहना देती हुई कस्तूरबाई सीढियोसे उतर रही है । वह चित्र मै आज भी ज्यो-का-त्यों खीच सकता हू ।

परतु मै जैसा सहृदय और प्रेमी पति था वैसा ही निष्ठुर और कठोर भी था । मै अपनेको उसका शिक्षक मानता था । इससे अपने अधप्रेमके अधीन हो मै उसे खूब सताता था । इस कारण महज उसके बर्तन उठा

ले जाने-भरसे मुझे संतोष न हुआ। मैंने यह भी चाहा कि वह हँसते और हरखते हुए उसे ले जाय। इसलिए मैंने उसे डांटा-डपटा भी। मैंने उत्तेजित होकर कहा—"देखो, यह बखेडा मेरे घरमे नही चल सकेगा।"

मेरा यह बोल कस्तूरबाईको तीरकी तरह लगा। उसने धधकते दिलसे कहा—"तो लो, रखो यह अपना घर! मै चली!"

उस समय मै ईश्वरको भूल गया था। दयाका लेशमात्र मेरे हृदयमें न रह गया था। मैंने उसका हाथ पकडा। सीढीके सामने ही बाहर जानेका दरवाजा था। मै उस दीन अबलाका हाथ पकडकर दरवाजेतक खीचकर ले गया। दरवाजा आधा खोला होगा कि आखोंमे गगा-जमुना बहाती हुई कस्तूरबाई बोली, "तुम्हे तो कुछ शरम है नही, पर मुझे है। जरा तो लजाओ। मै बाहर निकलकर आखिर जाऊँ कहा? मा-बाप भी यहा नही कि उनके पास चली जाऊँ। मै ठहरी स्त्री-जाति! इसलिए मुझे तुम्हारी धौस सहनी ही पडेगी। अब जरा शरम करो और दरवाजा बद कर लो। कोई देख लेगा तो दोनोंकी फजीहत होगी।"

मैंने अपना चेहरा तो सुर्ख बनाये रखा, पर मनमे शरमा जरूर गया। दरवाजा बद कर दिया। जबकि पत्नी मुझे छोड नही सकती थी तब मै भी उसे छोडकर कहा जा सकता था? इस तरह हमारे आपसमें लडाई-झगडे कई बार हुए है, परतु उनका परिणाम सदा अच्छा ही निकला है। उनमे पत्नीने अपनी अद्भुत सहनशीलताके द्वारा मुझपर विजय प्राप्त की है।

ये घटनाए हमारे पूर्व-युगकी है, इसलिए उनका वर्णन मै आज अलिप्त-भावसे करता हू। आज मै तबकी तरह मोहाध पति नही हू, न उसका शिक्षक ही हू। यदि चाहे तो कस्तूरबाई आज मुझे धमका सकती है। हम आज एक-दूसरेके भुक्त-भोगी मित्र है, एक-दूसरेके प्रति

निर्विकार रहकर जीवन बिता रहे हैं। कस्तूरबाई आज ऐसी सेविका बन गई है, जो मेरी बीमारियोमे बिना प्रतिफलकी इच्छा किये सेवा-शुश्रूषा करती है।

यह घटना १८९८की है। उस समय मुझे ब्रह्मचर्य-पालनके विषयमें कुछ ज्ञान न था। वह समय ऐसा था जबकि मुझे इस बातका स्पष्ट ज्ञान न था कि पत्नी तो केवल सहधर्मिणी, सहचारिणी और सुख-दुःखकी साथिन है। मैं यह समझकर बर्ताव करता था कि पत्नी विषय-भोगकी भाजन है, उसका जन्म पतिकी हर तरहकी आज्ञाओका पालन करनेके लिए हुआ है।

किंतु १९०० ई०से मेरे इन विचारोमे गहरा परिवर्तन हुआ। १९०६मे उसका परिणाम प्रकट हुआ; परंतु इसका वर्णन आगे प्रसंग आनेपर होगा। यहा तो सिर्फ इतना बताना काफी है कि ज्यो-ज्यों मै निर्विकार होता गया त्यो-त्यो मेरा घर-संसार शात, निर्मल और सुखी होता गया और अब भी होता जाता है।

इस पुण्य-स्मरणसे कोई यह न समझ ले कि हम आदर्श दंपती है, अथवा मेरी धर्म-पत्नीमे किसी किस्मका दोष नही है, अथवा हमारे आदर्श अब एक हो गए है। कस्तूरबाई अपना स्वतंत्र आदर्श रखती है या नही, यह तो वह बेचारी खुद भी शायद न जानती होगी। बहुत संभव है कि मेरे आचरणकी बहुतेरी बाते उसे अब भी पसंद न आती हो, परन्तु अब हम उनके बारेमे एक-दूसरेसे चर्चा नही करते, करनेमे कुछ सार भी नही है। उसे न तो उसके मा-बापने शिक्षा दी है, न मैं ही, जब समय था, शिक्षा दे सका, परंतु उसमे एक गुण बहुत बडे परिमाण मे है, जो दूसरी कितनी ही हिंदू-स्त्रियोमें थोडी-बहुत मात्रामे पाया जाता है। मनसे हो या बे-मनसे, जानमे हो या अनजानमे, मेरे पीछे-पीछे चलनेमें उसने अपने जीवनकी सार्थकता मानी है और स्वच्छ जीवन बितानेके मेरे प्रयत्नमे उसने कभी बाधा नही डाली। इस कारण यद्यपि हम दोनोकी बुद्धि-

शक्तिमे बहुत अतर है, फिर भी मेरा खयाल है कि हमारा जीवन सतोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी है।

कस्तूरबाईपर तीन घाते हुईं और तीनोमे वह महज घरेलू इलाजसे बच गईं। पहली घटना तो तबकी है जब सत्याग्रह-सग्राम चल रहा था उसको बार-बार रक्त-स्राव हुआ करता था। एक डाक्टर मित्रने नश्तर लगवानेकी सलाह दी थी। बडी आनाकानीके बाद वह नश्तरके लिए राजी हुई। शरीर बहुत क्षीण हो गया था। डाक्टरने बिना बेहोश किये ही नश्तर लगाया। उस समय उसे दर्द तो बहुत हो रहा था, पर जिस धीरजसे कस्तूरबाईने उसे सहन किया उसे देखकर मै दातो तले अगुली देने लगा। नश्तर अच्छी तरह लग गया। डाक्टर और उसकी धर्मपत्नीने कस्तूरबाईकी बहुत अच्छी तरह शुश्रूषा की।

यह घटना डरबनकी है। दो या तीन दिन बाद डाक्टरने मुझे निश्चिंत होकर जोहान्सबर्ग जानेकी छुट्टी दे दी। मै चला भी गया; पर थोडे ही दिनमे समाचार मिले कि कस्तूरबाईका शरीर बिलकुल सिमटता नही है और वह बिछौनेसे उठ-बैठ भी नही सकती। एक बार बेहोश भी हो गई थी। डाक्टर जानते थे कि मुझसे पूछे बिना कस्तूरबाईको शराब या मास—दवामे अथवा भोजनमे—नही दिया जा सकता था। सो उन्होने मुझे जोहान्सबर्ग टेलीफोन किया, "आपकी पत्नीको मै मासका शोरबा और 'बीफ टी' देनेकी जरूरत समझता हू। मुझे इजाजत दीजिए।"

मैने जवाब दिया, "मै तो इजाजत नही दे सकता। परतु कस्तूरबाई आजाद है। उसकी हालत पूछने लायक हो तो पूछ देखिए और वह लेना चाहे तो जरूर दीजिए।"

"बीमारसे मै ऐसी बाते नही पूछना चाहता। आप खुद यहा आ जाइए। जो चीजे मै बताता हू उनके खानेकी इजाजत यदि आप न दे तो मै आपकी पत्नीकी जिंदगीके लिए जिम्मेदार नहीं हू।"

यह सुनकर मैं उसी दिन डरबन रवाना हुआ। डाक्टरसे मिलनेपर उन्होने कहा—"मैंने तो शोरबा पिलाकर आपको टेलीफोन किया था।"

मैंने कहा—"डाक्टर, यह तो विश्वासघात है।"

"इलाज करते वक्त मैं दगा-वगा कुछ नही समझता। हम डाक्टर लोग ऐसे समय बीमारको व उसके रिश्तेदारोको धोखा देना पुण्य समझते हैं। हमारा धर्म तो है, जिस तरह हो सके रोगीको बचाना।" डाक्टरने दृढता-पूर्वक उत्तर दिया।

यह सुनकर मुझे बडा दु ख हुआ, पर मैंने शाति धारण की। डाक्टर मित्र थे, सज्जन थे। उनका और उनकी पत्नीका मुझपर बडा अहसान था। पर मैं उनके इस व्यवहारको बरदाश्त करनेके लिए तैयार न था।

"डाक्टर, अब साफ-साफ बाते कर लीजिए। बताइए, आप क्या करना चाहते है? अपनी पत्नीको बिना उसकी इच्छाके मास नही देने दूगा। उसके न लेनेसे यदि वह मरती हो तो इसे सहन करने के लिए मैं तैयार हू।"

डाक्टर बोले, "आपका यह सिद्धात मेरे घर नही चल सकता। मैं तो आपसे कहता हू कि आपकी पत्नी जबतक मेरे यहा है तबतक मैं मास, अथवा जो कुछ देना मुनासिब समझूगा, जरूर दूगा। अगर आपको यह मजूर नही है तो आप अपनी पत्नीको यहासे ले जाइए। अपने ही घरमें मैं इस तरह उन्हे नही मरने दूगा।"

"तो क्या आपका यह मतलब है कि मैं पत्नीको अभी ले जाऊ?"

"मैं कहा कहता हू कि ले जाओ? मैं तो यह कहता हू कि मुझपर कोई शर्त न लादो तो हम दोनोंसे इनकी जितनी सेवा हो सकेगी करेगे और आप सो जाइए। जो यह सीधी-सी बात समझमे न आती हो तो मुझे मजबूरीसे कहना होगा कि आप अपनी पत्नीको मेरे घरसे ले जाइए।"

मेरा खयाल है कि मेरा लडका उस समय मेरे साथ था। उससे

मैंने पूछा तो उसने कहा—"हा, आपका कहना ठीक है। बाको मांस कैसे दे सकते है?"

फिर मै कस्तूरबाईके पास गया। वह बहुत कमजोर हो गई थी। उससे कुछ भी पूछना मेरे लिए दुखदाई था। पर अपना धर्म समझकर मैंने ऊपरकी बातचीत उसे थोडेमें समझा दी। उसने दृढतापूर्वक जवाब दिया—"मै मासका शोरबा नही लूगी। यह मनुष्य-देह बार-बार नही मिला करती। आपकी गोदीमे मै मर जाऊ तो परवाह नही, पर अपनी देहको मै भ्रष्ट नही होने दूगी।"

मैंने उसे बहुतेरा समझाया और कहा कि तुम मेरे विचारोके अनुसार चलनेके लिए बाध्य नही हो। मैंने उसे यह भी बता दिया कि कितने ही अपने परिचित हिंदू भी दवाके लिए शराब और मास लेनेमे परहेज नही करते। पर वह अपनी बातसे बिलकुल न डिगी और मुझसे कहा—"मुझे यहासे ले चलो।"

यह देखकर मै बडा खुश हुआ, किन्तु ले जाते हुए बडी चिता हुई। पर मैंने तो निश्चय कर ही डाला और डाक्टरको भी पत्नीका निश्चय सुना दिया।

वह बिगडकर बोले, "आप तो बड़े घातक पति मालूम होते है। ऐसी नाजुक हालतमे उस बेचारीसे ऐसी बात करते हुए आपको शरम नही मालूम हुई? मै कहता हू कि आपकी पत्नीकी हालत यहासे ले जाने लायक नही है। उनके शरीरकी हालत ऐसी नही है कि जरा भी धक्का सहन कर सके। रास्ते हीमे दम निकल जाय तो ताज्जुब नही! फिर भी आप हठ-धर्मीसे न माने तो आप जाने! यदि शोरबा न देने दें तो एक रात भी उन्हे अपने घरमे रखनेकी जोखिम मै नही लेता।"

रिमझिम-रिमझिम मेह बरस रहा था। स्टेशन दूर न था। डरबनसे फिनिक्सतक रेलके रास्ते और फिनिक्ससे लगभग ढाई मीलतक पैदल जाना था। खतरा पूरा-पूरा था। पर मैंने यही सोच लिया कि

ईश्वर सब तरह मदद करेगा। पहले एक आदमीको फिनिक्स भेज दिया। फिनिक्समे हमारे यहा एक हैमक था। हैमक कहते है जालीदार कपड़ेकी झोली अथवा पालनेको। उसके सिरोंको बाससे बांध देनेपर बीमार उसमें आरामसे झूला करता है। मैंने वेस्टको कहलाया कि वह हैमक, एक बोतल गरम दूध, एक बोतल गरम पानी और छ आदमियोको लेकर फिनिक्स स्टेशनपर आ जाय।

जब दूसरी ट्रेन चलनेका समय हुआ तब मैंने रिक्शा मगाई और उस भयकर स्थितिमे पत्नीको लेकर चल दिया।

पत्नीको हिम्मत दिलानेकी मुझे जरूरत न पड़ी, उल्टा मुझीको हिम्मत दिलाते हुए उसने कहा, "मुझे कुछ नुकसान न होगा, आप चिंता न करे।"

इस ठठरीमें वजन तो कुछ रही नही गया था। खाना पेटमे जाता ही न था। ट्रेनके डब्बेतक पहुचनेके लिए स्टेशनके लबे-चौडे प्लेटफार्मपर दूरतक चलकर जाना था; क्योकि रिक्शा वहातक पहुच नही सकती थी। मै सहारा देकर डब्बेतक ले गया। फिनिक्स स्टेशन पर तो वह झोली आ गई थी। उसमे हम रोगीको आरामसे घरतक ले गए। वहा केवल पानीके उपचारसे धीरे-धीरे उसका शरीर बनने लगा। फिनिक्स पहुचनेके दो-तीन दिन बाद एक स्वामीजी हमारे यहा पधारे। जब हमारी हठ-धर्मीकी कथा उन्होंने सुनी तो हमपर उनको बडा तरस आया और वह हम दोनोको समझाने लगे।

मुझे जहातक याद आता है, मणिलाल और रामदास भी उस समय मौजूद थे। स्वामीजीने मासाहारकी निर्दोषतापर एक व्याख्यान झाडा, मनुस्मृतिके श्लोक सुनाए। पत्नीके सामने जो इसकी बहस उन्होने छेडी यह मुझे अच्छा न मालूम हुआ, परतु शिष्टाचारकी खातिर मैंने उसमें दखल न दिया। मुझे मासाहारके समर्थनमे मनुस्मृतिके प्रमाणोंकी आवश्यकता न थी। उनका पता मुझे था। मै यह भी जानता था कि ऐसे लोग

भी है जो उन्हे प्रक्षिप्त समझते है । यदि वे प्रक्षिप्त न हों तो भी अन्नाहार-सबधी मेरे विचार स्वतत्र-रूपसे बन चुके थे। पर कस्तूरबाईकी तो श्रद्धा ही काम कर रही थी। वह बेचारी शास्त्रोके प्रमाणोको क्या जानती ? उसके नजदीक तो परपरागत रूढि ही धर्म था। लडकोंको अपने पिताके धर्मपर विश्वास था, इससे वे स्वामीजीके साथ विनोद करते जाते थे। अतको कस्तूरबाईने यह कहकर इस बहसको बद कर दिया, "स्वामीजी, आप कुछ भी कहिए, मै मासका शोरबा खाकर चगी होना नही चाहती। अब बडी दया होगी, अगर आप मेरा सिर न खपावे। मैंने तो अपना निश्चय आपसे कह दिया। अब और बाते रह गई हों तो आप इन लडकोके बापसे जाकर कीजिएगा।"

नश्तर लगानेके बाद यद्यपि कस्तूरबाईका रक्त-स्राव कुछ समयके लिए बद हो गया था, तथापि बादको वह फिर जारी हो गया। अबकी वह किसी तरह मिटाये न मिटा। पानीके इलाज बेकार साबित हुए। मेरे इन उपचारोपर पत्नीकी बहुत श्रद्धा न थी, पर साथ ही तिरस्कार भी न था। दूसरा इलाज करनेका भी उसे आग्रह न था। इसलिए जब मेरे दूसरे उपचारोमे सफलता न मिली तब मैंने उसको समझाया कि दाल और नमक छोड दो। मैंने उसे समझानेकी हद कर दी, अपनी बातके समर्थनमे कुछ साहित्य भी पढकर सुनाया, पर वह नही मानती थी। अतको उसने झुझलाकर कहा—"दाल और नमक छोडनेके लिए तो आपसे भी कोई कहे तो आप भी न छोडेगे।"

इस जवाबको सुनकर, एक ओर जहा मुझे दु ख हुआ वहा दूसरी ओर हर्ष भी हुआ; क्योकि इससे मुझे अपने प्रेमका परिचय देनेका अवसर मिला। उस हर्षसे मैंने तुरत कहा, "तुम्हारा खयाल गलत है, मै यदि बीमार होऊ और मुझे यदि वैद्य इन चीजोंको छोडने के लिए कहे तो जरूर छोड दू। पर ऐसा क्यो ? लो, तुम्हारे लिए मै आज ही से दाल और नमक एक साल तक छोडे देता हूँ। तुम छोडो या न छोडो, मैंने तो छोड दिया।"

यह देखकर पत्नीको बडा पश्चात्ताप हुआ। वह कह उठी, "माफ करो, आपका मिजाज जानते हुए भी यह बात मेरे मुहसे निकल गई। अब मै तो दाल और नमक न खाऊगी, पर आप अपना वचन वापस ले लीजिए। यह तो मुझे भारी सजा दे दी।"

मैने कहा, "तुम दाल और नमक छोड दो तो बहुत ही अच्छा होगा। मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हे लाभ ही होगा, परतु मै जो प्रतिज्ञा कर चुका हूँ वह नही टूट सकती। मुझे भी उससे लाभ ही होगा। हर किसी निमित्तसे मनुष्य यदि सयमका पालन करता है तो इससे उसे लाभ ही होता है। इसलिए तुम इस बातपर जोर न दो, क्योकि इससे मुझे भी अपनी आजमाइश कर लेनेका मौका मिलेगा और तुमने जो इनको छोडनेका निश्चय किया है, उसपर दृढ रहनेमे भी तुम्हे मदद मिलेगी।" इतना कहनेके बाद तो मुझे मनानेकी आवश्यकता रह नही गई थी।

"आप तो बडे हठी है, किसीका कहा मानना आपने सीखा ही नही।" यह कहकर वह आसू बहाती हुई चुप हो रही।

इसको मै पाठकोंके सामने सत्याग्रहके तौरपर पेश करना चाहता हू और मै कहना चाहता हू कि मै इसे अपने जीवनकी मीठी स्मृतियोमे गिनता हू।

इसके बाद तो कस्तूरबाईका स्वास्थ्य खूब सम्हलने लगा। अब यह नमक और दालके त्यागका फल है, या उस त्यागसे हुए भोजनके छोटे-बडे परिवर्तनोका फल था, या उसके बाद दूसरे नियमोका पालन करानेकी मेरी जागरूकताका फल था, या इस घटनाके कारण जो मानसिक उल्लास हुआ उसका फल था, यह मै नही कह सकता, परतु यह बात जरूर हुई कि कस्तूरबाईका सूखा शरीर फिर पनपने लगा। रक्त-स्राव बद हो गया और 'वैद्यराज' के नामसे मेरी साख कुछ बढ गई (आ०, १९२७)

. . .

कल एक आदमीने भूलसे उन्हे (बाको) मेरी मा समझ लिया था।

यह भूल हमारे और उनके बीच न सिर्फ क्षम्य ही है, बल्कि तारीफकी बात है; क्योंकि बहुत वर्षोंसे वह हम दोनोकी सलाहसे मेरी पत्नी नही रह गई है। चालीस साल हुए मै बेमा-बापका हो गया और तीस वर्षोंसे वह मेरी माका काम कर रही है। वह मेरी मा, सेविका, रसोइया, बोतल धोनेवाली सब कुछ रही है। अगर वह इतने सवेरे आपके दिए सम्मानमें हिस्सा लगाने आती तो मैं भूखा ही रह जाता और मेरे शारीरिक सुखकी कोई परवाह नही करता। इसलिए हमने आपसमे यह समझौता कर लिया है कि सभी सम्मान मुझे मिले और सभी मिहनत उसे करनी पडे। मै आपको विश्वास दिलाता हू कि उसके बारेमे जो-जो अच्छी-अच्छी बाते आपने कही है व सब मेरे कोई साथी उससे कह देगे और उसकी गैरहाजिरीके लिए आप मेरा जवाब मजूर कर लेंगे। (हि० न०, १ १२ २७)

. .

आज (३१-३-३२) 'लीडर' को 'लंदनकी चिट्ठी' अच्छी थी। आम तौरपर पोलक नरम शब्दोंमें ही लिखते हैं, मगर इस बार हिंदुस्तानकी घटनाओंपर उन्होंने काफी गरम होकर लिखा है। बाको 'सी' क्लास मिला, बादमें 'ए' मिला और कराचीकी एक ८० वर्षकी महिलाको पकड़ा गया, इन बातोंपर उन्होंने अच्छा लिखा है। 'बा' तो गांधीकी पत्नी थीं, इसलिए उन्हें 'सी'से बदलकर 'ए'में रख दिया, नहीं तो ६० वर्षकी दूसरी कोई औरत होती तो 'सी'में ही रहती न ? यह उनकी दलील अच्छी है। मगर सबसे बढ़िया तो यह है। सेम्युअल होर के लिए वे लिखते है कि हिंदुस्तानमें जब यह सबकुछ हो रहा है तब सेम्युअल 'स्केट' करता है ! कारवां और उसपर भोंकनेवाले कुत्तोंका इसका रूपक उलटा इसीपर चाहे लागू न हो, मगर यह देखना कि कहीं यहांका कारवां इतना आगे न बढ़ जाय कि फिर कुछ सुधारनेकी गुंजायश ही न रहे और सिर्फ कुत्ते ही भोंकते रह जायं—यह कहकर उन्होने होरको 'सावधान' कहा है।

बापू—"बस, यह तो फिरोजशाह मेहता जैसी बात हुई। उन्हे

दक्षिण अफ्रीकाकी लडाईकी कोई परवाह नही थी, मगर जब बाको पकडनेकी खबर सुनी तो उन्हे आग लग गई और उन्होने टाउन हालका प्रसिद्ध भाषण दिया। पोलकसे बा वाली बात बर्दाश्त नही हुई, इसलिए यह लिखा है।"

वल्लभभाई—"बाकी बात ऐसी है, जो किसीको भी चुभेगी। बा तो अहिंसाकी मूर्ति है। ऐसी अहिंसाकी छाप मैंने और किसी स्त्रीके चेहरेपर नहीं देखी। उनकी अपार नम्रता, उनकी सरलता किसीको भी हैरतमें डालनेवाली है।"

बापू—"सही बात है, वल्लभभाई। मगर मुझे बाका सबसे बडा गुण उसकी हिम्मत और बहादुरी मालूम होती है। वह जिद करे, क्रोध करे, ईर्ष्या करे, मगर यह सब जाननेके बाद आखिर दक्षिण अफ्रीकासे आजतककी उसकी कारगुजारी देखे तो उसकी बहादुरी बाकी रहती है।" (म० डा०, भाग १, ३१ ३ ३२)

• •

बापूकी थकान अभी चल रही है। बाका स्मरण उन्हें उसी तरह व्यथित करता रहता है। आज फिर कह रहे थे,

"बाकी मृत्यु भव्य थी। मुझे उसका बहुत हर्ष है। जो दु ख है वह तो अपने स्वार्थके लिए। ६२ वर्षके साथके बाद उसका साथ छटना चुभता है। कितनी ही कोशिश करू, अभी मै उन स्मरणोको मनसे नही निकाल सकता। (का० क०, २७ २.४४)

• • •

शामको घूमते समय बापू कुछ थके-से लगे। पूछनेपर कहने लगे,

"एक तो मेरे पत्रोंके सरकारी जवाब नही आते हैं, इसलिए मनपर बोझ है। दूसरे, बाके जानेका धक्का अभीतक दूर नही हुआ। बुद्धि कहती है कि इससे अच्छी मृत्यु बा के लिए हो नही सकती थी। मुझे हमेशा यह डर रहता था कि बा अगर मेरे पीछे रह जायगी तो अच्छा नही।

मेरे हाथोमे ही चली जाय तो मुझे अच्छा लगे; क्योंकि बा मुझमे समा गई थी। मै शोकमें पडा रहता हूँ, ऐसा भी नही है। बाका विचार करता रहता हू, वह भी नही। क्या है, उसका मै वर्णन नही कर सकता।" (का० क०, २३.३.४४)

. . . .

बाका जाना एक कल्पना-सा लगता है। मैं उसके लिए तैयार था, मगर जब वह सचमुच ही चली गई तो मुझे कल्पनासे अधिक एक नई बात लगी। मै अब सोचता हू कि बाके बिना मै अपने जीवनको ठीक-ठीक बैठा ही नही सकता हू। (का० क०, २ ३ ४४)

शामको बापू घूमते समय कनुसे बात कर रहे थे कि बाके स्मारकके लिए पैसा इकट्ठा करना है। बापूकी अगली जयंतीपर ७५ लाख रुपया इकट्ठा करनेकी बात पहलेसे ही चल रही थी। कनु बापूसे इस विषयपर पूछ रहा था। बापूने कहा,

"दोनो फड साथ मिला दो। बा मुझमे समा गई थी। कौन है ऐसी स्त्री, जो इस तरह अपने पतिकी गोदमे प्राण दे? अंतिम समयमे उसने मुझे बुलाया। तब मै नही जानता था कि वह जा रही है, और मै घूमने नही चला गया था, वह भी ईश्वरका ही काम था। पेनिसिलीनके कारण ही मै रुका। मृत्यु-शय्यापर पडी हुई को इन्जेक्शन क्या देना था? मगर जब बा के पास बैठा तो समझ गया कि बा अब जाती है। बा के नामसे विश्व-विद्यालय खोलना मै एक निकम्मी बात समझता हू। उसे विश्वविद्यालयमे रस कहा था? चर्खा इत्यादिमे तो वह रस लेती थी। यह फड हम दोनोके निमित्त इकट्ठा हो तो लोगोपर बोझ नही पडेगा। बाका हिस्सा मेरी जयन्तीमे हमेशा रहा है। इस फडका उपयोग चर्खा और ग्रामोद्योगके लिए होगा। नारायणदासको उसके कारभारमे पूरी मेहनत और जिम्मे-दारी लेनी होगी।" (का० क०, ४.३.४४)

. . . .

बाका जबरदस्त गुण महज अपनी इच्छासे मुझमें समा जानेका था। यह कुछ मेरे आग्रहसे नही हुआ था। लेकिन समय पाकर बाके अंदर ही इस गुणका विकास हो गया था। मै नही जानता था कि बामे यह गुण छिपा हुआ था। मेरे शुरू-शुरूके अनुभवके अनुसार बा बहुत हठीली थी। मेरे दबाव डालनेपर भी वह अपना चाहा ही करती। इसके कारण हमारे बीच थोडे समय की या लबी कडुवाहट भी रहती, लेकिन जैसे-जैसे मेरा सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल बनता गया, वैसे-वैसे बा खिलती गई और पुख्ता विचारोके साथ मुझमे यानी मेरे काममे समाती गईं। जैसे दिन बीतते गए, मुझमे और मेरे काममे—सेवामे—भेद न रह गया। बा धीमे-धीमे उसमे तदाकार होने लगी। शायद हिंदुस्तानकी भूमिको यह गुण अधिक-से-अधिक प्रिय है। कुछ भी हो, मुझे तो बाकी उक्त भावनाका यह मुख्य कारण मालूम होता है।

बामे यह गुण पराकाष्ठाको पहुचा, इसका कारण हमारा ब्रह्मचर्य था। मेरी अपेक्षा बाके लिए वह बहुत ज्यादा स्वाभाविक सिद्ध हुआ। शुरूमे बाको इसका कोई ज्ञान भी न था। मैने विचार किया और बाने उसको उठाकर अपना बना लिया। परिणामस्वरूप हमारा संबध सच्चे मित्रका बना। मेरे साथ रहनेमे बाके लिए सन् १९०६ से, असलमें सन् १९०१ से, मेरे काममे शरीक हो जानेके सिवा या उससे भिन्न और कुछ रह ही नही गया था। वह अलग रह नही सकती थी। अलग रहनेमें उन्हे कोई दिक्कत न होती, लेकिन उन्होने मित्र बननेपर भी स्त्रीके नाते और पत्नीके नाते मेरे काममे समा जानेमे ही अपना धर्म माना। इसमें बाने मेरी निजी सेवाको अनिवार्य स्थान दिया। इसलिए मरते दम तक उन्होंने मेरी सुविधाकी देखरेखका काम छोड़ा ही नही।

अगर मै अपनी पत्नीके बारेमे अपने प्रेम और अपनी भावनाका वर्णन कर सकू तो हिंदूधर्मके बारेमे अपने प्रेम और अपनी भावनाओंको

मैं प्रकट कर सकता हू । दुनियाकी दूसरी किसी भी स्त्रीके मुकाबिलेमें मेरी पत्नी मुझपर ज्यादा असर डालती है ।।

पहले तो अपनी पत्नीके मृत्युके बारेमे आपकी ममताभरी समवेदनाके लिए मैं आपका और लेडी वेवेलका आभार मानता हू । यद्यपि अपनी मृत्युके कारण वह सतत वे[illegible]से छूट गई है, इसलिए उनकी दृष्टिसे मैंने उनकी मौतका स्वागत किया है, तो भी इस क्षतिसे मुझको जितना दु ख होनेकी कल्पना मैंने की थी, उससे अधिक दु ख हुआ है । हम असाधारण दपती थे । १९०६ मे एक दूसरेकी स्वीकृतिसे और अनजानी आजमाइशके बाद हमने आत्म-सयमके नियमको निश्चित रूपसे स्वीकार किया था । इसके परिणामस्वरूप हमारी गाठ पहलेसे कही ज्यादा मजबूत बनी और मुझे उससे बहुत आनद हुआ । हम दो भिन्न व्यक्ति नही रह गए । मेरी वैसी कोई इच्छा नही थी, तो भी उन्होने मुझमे लीन होना पसद किया । फलत वह सचमुच ही मेरी अर्धांगिनी बनी । वह हमेशासे बहुत दृढ इच्छा-शक्तिवाली स्त्री थी, जिनको अपनी नवविवाहित दशामे मैं भूलसे हठीली माना करता था, लेकिन अपनी दृढ इच्छा-शक्तिके कारण वह अनजाने ही अहिसक असहयोगकी कलाके आचरणमे मेरी गुरु बन गईं । आचरणका आरभ मेरे अपने परिवारसे ही किया । १९०६ मे जब मैंने उसे राजनीतिके क्षेत्रमे दाखिल किया तब उसका अधिक विशाल और विशेष रूपमे योजित 'सत्याग्रह' नाम पडा । दक्षिण अफ्रीकामे जब हिदुस्तानियोंकी जेल-यात्रा शुरू हुई तब श्रीमती कस्तूरबा भी सत्याग्रहियोमे एक थी । मेरे मुकाबिले शारीरिक पीडा उनको ज्यादा हुई । वह कई बार जेल जा चुकी थी, फिर भी इस बारके इस कैदखानेमे, जिसमे सभी तरहकी सहूलियते मौजूद थी, उनको अच्छा नही लगा । दूसरे बहुतोके साथ मेरी और फिर तुरत ही उनकी जो गिरफ्तारी हुई, उससे उन्हे जोरका आघात पहुचा और उनका मन खट्टा हो गया । वह मेरी गिरफ्तारीके लिए बिलकुल तैयार नही थी । मैंने उन्हे विश्वास दिलाया था कि सरकार-

को मेरी अहिंसापर भरोसा है और जबतक मैं खुद गिरफ्तार होना न चाहूं वह मुझे पकडेगी नही। सचमुच उनके ज्ञानतंतुओंको इतने जोरका धक्का बैठा कि उनकी गिरफ्तारीके बाद उन्हे दस्तकी सख्त शिकायत हो गई। अगर उस समय डा० सुशीला नैयरने, जो उनके साथ ही पकड़ी गई थीं, उनका इलाज न किया होता तो मुझे इस जेलमे आकर मिलनेसे पहले ही उनकी देह छूट चुकी होती। मेरी हाजिरीसे उन्हे आश्वासन मिला और बिना किसी खास इलाजके दस्तकी शिकायत दूर हो गई। लेकिन मन जो खट्टा हुआ था, सो खट्टा ही बना रहा। इसकी वजहसे उनके स्वभावमे चिडचिडापन आ गया और इसीका नतीजा था कि आखिर कष्ट सहते-सहते क्रम-क्रमसे उनका देहपात हुआ। ('हमारी बा', पृ० २२)

. . . . . .

बा राजकोटकी लडाईमें शामिल हुई, इसपर कुछ न लिखनेका मेरा इरादा था, लेकिन उनके उस लडाईमे शामिल होनेपर जो थोडी निष्ठुर टीकाएं हुई है, वे खुलासा चाहती है। मुझे तो कभी यह सूझा ही न था कि बाको इस लडाईमे शरीक होना चाहिए। इसकी खास वजह तो यह थी कि इस तरहकी मुसीबतोके लिए वे बहुत बूढी हो चुकी थी। लेकिन बात कितनी ही अनोखी क्यो न मालूम हो, टीकाकारोको मेरे इस कथन पर इतना विश्वास तो रखना चाहिए कि अगरचे बा अनपढ थी, फिर भी कई सालोसे उन्हे इस बातकी पूरी-पूरी आजादी थी कि वे जो करना चाहे, करें। क्या दक्षिण अफ्रीकामे और क्या हिंदुस्तानमे, जब-जब भी वे किसी लडाईमे शरीक हुई है, अपने आप, अपनी आतरिक भावनासे ही। इस बार भी ऐसा ही हुआ था। जब उन्होने मणिबहनकी गिरफ्तारीकी बात सुनी तो उनसे न रहा गया और उन्होने मुझसे लड़ाईमे शामिल होनेकी इजाजत मागी। मैंने कहा, "तुम अभी बहुत ही कमजोर हो।" दिल्लीमे कुछ ही दिन पहले वह अपने नहानेके कमरेमें बेहोश हो गई थी। उस वक्त देवदासने हाजिरखयालीमे काम न लिया होता तो वे उसी समय

स्वर्गधाम पहुच गई होती । लेकिन बाने जवाब दिया, "शरीरकी मुझे परवाह नही।" इसपर मैंने सरदारसे पुछवाया। वे भी इजाजत देनेके लिए बिलकुल तैयार न थे ।

लेकिन फिर तो वे पसीजे । रेजीडेंटकी सूचनासे ठाकुरसाहबने जो वचन भग किया था, उसके कारण मुझे होनेवाले क्लेशके वे साक्षी थे । कस्तूबाई राजकोटकी बेटी ठहरी । इसलिए उन्होने अतरकी आवाज सुनी । उन्होने महसूस किया कि जब राजकोटकी बेटिया राज्यके पुरुषों और स्त्रियोंकी आजादीके लिए जूझ रही हों तब वे चुप बैठ ही नही सकती।

उनमे एक गुण बहुत बडा था । हरएक हिंदू पत्नीमे वह कमोबेश होता ही है । इच्छासे या अनिच्छासे अथवा जाने-अनजाने भी वह मेरे पदचिन्होपर चलनेमे धन्यता अनुभव करती थी ।...

अगरचे मै चाहता था कि उस तीव्र वेदनासे उन्हे छुटकारा मिले और जल्दी ही उनकी देहका अत हो जाय तो भी आज उनकी कमीको जितना मैंने माना था, उससे कही अधिक मै महसूस कर रहा हू । हम असाधारण दपती थे—अनोखे । हमारा जीवन सतोषी, सुखी और सदा ऊर्ध्वगामी था । ('हमारी बा', १८ २ ४५)

: ५१ :

नारणदास गांधी

पास ही नारणदास जैसा साधु पुरुष है । नारणदासकी दृढता, सहन-शीलता, हिम्मत, त्यागशक्ति और विवेकबुद्धि वगैरह पर मुझ जैसेको भी ईर्ष्या करनेकी इच्छा होती है । इसने मुझे आश्रमकी तरफसे बिलकुल निश्चित कर दिया है ।

.. ..

हम अदर रहकर ताप नही सह रहे हैं, तुम आतरिक और वाह्य दोनो तपश्चर्या कर रहे हो। (म० डा०, भाग १, २७ ५ ३२)

. . . . .

यहा बैठे-बैठे आश्रममे फेरबदल कराया करता हू। नारणदासकी अनन्य श्रद्धा, उसकी पवित्रता, दृढता, उसका उद्यम और कार्यदक्षता सबका लाभ ले रहा हू।

. .

नारणदासके बारेमे मेरा पूरा विश्वास है। वह कहे कि मुझे शाति है तो मै अशाति माननेको तैयार नही हू। मैने उसे खूब चेता दिया है। दूर बैठा हुआ अब उसे तग नही करूगा। नारणदासमे अनासक्तिके साथ काम करनेकी बड़ी शक्ति है। अनासक्त हमेशा आसक्तसे बहुत ज्यादा काम करता है और फुर्सतमे हो, ऐसा दीखता है। वह सबसे बादमे थकता है। सच पूछो तो उसे थकावट मालूम ही नही होनी चाहिए। मगर यह तो हुआ आदर्श। तुम वहा मौजूद हो, इसलिए अगर तुम्हे अशाति दिखाई दे और यह लगे कि नारणदास अपने आपको धोखा देता है तो तुम्हारा धर्म मुझसे अलग होगा। तुम्हे तो नारणदासको सावधान करना ही चाहिए। मै भी वहा होऊ और वह प्रत्यक्ष जो कहे उससे दूसरी ही बात देखू तो जरूर उसे चेतावनी दू। तुम्हारी चेतावनीके बावजूद वह तुम्हारा विरोध करे तो तुम्हे उसका कहना मानना चाहिए, जबतक तुम उसे सत्याग्रही मानती हो तबतक। कई बार हमे अपनी आखे भी धोखा दे देती है। मुझे तुम्हारे चेहरेपर उदासी दीखे, परतु तुम इन्कार करो तो मुझे तुम्हारी बात मान ही लेनी चाहिए। मुझे यह भय हो या शक हो कि मुझसे तुम छिपाती हो तो दूसरी बात है। फिर तो तुमसे पूछनेकी बात नही रह जाती। जाननेके लिए मुझे दूसरे साधन पैदा करने चाहिए। मगर आश्रमजीवन तो इसी तरह चलता है। उसकी बुनियाद

सचाईपर ही है । बड़ा अच्छे हेतुसे भी धोखा नही दिया जा सकता। (म० डा०, भाग १, २३.६ ३२)

. .

नारायणदाससे बढकर कोई आदमी इतना ही दृढ, विवेकी, समझ-दार और कर्तव्य-परायण मुझको मिलनेकी कोई उम्मीद नही है, और नारायणदास मिला है इसको मै ईश्वरका अनुग्रह मानता हू ।

. . .

तुम्हे मेरा आशीर्वाद अजलिया भर-भरकर है । क्यों न भेजू! मेरी सारी आशाए तुम सफल कर रहे हो और अपनी अनन्य और ज्ञान-मय सेवासे हम तीनोको ही आश्चर्य-चकित कर रहे हो । सारी अग्नि-परीक्षाओंमेंसे पार उतरनेकी शक्ति ईश्वरने तुम्हे बख्शी मालूम होती है। खूब जिओ और अहिंसा-देवीके जरिए सत्यनाराण-का साक्षात्कार करो और दूसरोके करनेमे सहायक बनो। (म० डा०, भाग २,११.६ ३२)

.

नारणदास गाधी लिखते है कि मै पाठकोको यह याद दिला दू कि 'चर्खा-जयती' के निमित्त जो लोग कताई-यज्ञमे भाग लेना चाहते हो उन्हे अपने नाम तुरत भेज देने चाहिए। गत ११ अक्तूबरसे यह यज्ञ आरभ हुआ है । जिन लोगोने अपने नाम अभीतक नही भेजे है, वे पिछड तो गए ही है, लेकिन कभी न करनेसे देरसे करना फिर भी अच्छा है। जो पीछे रह गए है वे निश्चित परिमाणसे अधिक कातकर साथ हो सकते है। नारणदास गाधी इस किस्मके खादी-कार्यके अच्छे विशेषज्ञ है। आकडोमे वे खूब रस लेते है और इस कामको तेजीसे करते है। यज्ञार्थ कातनेवालोके नाम और पतोका ठीक-ठीक हिसाब रखने और उनके सूतको रजिस्टरपर चढानेके कामसे वे कभी थकते ही नही; बल्कि उलटे इस काममें उन्हे आनद आता है । वे मानते है कि काम कोई भी हो नियमसे

होना चाहिए। उनका खयाल है कि इस तरह कामका ठीक-ठीक हिसाब रखनेसे ही नियमितता आती है और काम करनेवालोको प्रोत्साहन मिलता है। यदि खासी बडी तादादमे लोग यज्ञार्थ काते तो वे खादीकी कीमतमे जरूर कमी कर सकते हैं। इस योजनामे बहुत सभावनाए है। इसलिए मैं आशा करता हू कि यज्ञार्थ कताईकी इस सुदर योजनापर समुचित ध्यान दिया जायगा। (ह० से०, २५ ११ ३९)

: ५२ :

मगनलाल खुशालचन्द गान्धी

मेरे साथ मेरे जो-जो रिश्तेदार आदि वहा गए और व्यापार आदिमे लग गए थे उन्हे अपने मतमे मिलानेका और फिनिक्समे दाखिल करनेका प्रयत्न मैंने शुरू किया। वे सब तो धन जमा करनेकी उमगसे दक्षिण अफ्रीका आए थे। उनको राजी कर लेना बडा कठिन काम था, परंतु कितने ही लोगोको मेरी बात जच गई। इन सबमेसे आज तो मगनलाल गाधीका नाम मैं चुनकर पाठकोंके सामने रखता हू, क्योकि दूसरे लोग जो राजी हुए थे, वे थोडे-बहुत समय फिनिक्समे रहकर फिर धन-सचयके फेरमे पड गए। मगनलाल गाधी तो अपना काम छोडकर जो मेरे साथ आए, सो अबतक रह रहे है और अपने बुद्धि-बलसे, त्यागसे, शक्तिसे एव अनन्य भक्ति-भावसे मेरे आतरिक प्रयोगोंमे मेरा साथ देते है एव मेरे मूल साथियोमे आज उनका स्थान सबमे प्रधान है। फिर एक स्वय-शिक्षित कारीगरके रूपमे तो उनका स्थान मेरी दृष्टिमें अद्वितीय है।

• •

शातिनिकेतनमें मेरे मडलको अलग स्थानमें ठहराया गया था। वहा मगनलाल गाधी उस मडलकी देख-भाल कर रहे थे और फिनिक्स आश्रमके तमाम नियमोका बारीकीसे पालन कराते थे। मैने देखा कि उन्होंने शातिनिकेतनमे अपने प्रेम, ज्ञान और उद्योग-शीलताके कारण अपनी सुगध फैला रखी थी (आ०, १९२७)

. . . .

जिसे मैंने अपने सर्वस्वका वारिस चुना था वह अब नही रहा। मेरे चाचाके पोते मगनलाल खुशालचद गाधी मेरे कामोमे मेरे साथ सन् १९०४ मे ही थे। मगनलालके पिताने अपने सभी पुत्रोको देशके काममे दे दिया है। वे इस महीनेके शुरूमे सेठ जमनालालजी तथा दूसरे मित्रोके साथ बगाल गए थे, वहासे बिहार आए। वहीपर अपने कर्तव्यके पालनमे ही उन्हे कठिन ज्वर हो आया। नौ दिनकी बीमारीके बाद प्रेम और डाक्टरी ज्ञानसे जितनी सेवा सभव है, सभी कुछ होने पर भी वे बृजकिशोरप्रसाद-जीकी गोदमे से चले गए।

कुछ धन कमा सकनेकी आशासे मगनलाल गाधी मेरे साथ सन् १९०३ मे दक्षिण अफ्रीका गए थे। मगर उन्हे दूकान करते पूरा साल भर भी न हुआ होगा कि स्वेच्छापूर्वक गरीबीकी मेरी अचानक पुकारको सुनकर वे फिनिक्स आश्रममे आ शामिल हुए और तबसे एक बार भी वे डिगे नही, मेरी आशाए पूरी करनेमे असमर्थ न हुए। यदि उन्होने स्वदेश-सेवामे अपनेको होम दिया तो अपनी योग्यताओ और अपने अध्यवसायके बलपर, जिनके बारेमे कोई सदेह हो ही नही सकता, वे आज व्यापारियोके सिरताज होते। छापाखानेमे डाल दिए जानेपर उन्होने तुरत ही मुद्रण-कलाके सभी भेदोको जान लिया। यद्यपि पहले उन्होने कभी कोई यत्र हाथमे नही लिया था तो भी इजिन-घरमे, कलोके बीच तथा कपोजीटरोके टेबल पर सभी जगह अत्यत कुशलता दिखलाई। 'इडियन ओपीनियन' के गुजराती अशका सपादन करना भी उनके लिए वैसा ही सहज काम था।

फिनिक्स आश्रममे खेतीका काम भी शामिल था और इसलिए वे कुशल किसान भी बन गए। मेरा खयाल है कि आश्रममे वे सर्वोत्तम बागवान थे। यह भी उल्लेखनीय है कि अहमदाबादसे 'यग इडिया' का जो पहला अक निकला उसमे भी उस सकटकालमे उनके हाथकी कारीगरी थी।

पहले उनका शरीर भीम जैसा था, किंतु जिस काममे उन्होने अपनेको उत्सर्ग किया, उसकी उन्नतिमे उस शरीरको गला दिया था। उन्होने बडी सावधानीसे मेरे आध्यात्मिक जीवनका अध्ययन किया था। जबकि मैंने विवाहित स्त्री-पुरुषोके लिए भी 'ब्रह्मचर्य ही जीवनका नियम है' का सिद्धात अपने सहकारियोके सामने पेश किया था तब उन्होने पहले-पहल उसका सौदर्य तथा उसके पालनकी आवश्यकता समझी और यद्यपि उसके लिए, जैसा कि मै जानता हू, उन्हे बडा कठोर प्रयत्न करना पडा था तो भी उन्होने इसे सफल कर दिखलाया। इसमे वे अपने साथ अपनी धर्मपत्नीको भी धीरतापूर्वक समझा-बुझाकर ले गए, उसपर अपने विचार जबरन डालकर नही।

जब सत्याग्रहका जन्म हुआ तब वे सबसे आगे थे। दक्षिण अफ्रीका-के युद्धका पूरा-पूरा मतलब समझानेवाला एक शब्द मै ढूढ रहा था। दूसरा कोई अच्छा शब्द न मिल सकनेसे मैने लाचार उसे निष्क्रिय प्रतिरोध-का नाम दिया था, गोकि ये शब्द बहुत ही नाकाफी और भ्रमोत्पादक भी है। क्या ही अच्छा होता अगर आज मेरे पास उनका वह अत्यत सुदर पत्र होता जिसमे उन्होने बतलाया था कि इस युद्धको 'सदाग्रह' क्यों कहना चाहिए। इसी सदाग्रहको बदलकर मैंने 'सत्याग्रह' शब्द बनाया। उनका पत्र पढनेपर इस युद्धके सभी सिद्धातोपर एक-एक करके विचार करते हुए अतमें पाठकको इसी नामपर आना ही पडता था। मुझे याद है कि वह पत्र अत्यत ही छोटा और केवल आवश्यक विषयपर ही था, जैसे कि उनके सभी पत्र होते थे।

युद्धके समय वे कामसे कभी थके नही, किसी कामसे देह नही चुराई

और अपनी वीरतासे वे अपने आसपासमे सभी किसीके दिल उत्साह और आशासे भर देते थे। जबकि सब कोई जेल गए, जब फिनिक्समें जेल जाना ही मानो इनाम जीतना था तब भी, मेरी आज्ञासे, जेलसे भारी काम उठानेके लिए वे पीछे ठहर गए। उन्होने स्त्रियोके दलमे अपनी पत्नीको भेजा।

हिदुस्तान लौटनेपर भी उन्हीकी बदौलत आश्रम, जिस सयम-नियम-की बुनियादपर बना है, खुल सका था। यहा उन्हे नया और अधिक मुश्किल काम करना पडा। मगर उन्होने अपनेको उसके लायक साबित किया। उनके लिए अस्पृश्यता बहुत कठिन परीक्षा थी। सिर्फ एक लहमे भरके लिए ऐसा जान पडा, मानो उनका दिल डोल गया हो। मगर यह तो एक सेकडकी बात थी। उन्होने देख लिया कि प्रेमकी सीमा नही बाधी जा सकती, और कुछ नही तो महज इसीलिए कि अछूतोंके लिए ऊची जातिवाले जिम्मेवार है, हमे उन्हीके जैसे रहना चाहिए।

आश्रमका औद्योगिक विभाग फिनिक्सके ही कारखानेके ढगका नही था। यहा हमे बुनना, कातना, धुनना और ओटना सीखना था। फिर मै मगनलालकी ओर झुका। गोकि कल्पना मेरी थी, किंतु उसे काममें लानेवाले हाथ तो उनके थे। उन्होने बुनना और कपासके खादी बनने तककी और दूसरी सभी क्रियाए सीखी। वे तो जन्मसे ही विश्वकर्मा, कुशल कारीगर थे।

जब आश्रममे गोशालाका काम शुरू हुआ तब वे इस काममे उत्साह-से लग गए, गोशाला-सबधी साहित्य पढा और आश्रमकी सभी गायोका नामकरण किया और सभी गोरुओसे मित्रता पैदा कर ली।

जब चर्मालय खुला तब भी वे वैसे ही दृढ थे। जरा दम लेनेकी फुर्सत मिलते ही वे चमडेकी कमाईके सिद्धात भी सीखनेवाले थे। राज-कोटके हाईस्कूलकी शिक्षाके अलावा और जो कुछ वे इतनी अच्छी तरह जानते थे, उन्होंने वह सब स्वानुभवकी कठिन पाठशालामे सीखा था।

उन्होने देहाती बढई, देहाती बुनकर, किसान, चरवाहो और ऐसे ही मामूली लोगोंसे सीखा था ।

वे चर्खा-सघके शिक्षण विभागके व्यवस्थापक थे। श्री वल्लभ-भाईने बाढके जमानेमे उन्हे विट्ठलपुरका नया गाव बनानेका भार दिया था।

वे आदर्श पिता थे। उन्होने अपने बच्चोको, दो लडकियो और एक लडकेको, जो अबतक अविवाहित है, ऐसी शिक्षा दी थी कि जिसमे वे देशके लिए उपहार बननेके लिए योग्य हो। उनका पुत्र केशव यत्र-विद्यामे बडी कुशलता दिखला रहा है। उसने भी अपने पिताके ही समान यह सब मामूली लुहार-बढइयोको काम करते देखकर सीखा है। उनकी सबसे बडी लडकी राधाने, जिसकी उम्र आज अठारह वर्ष है, अपने मत्थे बिहारमे स्त्रियोकी स्वाधीनताके सबधमे एक मुश्किल और नाजुक काम उठाया था। सच ही तो, वे यह पूरा-पूरा जानते थे कि राष्ट्रीय शिक्षा कैसी होनी चाहिए और वे शिक्षकोको प्राय इस विषयपर गभीर और विचारपूर्वक चर्चामे लगाया करते थे।

पाठक यह न समझे कि उन्हे राजनीतिका कुछ ज्ञान ही नही था। उन्हे ज्ञान जरूर था; किंतु उन्होने आत्मत्यागका रचनात्मक और शात पथ चुना था।

वे मेरे हाथ थे, मेरे पैर थे और थे मेरी आखे। दुनियाको क्या पता कि मै जो इतना बडा आदमी कहा जाता हू, वह बडप्पन मेरे शान्त, श्रद्धालु, योग्य और पवित्र स्त्री तथा पुरुष कार्यकर्त्ताओके अविरल परिश्रम, और सेवापर कितना निर्भर है, और उन सबमे मेरे लिए मगनलाल सबसे बडे सबसे अच्छे और सबसे अधिक पवित्र थे।

यह लेख लिखते हुए भी अपने प्यारे पतिके लिए विलाप करती हुई उनकी विधवाकी सिसक मै सुन रहा हू। मगर वह क्या समझेगी कि उससे अधिक विधवा, अनाथ मै ही हो गया हू। अगर ईश्वरमे मेरा जीवत विश्वास न होता तो उसकी मृत्युपर, जो कि मुझे अपने सगे पुत्रोसे

भी अधिक प्रिय था, जिसने मुझे कभी धोखा न दिया, मेरी आशाएं न तोडी, जो अध्यवसायकी मूर्ति था, जो आश्रमके भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक सभी अंगोका सच्चा चौकीदार था, मै विक्षिप्त हो जाता। उसका जीवन मेरे लिए उत्साहदायक है, नैतिक नियमकी अमोघता और उच्चताका प्रत्यक्ष प्रदर्शन है। उन्होंने अपने ही जीवनमे मुझे एक-दो दिनोमे नही, कुछ महीनोमे नही, बल्कि पूरे चौबीस वर्षों तक की बडी अवधिमे—हाय, जो अब घडी भरका समय जान पडता है—यह साबित कर दिखलाया कि देश-सेवा, मनुष्य-सेवा और आत्म-ज्ञान या ब्रह्मज्ञान आदि सभी शब्द एक ही अर्थके द्योतक है।

मगनलाल न रहे, मगर अपने सभी कामोमे वे जीवित है, जिनकी छाप आश्रमकी धूलमेसे दौडकर निकल जानेवाले भी देख सकते है।

(हि० न० जी०, २६.४.२८)

. ...

गांधीजीका मौनवार था। अकल्पित सयोगोमें किसीको सेवा करनेका पसग उपस्थित हो और बोले बिना न चले तभी बोलनेका प्रसंग शायद ही कभी आता हो। गांधीजी तुरत ही मगनलालभाईके घर जाकर बालकोको गोद ले बैठे। सारा आश्रम खबर पाते ही विह्वल हो उठा। किंतु आज्ञा हुई कि सबके एकत्र होनेकी कोई जरूरत नहीं है। जो काम चलते हैं उन्हें बंद करनेकी कोई जरूरत नहीं है। वृढ़व्रती, कर्मवीरके अवसानका शोक तो काम करके ही मनाना चाहिए न! वणाटशाला, शाला आदि बंद करनेका मन बहुतोंका हुआ, मगर हिम्मत किसे हो!

मगनलालभाईकी धर्मपत्नी श्री संतोकबहनने जैसे-तैसे किसी तरह अपना शोक दबाया। बापू घरमें बैठे हो तो शोकका प्रदर्शन कैसे किया जाय। और बापू बराबर यही कहते रहे, "मगनलाल होते तो ऐसे प्रसंगमें क्या करते।" मगनलालभाईके पुत्रने तो मुझ-जैसे बड़ोंसे भी अधिक साहस दिखलाया। सायंकालमें हमेशाके मुताबिक प्रार्थनाके

समय सभी कोई इकट्ठे हुए। पंडितजीने धीरे गंभीर स्वरमें गाया :

"अब हम अमर भये न मरेंगे।"

उज्ज्वल यशसे यशस्वी मगनलालभाईके बारेमें यह भजन अतिशय उचित था; किंतु उनके बिना हम जो अपंग लगते थे, हमें कौन आश्वासन दे। कुलका दीपक-रूप बड़ा लड़का जब मर जाता है तब दूसरे लड़कोंको गोदमें बिठाकर अपनी छाती वज्रकी बनाकर, जिस भांति पिता उन्हें आश्वासन देता है उसी तरह गांधीजीने प्रार्थनाके बाद आश्वासन दिया। चौबीस वर्षका संबंध क्रूर कालने तोड़ दिया। जैसी चोट पहले कभी न लगी थी, वैसी लगी। मगर तो भी छाती कठिन करके, मानो वियोग-वेदना हलकी करनेके लिए ही गांधीजीने कितने-एक उद्गार निकाले। ये उद्गार ऐसे नहीं है जो यहां दिये जा सकें। उनमें ऐसे-ऐसे वाक्य थे

"आश्रमके प्राण मगनलाल थे, मै नही।" "इनके तेजसे मै प्रकाशित हुआ।" "तुम्हारे आदर्श मगनलाल थे। मेरे आदर्श भी वही थे। उनके जैसा सरदार अगर मुझे मिला होता तो उन्होने जितनी मेरी सेवा की थी, उतनी मै अपने सरदारकी नही कर सकता। उनका जीवन सपूर्ण था। आश्रमके वे प्राण थे। मै तो केवल घूमता फिरा और आश्रमके प्रति बेवफा रहा। और उन्होने आश्रमकी सेवामे अपना शरीर गला दिया था।" "मै मीराबाईके समान जहरका प्याला पी सकता हूं, मेरे गलेमे कोई सापोकी माला डाल दे तो उसे सहन कर सकता हू, किंतु यह वियोग उन दोनोसे भी अधिक कठिन है। तोभी छाती कठिन करके, उनका गुण-कीर्तन करते हुए मैने अपने हृदयमे उनकी मूर्त्ति स्थापित की है।"

(हि० न० जी०, ३.५ २८)

. . . .

निकटसे और दूर-दूरसे मित्रोंने अपने मीठे संदेशोसे मेरे लिए मेरी सबसे कडी परीक्षाके अवसरपर मुझे अत्यत अनुगृहीत किया है। मेरी यह मूर्खता थी, मगर मैने कभी यह सोचा ही नही था कि मगनलाल मुझसे

पहले मरेंगे । व्यक्तियो, संस्थाओं और कांग्रेस-सभाओंके तारो और पत्रोंसे मुझे बहुत आश्वासन मिला है । मैं उन्हे विश्वास दिलाता हू कि उन्होने मुझपर जिस प्रेमकी वर्षा की है उसके तथा मगनलालने मेरे साथ जिन आदर्शोंको माना और जिनके लिए शातिपूर्वक अपने आपको उत्सर्ग कर दिया, मै उनके योग्य बननेकी कोशिश करूगा । (हि० न० जी०, ३ ५ २८)

तुम शायद नही जानते होगे कि रूखीबहन बिलकुल बच्ची थी, तबसे सतोकके जीतेजी भी मगनलालके हाथो पली थी । इसके जीनेकी शायद ही आशा थी । मुश्किलसे सास ले सकती थी । इस लडकीको मगनलाल नहलाते, बाल सवारते और पास बैठकर खिलाते थे और अपने दूसरे बच्चोकी भी देखभाल करते थे । फिर भी नौकरीमे सबसे ज्यादा काम करते थे । सुदर-से-सुदर बाडी उन्हीने बनाई थी । फिनिक्समे पहला गुलाबका फूल उन्हीने उगाया था । फिनिक्सकी कितनी ही सख्त जमीनमे जब उनकी कुदालीकी चोट पड़ती थी तब धरती कापती मालूम होती थी । जो मगनलाल कर सके वह सब तुम कर सकते हो । इसमे मैने कही भी मगनलालकी बडी कला-शक्ति या उनके पढे-लिखेपनकी बात नही कही है । मगनलालमे आत्म-विश्वास था । अपने कामके बारेमे श्रद्धा थी और भगवानने उन्हे बलवान शरीर दिया था । यह शरीर अतमे आश्रमके बोझसे और उनकी तपश्चर्यासे कमजोर हो गया था । लेकिन मै यह मानता हू कि मगनलालने अपने छोटे-से जीवनमे सौ वर्षके बराबर या सैकडो बरस जितना काम किया । मगनलालकी मिसाल तुम्हारे सामने इसलिए रखी है कि तुम मगनलालको जानते थे और उनके प्रेम-भावके कारण तुम्हारा आश्रमसे सबध हुआ था । मगनलालको याद करके भी भूल जाओ कि तुम अपग हो या अधेरेमे हो । मै मानता हूं कि जो सुविधाए तुम्हे सहज ही मिली हुई है, वे इस देशमे लाखोमे एकको भी प्राप्त न होगी ।" (म० डा०, भाग १, ८ ७ ३२)

• • • • •

मगनलालके विषयमे क्या कहू ? उन्होने आश्रमके लिए जन्म लिया था। सोना जैसे अग्निमे तपता है वैसे मगनलाल सेवाग्निमे तपे और कसौटीपर सौ फीसदी खरे उतरकर दुनियासे कूच कर गए। आश्रममे जो कोई भी है वह मगनलालकी सेवाकी गवाही देता है। (य० म०, ३०.५ ३२)

•

मेरी रायमे स्वर्गीय मगनलाल गाधी इस तरहके एक आदर्श खादी-सेवक थे। उनसे जितनी आशाए मैंने रक्खी थी, उससे कही ज्यादा उन्होंने करके दिखाया। कडी-से-कडी कठिनाइयोका सामना करके भी वह अपने कामकी चीज, जहा-कही भी वह मिल जाती थी, सीख लिया करते थे। कठिनाइयोसे वह न कभी घबराते थे, न थकते थे। अतिम समयतक वह अपने खादी-सबधी ज्ञानको बढाने हीमे लगे रहे। मै चाहता हू कि आप मगनलाल गाधीके इस आदर्शका अपने जीवनमे अनुकरण करें। (ह० से०, १५ ५ ४२)

• • • • • • •

ऐसा ही यह भजन है—**'अजहु न निकसे प्राण कठोर'**। वह कहता है कि अबतक ईश्वरके दर्शन न हुए तो अबतक प्राण क्यो न निकले ? हमेशा तो इस भजनको गणेश शास्त्री गाते थे, लेकिन बाज दफा जब वह हाजिर न होता या बीमार पड जाता तो मगनलाल उसको गाता था। वह संगीत-शास्त्री तो नही था, लेकिन उसका कठ अच्छा था। उसका वह भजन अब भी मेरे कानोमें गूजता है। वह तो आश्रमका स्तभ था। आश्रमको चलानेमे वह पहाड-सा था, बहुत मजबूत। कुदाली अपने आप चलाता था तो सबसे आगे चला जाता था। दक्षिण अफ्रीकामे तो उसका शरीर बहुत मजबूत था। यहा उसको कोई बीमारी तो नही थी, लेकिन शरीर क्षीण हो गया था; क्योकि, उसपर सारा बोझ तो वहापर भी था; लेकिन यहा तो एक अनोखी चीज यह है कि करोड़ो आदमियोंमें

काम करना पडता था। रचनात्मक कामका भी बोझ उसपर पडता था। रचनात्मक कामके बिना हम रह भी कैसे सकते है। उसके बगैर स्वराज चीज हो भी क्या सकती है ? आज स्वराज तो मिला, लेकिन उसकी कितनी कीमत है ? मिला तो भी क्या, आज हम सिद्ध करते है कि अगर हम रचनात्मक काम उस वक्त कर लेते तो हमे यह वक्त नही देखना पडता, जो हम आज प्रत्यक्षमे देख रहे है। स्वराज्यकी जो कल्पना हमने की थी और वह कल्पना बढ भी गई थी, क्या वह यही है ? अगर उस वक्त हम इतना कर लेते तो आज हिंदुस्तानका इतिहास अनोखा होनेवाला था, इसमे मुझे कोई शक नही। मगनलालका जो भगवान था वह तो स्वराज्यमे ही था। उसका स्वराज्य तो राम-राज्य था।

(प्रा० प्र०, १९.१०.४७)

: ५३ :

हरिलाल गांधी

हरिलालके जीवनमे बहुतेरी ऐसी बाते है जिन्हे मै नापसद करता हू। वह उन्हे जानता है, पर उसके इन दोषोके रहते हुए भी मै उसे प्यार करता हू। पिताका हृदय है। ज्योही वह उसमे प्रवेश पाना चाहेगा, उसे स्थान मिल जायगा। फिलहाल तो उसने अपने लिए उसका द्वार बद रक्खा है। अभी उसे और जगल-झाडीमे भटकना है। मानवी पिताके सरक्षणकी भी एक निश्चित मर्यादा होती है; पर दैवी पिताका द्वार उसके लिए सदा खुला हुआ है। वह उसे खोजेगा तो जरूर स्थान पावेगा। (हि० न० जी०, १८.६.२५)

हरिलालकी लाल प्याली रोज भरी रहती है। पीकर इधर-उधर भटकता है और भीख मागता है। बली और मनुको धमकाता है। इसमे भी नीयत रुपया ऐंठनेकी दीखती है। मुझे भी बडी उद्धत धमकियोंके पत्र लिखे है। मनुपर अधिकार करनेके लिए बलीपर नालिश करनेकी धमकी दी है। मुझे दुख नही होता, दया आती है। हसी भी आती है। ऐसे और बहुत लोग है, उनका क्या होगा ? उनके लिए भी मुझे उतना ही खयाल होना चाहिए न ? वे सब भी स्वभाव नियत कर्म करते है। क्या करे ? हमारा बरताव सीधा होगा तो वह अतमे ठिकाने आ जायगा। हरिलाल जैसा है वैसा बननेमे मै अपना हाथ कम नही मानता। उसका बीज बोया तब मै मूढ दशामे था। जब उसका पालन हुआ, वह समय शृगारका कहा जा सकता है। मै शराबका नशा नही करता था। यह कमी हरिलालने पूरी कर दी। मै एक ही स्त्रीके साथ खेल खेलता था तो हरिलाल अनेकके साथ खेलता है। फर्क सिर्फ मात्राका है, प्रकारका नही। इसलिए मुझे प्रायश्चित्त करना चाहिए। प्रायश्चित्तका अर्थ है आत्मशुद्धि। वह बीरबहूटीकी गतिसे हो रही है। (म० डा०, भाग १, २३ ६ ३२)

...   .   .

मै जब बिलकुल साहब था, हरिलाल उस समयका है। उसे क्या पता था कि साहब होते हुए भी मेरा दिल साहबीमे जरा भी नही था ? उसने मेरा बाह्यरूप देखा और वैसी ही मौज-शौक करनेकी उसमे इच्छा हो गई। उसने मुझसे कहा—मुझे बैरिस्टर बना दीजिए। फिर देखिए, मै क्या-क्या करता हू। इतना त्याग करता हू या नही ? (म० डा०, भाग २, ११ १०.३२)

तूने हरिलालके बारेमें पूछा है। वह पाडेचेरी गया था। वहा भी पैसोंकी भीख मागकर खूब शराब पीता था। कुछ पैसे मिले भी। आज-कल कहां है, पता नही। उसका योंही चलेगा। ईश्वर जब उसे सुबुद्धि

दे तब सही। इसमे हमारे पाप-पुन्य भी तो काम करते ही है न ? हरिलालके गर्भके समय मै कितना मूढ था ? जैसा मैने और तूने किया होगा, वैसा ही हमे भरना होगा। इस तरह बच्चोंके आचरणके लिए मा-बाप जिम्मेदार है ही। अब तो हम यही कर सकते है कि हम शुद्ध बने। सो वैसी कोशिश हम दोनो कर रहे है और उससे हम सतोष माने। हमारी शुद्धिका प्रभाव जाने-अनजाने भी हरिलालपर पडता ही होगा। ('हमारी बा,' १३ २ ३४)

: ५४ :

डा० गिल्डर

महान् पारसी कौमने शराबबदीके बुरी तरह विरुद्ध होते हुए भी जो सयम रक्खा उसके लिए वह धन्यवादकी पात्र है। स्पष्ट ही उन्होने बुद्धिमानीसे काम लिया और उनके द्वारा कोई विरोधी प्रदर्शन हुआ मालूम नही पडता। मेरी यह आशा ठीक ही सिद्ध हुई मालूम पडती है कि पारसी कौमकी उदारताने उसके विरोध-भावको दबा दिया। शराबबदीकी पूरी सफलताके लिए पारसियोके दिली सहयोगकी आशा करना क्या कोई बहुत बडी बात है ? उन्हे यह याद रखना चाहिए कि बम्बईके इस प्रयत्नका असर न केवल सारे प्रातपर, बल्कि समस्त भारतवर्षपर पड़ेगा। मै तो यह कहनेका भी साहस करता हू कि अभी तो यद्यपि उन्हे ऐसा लगता है कि उनके साथ बेजा व्यवहार हुआ है, लेकिन पारसियोकी भावी सतति डॉ० गिल्डरको अपना सच्चा प्रतिनिधि और हितैषी मानकर उन्हे दुआए देगी। जैसे भारतको इस बातका गर्व है, उसी तरह पारसियोको भी सचमुच इस बातका फख्र होना चाहिए कि उन्होने डॉ० गिल्डर-जैसा

आदमी पैदा किया जो कि महाभयकर विरोध, यहातक कि बहिष्कार आदिकी बुरी-से-बुरी धमकियोके बावजूद चट्टानकी तरह दृढ रहा। (ह० से०, १२ ८ ३९)

आज अखबारमें बापू और वर्किंग कमेटीके साथवालोंको छोड़कर बाकी कैदियोंको महीनेमें एक मुलाकात मिलनेकी खबर थी। डा० गिल्डर-के लिए अवश्य ही एक समस्या खड़ी हो गई। मुलाकातकी इजाजतसे लाभ उठाना हो तो उनको वापस यरवदा जानेके लिए सरकारके साथ झगड़ा करना चाहिए। क्या ऐसा करना उचित है? यरवदा जाकर एक तो जेलकी जेल, दूसरे खर्च और तीसरे बापूका साथ छोड़ना। वैसे भी यहांका वातावरण उन्हें अनुकूल है। यह सब छोड़ना या मुलाकात छोड़ना? मैंने कहा, "खर्चकी उन्हें क्या परवाह है?" बापू कहने लगे

"ऐसा नही, कौन जाने कबतक यहा रहनां है। वे प्रतिष्ठावाले आदमी है। अब काग्रेसको कभी छोडेगे नही। यह भी जानते है कि मै लोगोको भिखारी बनानेवाला हू। सो जो धन है उसे सभालकर रखेगे ताकि वह उनकी लडकीको मिल सके।" (का० क०, २ ६ ४३)

: ५५ :

सतीशचन्द्र दास गुप्ता

बंगालमे शुद्ध त्यागके दृष्टात देखकर मै तो आनद रसके घूट पीने लगा। एक जमीदारका सारा कुटुब खादीमय है। तमाम स्त्रिया कातती हैं। समस्त स्त्री-पुरुष खादी पहनते है। उन्होने अपनी जमीन और अपना घर खादी प्रतिष्ठानको उपयोगके लिए दे दिया है। प्रति-ष्ठानके प्राण सतीशबाबूका त्याग ऐसा-वैसा नही। डा० रायके रसायनके

कारखानेमे हर माह १५००) की उनकी आमदनी थी। वहा रहनेके लिए बगला भी था। अधिक मागनेसे और भी मिल सकता था। वहा रहकर भी वे खादीका काम तो करते ही थे, परतु इससे उन्हे सतोष न हुआ। उनके कोमल हृदयने अनुभव किया कि इस तरह दो काम करनेसे दोनोके बिगड़ जानेकी सभावना है। रसायनके कारखानेके तो वे प्राण ही थे। यदि उसके लिए पूरा समय न दे तो जरूर धक्का पहुचे, और इधर खादीके द्वारा गरीबोकी सेवा होती है। फुरसतके समयमे इस कामको करना भी उन्हे अच्छा न मालूम हुआ। एक पुरुषका दो पत्नी रखना जिस तरह पाप है उसी तरह एक पुरुषका दो कामोंको अपना प्राण बनाना भी अनर्थ-कर है। फिर खादीके लिए जितना त्याग किया, उतना कम ही है। ऐसी दलीलें अपने मनके साथ करके खुद जिस कारखानेको जमाया था उसीको उन्होने एक क्षणमे छोड दिया और अपने पास जो कुछ थोडा द्रव्य रहा है उसीकी आमदनीसे अपना घर-खर्च चलाते है और चौबीसो घटे खादी-कार्यमे ही लगाते है। अपने कामकी अबतक वे ११ जगह शाखाए खोल चुके है। इनमे पॉच है खादी पैदा करनेवाली, अभी और भी खोलनेका इरादा कर रहे है। उनके द्वारा ५,०६० चरखे चल रहे है। शुद्ध खादीके करघे ५६७ चलते है।

उनके इस कार्यमे उनकी धर्मपत्नी भी उनका साथ देती है। जहा रुपयेकी कमी न थी तहा आज तगीसे काम चलाना पडता है, यह उस बाई-को खलता तो होगा, जहा रहनेके लिए अलहदा बगला था तहा आज एक छोटे-से मकानकी एक छोटी-सी मंजिलपर सतोष मानना कठिन तो पडता होगा, किंतु ये बाई इन तमाम तकलीफोको प्रफुल्ल वदन हो कर सह रही है। (हि० न० जी०, २८ ५ २५)

. . . .

वह (सतीश बाबू) तो कुदन जैसा है। और कुदनके क्या कभी जेवर बने है ? सोनेके गहने बनते है, क्योकि सोनेमे थोडी कुधातु मिली हुई

होती है। इस तरह काम देनेके लिए थोडी कुधातुकी जरूरत पडती है, मगर सुधातु होना तो अपने आप ही शोभा देता है। (म० डा०, भाग२ २.१२ ३२)

... ...

खादी प्रतिष्ठानके श्रीसतीशचन्द्र दास गुप्ता भारत-रक्षा कानूनकी २६ (१) धाराके अनुसार जारी किए गए हुक्मको न माननेके लिए गिरफ्तार किए गए हैं और उन्हें दो सालकी सजा दी गई है। उनका अपराध यह था कि उन्होने सकटग्रस्त लोगोको तबतक अपने घर वगैरह न छोडनेकी सलाह दी, जबतक कि खाली किए गए घरो आदिके बदलेमे वैसा ही दूसरा प्रबंध सरकारकी ओरसे न कर दिया जाय। इस सबधमे 'हरिजन' मे मैंने जो लेख लिखे हैं और हाल ही काग्रेसकी कार्य-समितिने जो प्रस्ताव पास किया है, श्रीसतीशबाबूका यह कार्य ठीक उसीके अनुरूप था।

इसमे कोई शक नही कि श्रीसतीशबाबूने जान-बूझकर हुक्मका अनादर किया था। जिला मजिस्ट्रेटके नाम लिखे गए पत्र से स्पष्ट ही यह मालूम होगा कि उन्होने यह अनादर मानवताके खातिर, उसके तकाजेसे, किया। उस प्रदेशमे श्रीसतीशबाबू और उनके आदमी बरसोसे काम कर रहे है और उन्होने उधरके कतवैयों व जुलाहोंमे हजारों रुपये बतौर मजूरीके बाटे है। सतीश-बाबूके पत्रसे साफ ही यह मालूम होता है कि जनताकी शिकायत बिलकुल सच्ची है। जिस महान् युद्धके लिए यह दावा किया जाता है कि वह मानव-मन और मानव-शरीरकी मुक्तिके लिए लडा जा रहा है, वह उन लोगोंका दमन करके कभी जीता नही जा सकता, जिनका स्वेच्छापूर्ण सहयोग चाहा जाता है और चाहने योग्य है। इसमें कोई शक नही कि हिन्दुस्तान-की आम जनता अज्ञानमे डूबी हुई है। वह स्वभावसे गरीब है और इति-हासकारोने उसे दुनियामे अधिक-से-अधिक भली और नम्र माना है। उनका पथ-प्रदर्शन आसानीसे किया जा सकता है। वह अपने नेताओके

बताए रास्तेपर चलती है। इसलिए उससे काम लेनेकी उचित रीति यह है कि उसके नेताओसे काम लिया जाय, उनसे बातचीत की जाय।

नेता दो तरहके होते हैं. एक वे, जो अपनेको नेता मानकर अपने नेतृत्व द्वारा जनताका शोषण करते है, उसकी आडमे अपना मतलब गाठते है, और दूसरे वे, जो अपनी सेवाके बल जनताके नेता बनते है। वे विश्वासपात्र होते है और जनता उन्हे मानती है। इन दोनो प्रकारोको पहचानना बहुत आसान है। इन दूसरे प्रकारके नेताओको जनतासे अलग करना अनुचित है।

श्रीसतीशबाबू दूसरे प्रकारकी श्रेणीमे आते है। गोकि वे राजनीति जानते है, पर राजनैतिक पुरुष नही है। वे व्यवसायी है और उन सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक और आजीवन लोकसेवाव्रती आचार्य पी० सी० रायके प्रिय शिष्योमे से है, जिन्होने अपने लिए कभी एक पाई भी नही कमाई। सुप्रसिद्ध बगाल केमीकल वर्क्स, आचार्य रायकी अनेकानेक कृतियोमे एक कृति है और श्रीसतीशबाबू उसके निर्माताओमे है। वे इस केमीकल वर्क्सके मैनेजर थे और वहा ऊचा वेतन पाते थे। उन्होने वह काम छोड दिया और खादीके कामको अपनाकर गरीबोकी तरह रहने लगे। उनकी धर्मपत्नीने उनका पूरा-पूरा साथ दिया और उनकी कठोर साधनामें वे उनके सुख-दु खकी साथिन बनी। उनके भाई और होनहार लडकोने भी यही किया। उनमेसे एकका सेवा करते-करते ही देहात हो गया। श्रीसतीशबाबूके भाई श्री क्षितीशचद्र दास गुप्ता भी एक केमिस्ट (रसायन-शास्त्री) हैं और उन्होने अपने आपको खादी प्रतिष्ठानकी सेवामे खपा दिया है। वे अपना सारा समय और सारी शक्ति मधुमक्खी पालने, हाथका कागज बनाने और इसी तरहके दूसरे गृह-उद्योगोमे लगा रहे है। श्रीसतीशबाबूने अपने लडकोको उस उच्च शिक्षासे वचित रक्खा, जो स्वय उन्होने प्राप्त की थी। अपने नए कार्यमे वे इतने उत्साह और शक्तिके साथ जुट गए कि खादी कार्यके विशेषज्ञ बन गए। उन्होने खादी-

प्रतिष्ठानको जन्म दिया, जो कि उधर लोकसेवाकी प्रवृत्तियोका एक महान् केन्द्र बन गया है। श्रीसतीशबाबू उन सच्चे-से-सच्चे और नम्र-से-नम्र लोगोमे हैं, जिनके साथ मुझे काम करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे अपनी सारी शक्तिके साथ सत्य और अहिंसाके आदर्शके अनुसार जीवन बितानेका यत्न करते रहते हैं। इन दोनोको उन्होने राजनैतिक उपयोगिताकी दृष्टिसे नही, बल्कि जीवनके एक ध्येयकी दृष्टिसे अपनाया है। अगर इस देशका शासन इसके विजेताओकी तरफसे जनताका शोषण करनेवाले कानूनो द्वारा न होकर देशके लोकप्रिय प्रतिनिधियो द्वारा होता तो जरूरतके वक्त श्रीसतीशबाबू-जैसे व्यक्तियोकी सरकारी अधिकारियोको बड़ी आवश्यकता रहती, और यह समय तो बहुत ही बडी जरूरतका समय है। लेकिन हमारे शासक उनका जो अधिक-से-अधिक उपयोग कर सकते हैं, सो यही है कि उन्हे उनके उन कानूनोका अनादर करनेके लिए सजा दे, जो समूचे राष्ट्रकी इच्छाको नही, बल्कि एक ऐसे आदमीकी इच्छाको व्यक्त करते है, जिसकी हुकूमत मुल्कपर जबरदस्ती लादी गई है। श्रीसतीशबाबूने वह जोत जलाई है, जो कभी बुझेगी नही। कानून झूठा है, जनताके सेवक सतीशबाबू सच्चे है। (ह० से० २८ ४२)

: ५६ :

गोपालकृष्ण गोखले

उनका जन्म सन् १८६६ मे कोल्हापुरमे एक गरीब मराठा ब्राह्मण-कुटुबमें हुआ था। वहीके कालेजमे पढकर उन्होने एफ० ए० परीक्षा पास की। इसके बाद वे बबईके एलफिन्स्टन कालेजमें भरती हुए और

वहा से सन् १८८४ मे उन्होने बी० ए० परीक्षा पास की।

बी०ए० होने के बाद उन्हे किसी काम-धधेसे लगनेका विचार करना पड़ा और उन्होने शिक्षकका धधा ही पसद किया। उस समय 'डेकन एजुकेशन सोसाइटी' अच्छा काम कर रही थी। श्रीगोखले इस सस्थामे सम्मिलित हो गये। इस सस्थाने अपनी देख-रेखमे पूनामे चलनेवाले फर्ग्यूसन कालेजमे सत्तर रुपये मासिक पर उन्हे अर्थ-शास्त्र और इतिहासका अध्यापक नियुक्त किया। श्रीगोखलेने यहा बीस वर्षोंतक पढानेकी शपथ ली। इस प्रतिज्ञाका उन्होने पालन किया। इस प्रकारके सेवा-वृत्तिपरायण लोग जब शिक्षाके लिए अपना जीवन अर्पण करते है तभी शिक्षा फलदायी निकलती है और बालकोके सस्कार तभी गढे जाते है। श्रीगोखलेने फर्ग्यूसन कालेजमे बीस वर्ष विताए। उस बीच यद्यपि सभाओ और समाचारपत्रो द्वारा उनके दर्शन अधिक नही हुए, तथापि बहुतसे युवकोको अपने मनका विकास करने और अपने आचरणको दृढ करनेके लिए आगेका पोषण उन्ही वर्षोंमे उन्हीसे प्राप्त हुआ।

श्रीगोखले जब फर्ग्यूसन कालेजमे थे तब शिक्षाके कामके सिवा अन्य कार्यमे भी ध्यान दे रहे थे। जिस समय वे कालेजमे दाखिल हुए, उस समय स्वर्गीय श्रीमहादेव गोविन्द रानडेके सपर्कमे आए थे और विशेषकर उन्हीकी देख-रेखमे उनका चारित्र्य गढा गया था। न्यायमूर्ति रानडेके प्रवीण हाथके नीचे बारह वर्षों या इससे भी अधिक समय तक श्रीगोखलेने अर्थ-शास्त्रका अध्ययन किया था। परिणाम-स्वरूप श्रीगोखले उन थोड़े-से लोगोमे से है, जिनके शब्द हिन्दुस्तानमे आर्थिक प्रश्नोपर आधारभूत माने जाते है। श्रीगोखलेका स्वर्गीय श्रीरानडेके प्रति बहुत ही पूज्य भाव है और वे उन्हे गुरुके रूपमे मानते है। १८८७ मे श्रीरानडेकी इच्छासे पूना सार्वजनिक सभाकी ओरसे प्रकाशित होनेवाले 'क्वार्टर्ली जरनल' का सचालकत्व उन्होने स्वीकार कर लिया। इसके बाद शीघ्रही वे डेकन

सभाके अवैतनिक मत्री नियुक्त किये गए। पूनाके अग्रेजी-मराठी साप्ताहिक 'सुधारक' के भी वे संचालक थे। बबईकी प्रातीय कान्फ्रेन्सके वे चार साल तक मत्री थे। १८९५ मे पूनामे हुई कांग्रेसके भी वे मत्री नियुक्त किये गए थे। सार्वजनिक कार्योमे उनकी रुचि और उत्कठाने इतनी अधिक ख्याति प्राप्त की कि उन्हे 'दक्षिणके उदीयमान् तारे' की उपमा दी जाती। उनकी प्रसिद्धि इतनी फैली कि भारतके खर्चके सबधमे विचार करनेके लिए विलायतमें नियुक्त किये गए वेल्बी-कमीशनके सामने गवाही देनेके लिये बबईकी जनताने श्री वाच्छाके साथ उन्हे भी चुना था। वहा उन्होने कीमती बयान दिया था।

जिस समय वे इगलैडमे थे, उस समय उन्होने हिंदुस्तानके मामलेके बारेमे कई भाषण दिए थे। प्लेगके सबधमे बबई सरकार जिस ढगसे काम कर रही थी और कामपर रोके गए सैनिकोने जो थर्रा देनेवाले काम किए थे, उनकी कडी टीका छपवाकर उन्होने वहा निकाली थी। इसके कुछ समय बाद वे बबईकी धारासभाके सदस्य चुने गए। १९०२ में २५) की पेन्शन लेकर वे फर्ग्यूसन कालेजसे पृथक् हुए। उसी समय बबईके प्रतिनिधि सर फीरोजशा मेहताकी बीमारीके कारण केन्द्रीय धारासभामे उनकी जगह श्रीगोखले चुने गए। यह काम उन्होने इतनी सुदरतासे किया कि उस समयसे लेकर अबतक उस जगहके लिए वे बार-बार चुने जाते रहे हैं।

बड़ी धारासभामे चुने जानेके बादसे उनकी कार्य-कुशलताका नया प्रकरण आरभ हुआ। स्वदेश-सेवामें उनकी भारी-से-भारी जीतके इतिहास-रूपमे वह बना हुआ है। बजटके समयका उनका पहला ही भाषण प्रेरणाप्रद माना जाता है। उस समयसे बजटके अवसरपर उनके भाषणोके बारेमे सब लोगोको बडी आतुरता रहती है। साल-दरसाल वे बताते रहे है कि साल-भरके हिसाबमें जो रकम शेष बताई जाती है, वह कितनी गलत होती है और उससे जनसख्या कितनी अप्रामाणिक हो जाती है।

साल-दरसाल वे यह माग करते रहे है कि सरकारी विभागोमें अधिक परिमाणमे भारतीयोको नौकरी दी जाय। साल-दरसाल फौजी खर्च घटानेकी वे हिमायत करते रहे है। साल-दरसाल नमक-कर रद करने और कृषि तथा उद्योग-धधोकी शिक्षाके प्रसारकी वे माग करते रहे है और नि शुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा जारी करने एव इसी प्रकारके अन्य सुधार करनेका वे साल-दरसाल आग्रह करते रहे है। नमक-करमे जो कमी हुई है, वह अधिकाशत उनकी हिमायतसे ही हुई है।

हिंदुस्तानके अनेक उच्च-से-उच्च पदाधिकारियोकी उनसे मित्रता है और मिजाज के तेज वाइसराय लार्ड कर्जन भी उन्हे अपने बराबरीके प्रतिस्पर्द्धीके रूपमे मानते थे। उन्होने कहा था कि श्रीगोखलेके साथ पटाना एक आनददायक बात है। उन्हे यह भी कहते सुना गया है कि उनके सपर्कमे आये मनुष्योमे श्रीगोखले सबसे बलवान है। यद्यपि श्रीगोखले कौन्सिलमे लार्ड कर्जनके ऐसे विरोधी थे जो कभी उन्हे ढील न देते थे, तथापि उनकी योग्यता और सुदर व्यवहारके प्रति सम्मानके प्रतीक-स्वरूप उन्हे सी० आई० ई० का खिताब दिया था और खिताब दिए जानेके अवसरपर उन्हे बधाईका एक व्यक्तिगत पत्र भी लिखा था।

श्रीगोखले काग्रेसकी गति-विधिमे शुरूसे ही शामिल थे। काग्रेस-की बहुत-सी सभाओमे वे उपस्थित रहे है और उन्होंने भाषण दिए है। उनका सबसे अधिक उल्लेखनीय भाषण बबईकी काग्रेसके अदर हिंदुस्तानके कोषकी सिलकके बारेमे दिया गया भाषण था। सर हेनरी काटनके कथनानुसार वह भाषण आम सभा (हाउस आव कामन्स) मे सुने गए सुदर-से-सुदर भाषणकी बराबरी करनेवाला था।

हिंदुस्तानकी राजनैतिक स्थितिसे विलायतकी जनताको अवगत करनेके लिए बबईकी जनताने एक प्रतिनिधिके रूपमे उन्हे १६०५ मे वहा भेजा था। वह काम उन्होने बहुत सतोषजनक रूपमे पूरा किया

था। पचास दिनोमे कुछ नही तो पैतालीस भाषण दिए। हिदुस्तानके ब्रिटिश राज्यके विषयमे लोकमत प्रकट करनेकी उनकी खूबीसे बहुतसे चालाक अग्रेज भी आश्चर्यचकित रह गए थे। वे इगलैडमे रवाना हुए, उसके पहले ही बनारसकी पुण्य-भूमिमे होनेवाली काग्रेसके अध्यक्ष चुने जा चुके थे। बनारसमे काग्रेसमे अध्यक्षपदसे दिया गया उनका भाषण अत्यन्त स्पष्ट और प्रवीणताका नमूना था। बनारस काग्रेसके बाद शीघ्र ही वे फिर विलायत गए और इस बार लार्ड मार्लेके साथ उनकी बहुत बार मुलाकाते हुईं। लार्ड मिन्टोकी नए सुधारोकी योजनाके सबधमे १९०९ मे वे फिर विलायत गए थे।

श्रीगोखलेने बार-बार जोर देकर कहा है कि इस बातकी अत्यंत आवश्यकता है कि राजनैतिक कामके लिए शरीर अर्पण कर देनेवाले थोडे-बहुत लोग हर प्रातमेसे निकल पडे। सच तो यह है कि ऐसे राज-नैतिक सन्यासियोका मार्ग रचनेकी उनकी दीर्घकालीन अभिलाषा थी, जिनका ध्येय ही स्वदेश-सेवा हो। यह अभिलाषा हालमे ही प्रकट हुई है। 'भारत-सेवक-समिति' से हिंदुस्तानकी जनता वाकिफ हो गई है। इस समिति हेतु बहुत अच्छे है और हम सबकी कामना है कि भविष्यमे इस देशकी बडी-से-बडी सेवा करनेमे वह अधिक-से-अधिक शक्तिमान होती जाय।

श्रीगोखलेकी भाषण देनेकी पद्धतिके बारेमे दो शब्द कह दू। वे कोई वक्ता नही है। श्रोताओंकी भावनाओको उभाडनेकी ओर उनका विशेष लक्ष्य नही रहता। अपनी बात सामनेवालेके मनमे पूरी तरह उतारना ही उनका उद्देश्य रहता है। वे शीघ्रतासे बोलते है। भर-पूर आकडे और विवरण उनका सरजाम है। उनकी समझनेकी शक्ति बहुत तीक्ष्ण और उत्साहपूर्ण है। उनका बोलनेका ढग सादा, किंतु स्पष्ट और जोरदार है।

श्रीगोखले बहुत उत्साही सुधारक है। वे पूनासे प्रकाशित होने वाले

मराठी दैनिक 'ज्ञानप्रकाश' को भी चलाते है और उसके द्वारा अपने सामाजिक और राजनैतिक विचारोका प्रचार करते है। ऐसा कहा जा सकता है कि उनका रहन-सहन अत्यत सादा और उग्र तपवाला है। सच कहे तो, जैसा कि प्रसिद्ध पत्रकार श्री नेविन्सनने कहा है, एक सच्चे ब्राह्मणके रूपमे उन्होने अपना जीवन गरीबी और ज्ञानमे होम दिया है। अत्यत प्राचीन भारतीय रीति, सादा जीवन और उच्च विचारका इससे अच्छा नमूना दूसरा नही मिल सकता।

श्रीगोखलेके अतिम बडे कार्योमे शिक्षाका बिल और भारतीय मजदूरोकी अनिवार्य गुलामीको बद करनेका प्रयास है। शिक्षाका बिल वाइसरायकी धारासभाके सामने पेश किया गया था। अन्य प्रजाकीय बिलोकी जो दशा होती है, वही दशा श्रीगोखलेके बिलकी हुई है, फिर भी उन्हे हिदके सभी भागो और सभी जातियोकी ओरसे इतना अधिक सहयोग प्राप्त हुआ है कि उस एकत्र बलके सामने सरकार ज्यादा दिनो तक टिक नही सकेगी।

इस देशमे 'गिरमिट'[1] बद हो गया, इसके लिए हम श्रीगोखलेके बहुत आभारी है। स्वय अनेक कार्योमे फसे रहने और बीमार रहनेपर भी इस प्रश्नका उन्होने कितना गहरा अध्ययन किया है, यह जाननेके लिए हिदकी धारासभामे दिया गया उनका भाषण आईनेकी तरह है।

गिरमिटके प्रश्नके उपरात हमारी तकलीफोकी ओर उन्होने हार्दिकतासे नजर रखी है और सत्याग्रहकी लडाईमे कीमती मदद दी है। हमारे प्रति उनकी सहानुभूति बढकर इस सीमातक पहुच गई है कि उन्होने इस देशमे (दक्षिण अफ्रीकामे) आकर हमारी स्थितिको जाननेका निश्चय किया है।

---

[1] मजदूरीके लिए विदेश जानेवाले भारतीयोंसे करवाया जानेवाला इकरार।

मातृभूमिकी सेवामे अपनी पूरी जिदगी अर्पण करनेवाले माननीय गोखले जैसा बुद्धिमान और तेजस्वी बनना हमारे बसकी बात नही, किंतु उनकी भाति अपने काममे एकरस हो जाना हममेसे प्रत्येकके बसकी बात है। श्रीगोखले स्वय जो कुछ मानते है, उसमे एकरस है, इसीलिए सारा देश और मित्र और सब लोग समान रूपसे उनका सम्मान करते है।....वे दीर्घायु हो और हम कामना करेगे कि उनकी छाप हमारे हृदयमे कभी मदी न पडे। (इं० ओ०, १९१२)

... .

श्रीगोखलेके उद्देश्यको मै पवित्र मानता हू। किबरलीमे प्रमुख-से-प्रमुख गोरे और भारतीय मिलकर भोजन करने एक मेजपर बैठे इस प्रसगमे श्रीगोखले कारणरूप बने, यह मेरे मनमे गर्वका विषय है। टाल्स्टायके जीवन और शिक्षणके एक नम्र अभ्यासीके रूपमे मुझे ऐसा भी लगता है कि ऐसे समारोह अनावश्यक है और अनेक बार इससे बहुतसे नुकसान—कुछ नही तो पाचन-क्रियामे खलल डालनेका नुकसान—होने लगता है; किंतु मै टाल्स्टायके जीवनका अभ्यासी हू, फिर भी यदि इससे एक-दूसरेको अधिक अच्छी तरह पहचाननेका अवसर मिलता हो तो इसमे खामी निकालनेके लिए मै तैयार नही। इस प्रसगपर मुझे एक सुदर अग्रेजी भजन—वी शैल नो ईचअदर व्हेन दि मिस्ट्स हैव् रोल्ड अवे (We shall know each other when the mists have rolled away)—याद आता है। हममेसे अज्ञान दूर हो जाय, हम एक-दूसरेके बीच मतभेद होनेपर भी एक-दूसरेके भाव अधिक समझ सके। मेरे प्रख्यात देशी भाई यहा जो आए है, सो इस अज्ञानकी आधीको दूर करनेके लिए ही आए है। कीमती-से-कीमती जवाहरके रूपमे, हिंद जिसे यहा भेज सकता था, वे यहा आए है। मै जानता हू कि जब श्रीगोखलेके कार्योके बारेमे मै कुछ कहता हू तो उनकी भावनाओको ठेस पहुचती है, फिर भी मुझे कर्त्तव्यका पालन करना चाहिए। हिंदुस्तानमें श्रीगोखलेने राजनैतिक

क्षेत्रमे जो कीर्त्ति प्राप्त की है, उसके विषयमे यहां मेरे बराबर और कोई कह सके, ऐसा नही है। हिंदुस्तानके वाइसराय तो सिर्फ पाच बरसतक ही हिंदुस्तानकी सल्तनतका बोझ अपने सिरपर उठाते है (कभी-कभी लार्ड कर्जन-जैसे सात बरस तक उठाते है) और सो भी अनगिनत अफसरोकी मददसे, किंतु ये मेरे एक विख्यात देशी भाई इस प्रकार की किसी भी सहायताके बिना, नौकरोके बिना और मान-पदके बिना, सल्तनतका बोझ अकेले उठाए हुए है। यह सही है कि इनके पास सी० आई० ई० का खिताब है; किंतु मेरे मतसे उससे बहुत अधिक बड़े-बडे पदोके वे पात्र है। श्रीगोखले जिस पदको चाहते है, वह उनके देशी भाइयोके प्रति प्रेम और अपनी अंतरात्माकी सम्मति है। पश्चिमकी शिक्षा पाए हुए भारतीयोंके लिए वे नम्रता और भलमनसाहतके उदाहरण-स्वरूप है।*..

•

माननीय गोखलेजीकी 'गिरमिट'-संबधी प्रवृत्ति उनकी तन्मयताकी जैसी झाकी कराती है, वैसी दूसरी कोई प्रवृत्ति नही कराती। उनका दक्षिण अफ्रीकाका प्रवास और उसके बाद हिंदमे की जानेवाली उनकी गतिविधि, अपने कार्यमे ओतप्रोत हो जानेकी उनकी शक्तिका हमे अच्छा दिग्दर्शन कराती है, और उनकी इस शक्तिके कारण ही अनेक बार मैंने कहा है कि उनके कार्योंमे हम छिपी हुई धर्मवृत्तिको देख सकते थे।

अब हम उनके दक्षिण अफ्रीकाके कार्यको जरा देखे। जब उन्होने दक्षिण अफ्रीका जानेके विषयमे अपना मत प्रकट किया तब हिंदुस्तानकी सरकारके अफसरोमें खलबली मच गई। दक्षिण अफ्रीकामे गोखलेजी-जैसे मनुष्यका अपमान हो तो उसे क्या कहा जायगा ? दक्षिण अफ्रीका

---

* महात्मा गोखलेका सम्मान करनेके लिए किंबरलीके मेयरके सभापतित्वमें नवंबर १९१२में हुए भारी समारोहके अवसरपर गांधीजी द्वारा दिए गए भाषणका अंश।

जानेका विचार यदि वे छोड दे तो कितना अच्छा हो ? किंतु उनसे इस बारेमे कहनेकी कौन हिम्मत करे ? दक्षिण अफ्रीका जाना क्या है, इसका अनुभव गोखलेजीको इग्लैडमे ही हुआ। उन्होने अपने लिए टिकट मगवाया, किंतु यूनियन केसल कपनीके अधिकारियोने कुछ भी ध्यान न दिया। यह खबर इडिया आफिसमे पहुची। इडिया आफिसने सर ओवन टघूडरको, जो यूनियन केसल कपनीके मैनेजर थे, सख्त ताकीद की कि कपनीको गोखलेजीका उनके पदके योग्य सम्मान करना चाहिए। परिणाम यह निकला कि गोखलेजी एक सम्मानित अतिथिके रूपमे स्टीमरमें प्रवास कर सके। इस प्रसगका वर्णन करते हुए उन्होने मुझसे कहा, "मुझे अपने व्यक्तिगत सम्मानकी आवश्यकता नही, किंतु अपने देशका सम्मान मेरे लिए प्राणके समान है और इस समय मैं एक प्रमुख व्यक्तिके रूपमे आ रहा था, इसलिए मेरा अपमान हुआ तो वह हिंदका अपमान होनेके समान है, यह मानकर मैंने स्टीमरमे अपने मानके योग्य सुविधा प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न किया।" उपर्युक्त घटनाके फलस्वरूप इडिया आफिसने कोलोनियल आफिसके मार्फत ऐसी तजवीज की थी कि दक्षिण अफ्रीकामे भी गोखलेजीका पूरा-पूरा सत्कार हो। इसलिए यूनियन सरकारने पहलेसे ही उनके सत्कारकी व्यवस्था कर रक्खी थी। उनके लिए एक सैलून तैयार करवा रक्खा था और यात्राके समय रसोइये आदि रखनेका भी इतजाम किया था। उनकी सार-सभालके लिए एक अफसर तैनात किया गया था। भारतीय जनताने तो स्थान-स्थानपर ऐसा सम्मान करनेकी तजवीज कर रक्खी थी, जो बादशाहको भी न मिल सके। गोखलेजीने यूनियन सरकारका आतिथ्य केवल यूनियनकी एक राजधानी प्रिटोरियामे ही स्वीकार किया। शेष सभी स्थानोपर वे भारतीयोके अतिथि रहे। केपटाउनमे दाखिल हुए कि तुरत उन्होने दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नका विशेष अध्ययन शुरू कर दिया। इस विषयका जो सामान्य ज्ञान लेकर

वे केपटाउनमे उतरे थे, वह भी ऐसा-वैसा नही था, किंतु उनके हिसाबसे वह पर्याप्त न था। दक्षिण अफ्रीकाके अपने चार सप्ताहके प्रवासमे उन्होने वहाके भारतीयोकी समस्याका इतना गहरा अध्ययन किया कि जो लोग भी उनसे मिलते, वे उनके ज्ञानसे आश्चर्यचकित हो जाते। जब जनरल बोथा और जनरल स्मट्ससे मिलनेका समय आया तब उन्होने इतने अधिक विवरण तैयार करवाये कि मुझे लगा कि इतना परिश्रम वे किस लिए कर रहे है। उनकी तबीयत बराबर बहुत खराब थी, अत्यत सार-सभाल रखनेकी जरूरत थी। लेकिन ऐसी तबीयत रहनेपर भी रातके बारह-बारह बजे तक काम करते और फिर दो बजे या चार बजे उठ जाते और कासिदको बुलाने लगते। परिणाम-स्वरूप जनरल बोथा और जनरल स्मट्ससे हुई उनकी मुलाकातमेसे गिरमिटके तीन पौडके वार्षिक करकी सत्याग्रहकी लडाई पैदा हुई। यह कर १८९३ से गिरमिट-मुक्त पुरुषो, उनकी स्त्रियो और उनके लडके-लडकियोपर लगाया जाता था। यदि गिरमिट मुक्त-व्यक्ति कर न देना चाहता तो कानून द्वारा उसका भारत वापस जाना अनिवार्य बना रक्खा था। इसलिए गिरमिटमे, वास्तवमे, गुलामीमे पड़े हुए भारतीयोकी दशा बहुत ही सकटपूर्ण बनी हुई थी। सर्वस्व त्यागकर बाल-बच्चोतकके साथ दक्षिण अफ्रीका आया हुआ भारतीय हिंदुस्तान वापस जाकर क्या करे? यहा तो उसके भाग्यमे भुखमरी ही रही। जीवन-पर्यत गिरमिटमे भी कैसे रहा जा सके? उसके आस-पासके स्वतत्र मनुष्य हर महीने चार पौड, पाच पौड, १० पौड कमाते हो तो स्वय १४ से १५ शिलिंग मासिक लेकर कैसे सतुष्ट रह सके? और अलग होना चाहता हो तो मान लीजिए कि उसके एक लडका और एक लडकी हो तो स्त्री-सहित सब मिलाकर उसे हर साल १२ पौडका कर देना चाहिए। यह भारी कर वह किस प्रकार दे? जबसे यह कर चालू हुआ तबसे भारतीय कौम उसके विरुद्ध भारी लडाई चला रही थी। हिंदुस्तानमे भी

उसकी प्रतिक्रिया हुई थी, किंतु अभी तक यह कर समाप्त न हो सका था। गोखलेजीको बहुत-सी मांगोमे इस करको उठानेकी भी माग करनी थी। वे इस प्रकार व्यथित हो उठे थे, जैसे अपने गरीब भाइयो-के ऊपरका यह बोझ स्वय उन्ही पर हो। जनरल बोथाके सामने उन्होने अपने आत्माकी सपूर्ण शक्तिका प्रयोग किया। उनके बोलनेका प्रभाव जनरल बोथा और जनरल स्मट्सपर ऐसा पडा कि वे पिघल गए और उन्होने वचन दिया कि आगामी यूनियन पार्लमेंटमे यह कर रद कर दिया जायगा। गोखलेजीने यह खुशखबरी बहुत हर्ष-पूर्वक मुझे दी। इन अधिकारियोने और भी वचन दिए थे, किंतु अभी हम गिरमिटके विषयपर ही विचार कर रहे है, अत यूनियन सरकारके साथके उनके मिलापका इतना ही अश मै यहा देता हू। पार्लमेट बैठी। गोखलेजी तो दक्षिण अफ्रीकामे थे नही और दक्षिण अफ्रीकामे बसे भारतीयोको मालूम हुआ। कि तीन पौडका कर तो नही उठाया जा सकता। जनरल स्मट्सने नेटालके सदस्योको समझानेका थोडा-बहुत प्रयत्न किया था। मेरे हिसाबसे यह काफी न था। भारतीय कौमने यूनियन सरकारको लिखा कि तीन पौड वाला कर, चाहे जैसे हो, उठानेको यूनियन सरकार गोखलेजीके साथ वचनवद्ध थी। अत यदि उसने यह कर नही उठाया तो जो सत्याग्रह १९०६ से चल रहा था, उसके अदर इस करकी बात भी दाखिल हो जायगी। दूसरी तरफ तारसे गोखलेजीको खबर दी गई। उन्होने यह कदम पसद किया। यूनियन सरकारने भारतीय कौमकी चेतावनीपर ध्यान नही दिया। उसका परिणाम सब लोग जानते है। गिरमिटमे रहनेवाले ४० हजार भारतीय सत्याग्रहकी लडाईमे शामिल हुए। उन्होने हडताल की, असह्य दु ख सहन किए, बहुत-से मारे गए, किंतु अत मे गोखलेजीको दिए गए वचनका पालन किया गया और वह कर उठा लिया गया। ('धर्मात्मा गोखले', पृष्ठ २४)

आप लोगोने मुझे गोखले पुस्तकालयके उद्घाटन और उनके चित्रके अनावरणके लिए बुलाया है। यह काम बहुत पवित्र है और उतना ही गभीर भी है।

....गोखले नामके भूखे तो न थे। इतना ही नही, वरन् उन्हे यह भी अच्छा न लगता था कि उनका मान हो। अनेक बार मान मिलते समय वे नीचे देखने लगते। यदि ऐसा माना जाता हो कि गोखलेके चित्रके अनावरणसे ही उनकी आत्माको शाति मिलेगी तो यह धारणा सच्ची नही। मरते समय उस महात्माने अपना आदर्श कह सुनाया था, और वह यह कि मेरे बाद मेरा जीवनचरित लिखा जायगा या मेरे लिए स्मारक बनेगा और शोक-प्रदर्शक सभाए होगी, किंतु उससे मेरी आत्माको शाति मिलनेवाली नही है। मेरी यही अभिलाषा है कि मेरा जीवन ही समस्त हिंदका जीवन बने और भारत-सेवक-समिति की प्रगति हो। इस वसीयतनामेको जो लोग मजूर करते हो, उन्हे गोखले-का चित्र रखनेका अधिकार है।

गोखलेके जीवनका विस्तार विशाल है। उनके जीवनके कुछ कौटु-बिक प्रसग आज यहा आई हुई बहनोको सुनाऊगा। यह बात बहनोके याद रखने लायक है कि गोखलेने अपने कुटुबकी सेवा अच्छी तरह की है। उनका आचरण ऐसा न था कि जिससे कुटुबके लोगोका जी दुखे। जैसा कि आज हिंदू-ससारमे गुडियाके विवाहकी भाति लडकीको आठ बरसकी करके उसे दरियामे धकेल दिया जाता है, वैसा गोखलेने नही किया। उनकी लडकी अभी कुमारी है। उसे ऐसा रखनेमे उन्होने बहुत सहन-शीलता दिखाई है। इसके सिवा भरी जवानीमे उनकी पत्नी चल बसी थी। फिरसे उन्हे पत्नी मिल सकती थी, किंतु उन्होने ऐसा नही किया। कुटुब-सेवा तो उन्होने अनेक प्रकारसे की है और सामान्य रूपसे तो सभी लोग कुटुब-सेवा करते होगे, किंतु स्वार्थ-दृष्टिसे और स्वदेश-हितकी वृत्तिसे, दो प्रकारसे कुटुब-सेवा होती है। गोखले ने स्वार्थवृत्तिको तिला-

जलि दे दी थी। कुटुबके प्रति, उसके बाद ग्रामके प्रति और अनतर देशके प्रति, इस प्रकार जिस समय जो प्रसग आया, वैसे ही कर्त्तव्य-का पालन उन्होंने सपूर्ण साहस, लगन और श्रमसे किया।

गोखलेके मनमे हिंदू-मुसलमानका भेद-भाव न था। वे सभीको समदृष्टिसे और स्नेह-भावसे देखते थे। कभी-कभी वे गुस्सा भी हो जाते थे; किंतु उनका वह क्रोध स्वदेश-हितसे सबध रखनेवाला और सामनेवालेके मनपर अच्छा ही असर डालनेवाला सिद्ध होता था। वह गुस्सा ऐसा था कि उसके असरसे बहुत-से यूरोपियन भी, जो शत्रुता प्रकट करते थे, घनिष्ट मित्र-जैसे बन गए थे।

गोखलेके समग्र जीवनपर दृष्टि डालनेवालेको मालूम होगा कि उन्होंने अपना सारा जीवन स्वदेश-सेवामय बना दिया था। पचास वर्षके अदरकी उम्रमे ही वे इस नश्वर जगत्को छोडकर चले गये। इसका कारण यही है कि वे दिनके चौबीसो घटे मानसिक और शारीरिक शक्ति बहुत श्रम-पूर्वक स्वदेश-सेवामे खर्च करते थे। उनके मनमे ऐसी सकुचित भावना न थी कि मै स्वहित या स्वकुटुबके लिए क्या करके जा रहा हू; किन्तु देशके लिए क्या करके जा रहा हू, ऐसी ही उनकी भावना थी।

हमारे हिंदके एक समर्थ बलरूप अत्यजवर्गके उद्धारका प्रश्न भी महात्मा गोखलेको रोज खटकता था और उनकी उन्नतिके लिए बहुत-से कार्य उन्होंने किये थे। कोई उनके वैसा करनेपर आपत्ति करता तो वे स्पष्ट शब्दोंमे कह देते कि हमारे भाई अत्यजको छूनेसे हम भ्रष्ट नही होते, किंतु न छूनेकी दुष्ट भावनासे ही घोर पापमे गिरते है।...

उमरेठके नेताओंका कर्त्तव्य है कि अपने देशी उद्योगोको पनपावे और उन्हे उत्तेजन दे। यदि ऐसी भावना न हो तो उन्हे गोखले-जैसे परमार्थी सतका चित्र रखनेका हक नही। महात्मा गोखलेके प्रति वे

सद्भाव प्रदर्शित करते है और उनके कर्त्तव्यको उमरेठ जान गया है, यह सतोषकी बात है।*

. . . . . .

उन्ही दिनो स्वर्गीय गोखले दक्षिण अफ्रीका आए। तब हम फार्मपर ही रहते थे। उस प्रवासके वर्णनके लिए एक स्वतत्र अध्याय की जरूरत है। अभी तो एक कड़वा-मीठा सस्मरण है, उसीको यहा लिख देता हू। फार्ममे खाटके जैसी कोई वस्तु ही नहीं थी। पर गोखलेजीके लिए हम एक खाट मागकर लाए। वहापर ऐसा एक भी कमरा नही था, जिसमे रहकर उन्हे पूरा एकात मिल सके। बठनेके लिए पाठशालाके बेंच थे। पर इस स्थितिमे भी कोमल शरीरवाले गोखलेजीको फार्मपर बिना लाए हम कैसे रह सकते थे? और वह भी उसे बिना देखे क्योकर रह सकते थे? मेरा खयाल था कि उनका शरीर एक रातभरके लिए कष्ट उठा सकेगा और वह स्टेशनसे फार्मतक करीब डेढ मील पैदल भी चल सकेगे। मैंने उन्हे पहले हीसे पूछ रक्खा था। अपनी सरलताके कारण उन्होने बिना बिचारे मुझपर विश्वास रख सब व्यवस्थाको कबूल भी कर लिया था। सयोगसे उसी दिन बारिश आगई। ऐन वक्तपर एकाएक मैं भी कोई फेरफार नही कर पाया। इस तरह अज्ञानमय प्रेमके कारण मैंने उनको उस दिन जो कष्ट दिया, वह कभी नही भुलाया जा सकता। वह भारी परिवर्त्तनको तो कदापि नही सह सकते थे। उन्हे खूब जाड़ा लगा। खाना खानेके लिए पाकशालामे भी उन्हे नही ले जा सके। मि० कैलनबेकके कमरेमे उन्हे रक्खा गया था। वहा पहुचते-पहुचते तो सब खाना ठडा हो जाता। उनके लिए खुद मैं 'सूप' बना रहा था और भाई कोतवालने रोटिया बनाईं। पर यह सब गरम कैसे रहे? ज्यों-त्यो करके भोजना-

---

* नवंबर १९१७ में उमरेठके भारतीयों द्वारा महात्मा गोखलेके नाम पर स्थापित पुस्तकालयका उद्घाटन-भाषण)

ध्याय समाप्त हुआ। पर उन्होने मुझे एक शब्द भी नही कहा। हा, उनके चेहरेपरसे मै सबकुछ और अपनी मूर्खताको भी जान गया। जब देखा कि हम सब जमीनपर सोते थे तब तो उन्होने भी खाटको अलग कर दिया और अपना बिस्तर जमीनपर ही लगवा लिया। रातभर मै पड़ा-पडा पश्चात्ताप करता रहा। गोखलेजीकी एक आदत थी, जिसे मै कुटेव कहता था, वह केवल नौकरसे ही काम लेते थे। ऐसे लबे प्रवासोमे वह नौकरोको साथ नही रखते थे। मि० कैलनबेकने और मैने कई बार उनके पैर दबा देनेके लिए प्रार्थना की, पर वह टस-से-मस नही हुए। अपने पैरोको हमे स्पर्शतक नही करने दिया। उल्टा कुछ गुस्सेमे और कुछ हँसीमे कहा—"मालूम होता है, आप सब लोगोने समझ रक्खा कि दु ख और कष्ट उठानेके लिए केवल आप ही पैदा हुए है और मुझ-जैसे आपको केवल कष्ट देनेके लिए। लो, भुगतो अब अपनी 'अति' की सजा! मै तुम्हे अपने शरीरको स्पर्श तक नही करने दूगा। आप सब लोग तो नित्य-क्रियाके लिए मैदानमे जावेगे और मेरे लिए कमोड रख छोडा है! क्यो? खैर, परवाह नहीं। आज तो मै जरूर आपका गर्व दूर करूगा, चाहे इसके लिए कितना ही कष्ट हो।" यह वचन तो वज्रके समान थे। कैलनबेक और मै दोनों उदास हो गए। पर उनके चेहरे पर कुछ-कुछ हँसी भी थी। बस यही हमे आश्वासन दे रही थी। अर्जुनने अज्ञानवश श्रीकृष्णको कितना ही कष्ट क्यो न दिया हो, पर क्या यह सब श्रीकृष्णने याद रक्खा होगा? गोखलेजीने तो केवल सेवाको ही याद रक्खा और खूबी यह कि सेवा तो करने भी न दी। मोबासासे लिखा हुआ उनका वह प्रेम-भरा पत्र मेरे हृदयपर अकित है। उन्होने आप कष्ट उठा लिया, पर हम उनकी जो सेवा कर सकते थे, वह भी उन्होने नही करने दी। हमारा बनाया भोजन तो खैर खाना ही पड़ा, नही तो और करते ही क्या!

दूसरे दिन सुबह न तो उन्होने खुद ही आराम लिया, न हमे लेने दिया। उनके भाषणोको, जिन्हे हम पुस्तक रूपमे छपानेवाले थे, उन्होने दुरुस्त

किया। उन्हें कुछ भी लिखना होता तो पहले वह यहासे वहातक टहलते-टहलते विचार कर लेते। उन्हें एक छोटा-सा पत्र लिखना था। मेरा खयाल था कि वह फौरन लिख डालेंगे, पर नही। मैंने टीका की, इसलिए मुझे व्याख्यान सुनना पड़ा। "मेरा जीवन तुम क्या जानो! मैं छोटी-से-छोटी बातमे भी जल्दी नही करता। उसपर विचार करता हू। उसके मध्यबिंदुपर ध्यान देता हू, विषयोचित भाषा गढता हू और फिर कही लिखता हू। इस तरह यदि सभी करे तो कितना समय बच जाय और समाजका कितना लाभ हो। आज समाजको जो इन अपरिपक्व विचारोंके कारण हानि उठानी पड़ती है उससे वह बच जाय।" (द० अ० स०, १९२५)

गोखलेजी तथा अन्य नेताओसे मैं प्रार्थना कर रहा था कि वे दक्षिण अफ्रीका आकर यहाके भारतीयोकी स्थितिका अध्ययन करे। इस बातमें पूरा-पूरा सदेह था कि कोई आवेगा भी या नही। मि० रिच भी किसी नेताको भेजनेकी कोशिश कर रहे थे। पर ऐसे समयमे वहा आनेकी हिम्मत कौन कर सकता था जब लडाई बिल्कुल मद हो गई हो? सन् १९११ मे गोखले इग्लैडमे थे। दक्षिण अफ्रीकाके युद्धका अध्ययन तो उन्होने अवश्य ही कर लिया था, बल्कि धारासभाओमे चर्चा भी की थी। गिरमिटियाओको नेटाल भेजना बद करनेका प्रस्ताव उन्होने धारासभामे पेश किया था, जो स्वीकृत भी हो गया था। उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार बराबर जारी था। भारत-सचिवके साथ वह इस विषयमे कुछ मशविरा कर रहे थे और उन्होने दक्षिण अफ्रीका जाकर उस प्रश्नका ठीक-ठीक अध्ययन करनेकी इच्छा भी प्रकट की थी। भारत-सचिवने उनके इस विचारको पसद भी किया था। गोखलेजीने छ सप्ताहके प्रवासकी योजना और कार्यक्रम बनानेके लिए मुझे लिख भेजा और साथ ही वह अतिम तारीख भी लिख भेजी, जब वह दक्षिण अफ्रीकासे विदा होना चाहते थे। उनके

शुभागमनकी वार्त्ता पढकर हमे तो इतना आनद हुआ कि जिसकी हद नहीं। आजतक किसी नेताने दक्षिण अफ्रीकाका सफर नही किया था। दक्षिण अफ्रीकाकी तो ठीक, पर प्रवासी भारतवासियोकी दशाका अवलोकन और ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे भी किसी विदेशी रियासतकी यात्रा तक नही की थी। इसलिए गोखले-जैसे महान् नेताके शुभागमनके महत्वको हम सब पूरी तरह समझ गए। हमने यह निश्चय किया कि गोखलेजीका ऐसा स्वागत-सम्मान किया जाय जैसा अब तक बादशाहका भी न हुआ हो। यह भी तय हुआ कि दक्षिण अफ्रीकाके मुख्य-मुख्य शहरोमे भी उन्हे ले जाना चाहिए। सत्याग्रही और दूसरे भी उनके स्वागतकी तैयारियो मे बडे उत्साहपूर्वक काम करने लगे। गोरोको भी इस स्वागतमे भाग लेनेके लिए निमत्रित किया गया था और लगभग सभी जगह वे शामिल भी हुए थे। यह भी निश्चय किया गया कि जहा-जहा सार्वजनिक सभाएँ हो, उन-उन शहरोके मेयरोको, यदि वे स्वीकार करे तो, अध्यक्ष-स्थान दिया जाय। साथ ही जहातक हो सके, कोशिश करके प्रत्येक शहरमे सभा-स्थानके लिए वहाके टाउन हॉलका ही उपयोग किया जाय। हमने यह निश्चय कर लिया कि रेलवे-विभागकी इजाजत प्राप्त करके मुख्य-मुख्य स्टेशनोको भी सजाया जाय। तदनुसार कितने ही स्टेशनोको सजानेकी इजाजत भी हमे मिल गई। यद्यपि सामान्यतया ऐसी इजाजत नही दी जाती, पर हमारी स्वागतकी तैयारियोका असर सत्ताधिकारियो-पर भी पडा। इसलिए उन्होने भी जितनी उनसे बन पडी, सहानुभूति दिखाई। मसलन केवल जोहान्सबर्गके स्टेशनको सजानेमे ही हमे लगभग १५ दिन लग गये। वहा हम लोगोने एक सुदर प्रवेश-द्वार बनाया था।

दक्षिण अफ्रीकाके विषयमे बहुत कुछ जानकारी तो उन्हे इग्लैंडमे ही मिल चुकी थी। भारत-सचिवने दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारको गोखले-का दरजा, साम्राज्यमे उनका स्थान, इत्यादि पहले ही बता दिया था।

किंतु स्टीमर कपनीमे टिकट तथा व्यवस्था आदि करनेकी बात किसीको कैसे सूझ सकती थी ? गोखलेजीकी तबियत नाजुक थी। इसलिए उनको अच्छी कैबिन और एकातकी बडी आवश्यकता रहती; पर उन्हे तो साफ उत्तर मिल गया कि ऐसी कैबिन है ही नही। मुझे ठीक-ठीक पता नही है कि स्वय गोखलेजीने या उनके और किसी मित्रने इडिया आफिस-मे इस बातकी इत्तिला की। पर कपनीके डायरेक्टरके नाम इडिया आफिसकी तरफसे पत्र पहुचा। और जहा कोई कैबिन ही नही थी वही उनके लिए एक बढिया कैबिन तैयार हो गई। उस प्रारभिक कटुताका अत इस मधुरताके साथ हुआ। स्टीमरके कैप्टनको भी गोखलेजीका बढिया स्वागत करनेके लिए सूचना पहुची थी। इसलिए उनके इस सफर-के दिन बडी शाति और आनदके साथ बीते। गोखले उतने ही आनद और विनोदशील भी थे, जितने वह गभीर थे। स्टीमरके खेल वगैरहमे वह खूब भाग लेते थे। इसलिए स्टीमरके मुसाफिरोमे वह बडे प्रिय हो गए। गोखलेजीको यूनियन सरकारका यह विनय-सदेश भी पहुचा कि वह यूनियन सरकारके महमान हो और रेलवेके स्टेट सेलूनमे ही सफर करे, किंतु स्टेट सेलूनका तथा प्रिटोरियामे सरकारी महमान होना स्वीकार करनेका निश्चय उन्होने मेरे साथ मशविरा करनेके बाद किया।

जहाजसे वह केपटाउनमे उतरनेवाले थे। उनका मिजाज तो मेरी अपेक्षासे भी अधिक नाजुक साबित हुआ। वह एक खास तरहका भोजन ही कर सकते थे। अधिक परिश्रम भी नही उठा सकते थे। निश्चित कार्य-क्रम भी उनके लिए असह्य हो गया। जहा तक हो सका उसमे परि-वर्तन किया गया। जहा कही परिवर्तन नही हो सका, वहा स्वास्थ्य बिग-डनेकी आशका होते हुए भी उन्होने उसे कबूल कर लिया। मुझे इस बातका बडा पश्चात्ताप हुआ कि उनसे बिना पूछे ही मैंने इतना सख्त कार्य-क्रम क्यो तैयार कर डाला ! कार्य-क्रममे कितनी ही जगह परिवर्तन किया गया, पर अधिकाश तो ज्यों-का-त्यो ही रखना पडा। यह बात मेरे खयालमें

नही आई थी कि उन्हे एकातकी अत्यन्त आवश्यकता रहती है। अतः एकात स्थानका प्रबध करनेमे मुझे ज्यादा-से-ज्यादा कठिनाई हुई। पर साथ ही नम्रता-पूर्वक मुझे यह तो सत्यके लिए जरूर कहना पडेगा कि बीमार और बुजुर्गोंकी सेवा करनका मुझे खास अभ्यास और शौक भी था। इसलिए अपनी मूर्खताका ज्ञान होनेके बाद मैं उसमे इतना सुधार कर सका था कि उन्हे बहुत काफी एकात और शाति भी मिल सकी। प्रवासमें शुरूसे आखिर तक उनके मत्रीका काम स्वय मैंने ही किया। स्वय-सेवक भी ऐसे थे जो साय-साय करती अधेरी रातमे भी चिट्ठीका उत्तर ला सकते थे। इसलिए मेरा खयाल है कि उन्हे सेवकोके अभावके कारण कोई कष्ट नही उठाना पडा होगा। कैलनबेक भी इन स्वयसेवकोमे थे।

यह तो प्रकट ही था कि केपटाउनमे बढिया-से-बढिया सभा होनी चाहिए। श्राइनर कुटुबके डब्ल्यू० पी० श्राइनरसे अध्यक्ष-स्थान स्वीकार करनेके लिए प्रार्थना की गई। हमारी प्रार्थनाको उन्होंने मजूर कर लिया। विशाल सभा हुई। भारतीय और गोरे भी अच्छी तादादमे आए। मि० श्राइनरने मधुर शब्दोमे गोखलेजीका स्वागत किया और दक्षिण अफ्रीका-के भारतीयोके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की। गोखलेजीका भाषण छोटा, परिपक्व विचारोसे भरा हुआ और दृढ था, कितु विनयपूर्ण भी ऐसा था कि जिसने भारतीयोको प्रसन्न कर दिया और गोरोका दिल भी चुरा लिया। गोखलेजीने जिस दिन दक्षिण अफ्रीकाकी भूमिपर पैर रक्खा उसी दिन वहाकी पचरगी प्रजाके हृदयमे उन्होने अपना स्थान प्राप्त कर लिया।

केपटाउनसे जोहान्सबर्ग जाना था। रेलसे दो दिनका प्रवास था। युद्धका कुरुक्षेत्र ट्रान्सवाल था। केपटाउनसे आते समय राहमें हमें ट्रान्स-वालके बडे सरहदी स्टेशन क्लार्कस्डार्पपर से गुजरना पडता था। खास क्लार्कस्डार्प तथा राहमे आनेवाले अन्य शहरोमे भी ठहरकर हमे सभाओमें जाना था। इसलिए क्लार्कस्डार्पसे एक स्पेशल ट्रेनकी व्यवस्था की गई।

दोनों शहरोमे वहाके मेयर ही अध्यक्ष थे। किसी भी शहरको एक घटेसे अधिक समय नही दिया गया था। ट्रेन जोहान्सबर्ग बिलकुल ठीक समय पर पहुची। एक मिनटका भी फर्क नही पडने पाया। स्टेशनपर खासे कालीन वगैरह बिछाए गए थे। एक मच भी बनाया गया था। जोहान्स-बर्गके मेयर और दूसरे अनेक गोरे भी हाजिर थे। गोखलेजी जितने दिन जोहान्सबर्गमे रहे, उतने दिन तक उनके उपयोगके लिए मेयरने उन्हे अपनी मोटर दे दी थी। स्टेशनपर ही उन्हे मानपत्र भी दिया गया। प्रत्येक स्थानपर मान-पत्र तो दिए ही जाते थे। जोहान्सबर्गका मानपत्र बडा सुदर था। दक्षिण अफ्रीकाकी लकडीपर जडी हुई सोनेकी हृदया-कार तख्तीपर खुदा हुआ था—तख्तीका सोना भी जोहान्सबर्गकी खान का ही था। लकडीपर भारतके कितने ही दृश्योके सुदर चित्र खुदे हुए थे। गोखलेजीका परिचय, मानपत्रको पढना और उसका उत्तर दिया जाना तथा अन्य मानपत्रोका लेना यह सब काम २२ मिनिटके अदर कर लिए गए थे। मानपत्र इतना छोटा था कि उसे पढनेमे पाच मिनटसे अधिक समय नही लगा होगा। गोखलेजीका उत्तर भी पाच ही मिनिटका था। स्वयसेवकोका इतजाम इतना बढिया था कि पूर्व निश्चित मनुष्योके सिवा एक भी आदमी प्लेटफार्मपर नही आ सका। शोर-गुल जरा भी नही था। बाहर लोगोकी खूब भीड थी। फिर भी किसीके आने-जानेमे कोई कठिनाई नही हुई।

उनके ठहरनेकी व्यवस्था मि० कैलनबेकके एक छोटे-से सुदर बगलेमे की गई थी, जो जोहन्सबर्गसे पाच मीलकी दूरी पर एक टेकडीपर था। वहाका दृश्य ऐसा भव्य था, वहाकी शाति ऐसी आनददायक थी और बगला सादा होते हुए भी कलासे इतना परिपूर्ण था कि गोखलेजी खुश हो गए। मिलने-जुलनेकी व्यवस्था सबके लिए शहरमे ही की गई थी। उसके लिए एक खास आफिस किरायेपर ले लिया गया था। उनमे एक कमरा केवल उनके आराम करनेके लिए रक्खा गया था, दूसरा मिलने-

जुलनेके लिए और तीसरा कमरा मिलने आने वाले सज्जनोके बैठनेके लिए। जोहान्सबर्गके कितने ही प्रसिद्ध गृहस्थोंसे खानगी मुलाकात करनेके लिए भी गोखलेजीको ले गए थे। गण्यमान्य गोरोकी भी एक खानगी सभा की गई थी, जिससे गोखलेजीको उनके दृष्टि-बिंदुका पूरी तरह खयाल हो जाय। इसके अलावा जोहान्सबर्गमे उनके सम्मानार्थ एक विशाल भोज भी दिया गया था, जिसमे कोई ४०० आदमियोको निमंत्रित किया गया था। उनमे लगभग १५० गोरे थे। भारतीय टिकिट लेकर आ सकते थे। टिकटकी कीमत एक गिनी रक्खी गई थी। टिकटोकी आयमेसे उस भोजका खर्च निकल आया। भोज केवल निरामिष और मद्यपान-रहित था। खाना भी केवल स्वयसेवको द्वारा ही बनाया गया था। इसका वर्णन यहा करना कठिन है। दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोमे हिदू-मुसलमान, छूत-अछूत आदिका कोई खयाल ही नही होता। सब एकसाथ बैठकर खा लेते है। निरामिष आहार करनेवाले भारतीय भी अपने नियमका पालन करते है। भारतीयोमे कितने ही क्षत्रिय भी थे। दूसरोकी तरह उनसे भी मेरा तो गाढ परिचय था। उनमेसे अधिकाश गिरमिटिया माता-पिताकी प्रजा ही होते है। कई होटलोमे खाना पकाने और परोसनेका काम करते है। इन्ही लोगोकी सहायतासे इतने मनुष्योंकी रसोईकी व्यवस्था हो सकी। तरह-तरहके कोई पद्रह व्यजन थे। दक्षिण अफ्रीकाके गोरोके लिए यह एक नवीन और अजीब अनुभव था। इतने भारतीयोके साथ एक पक्तिमे खानेके लिए बैठना, निरामिष भोजन करना और मद्यपान बिना काम चलाना ये तीनो अनुभव उनमेसे कइयोके लिए नवीन थे। दो तो अवश्य ही सबके लिए नवीन थे।

इस सम्मेलनमे गोखलेजीका बडे-से-बडा और महत्वपूर्ण भाषण हुआ। पूरे ४५ मिनट वह बोले। इस भाषणकी तैयारीके लिए उन्होने हमारा खूब समय लिया था। पहले उन्होने अपना जीवनभरका यह निश्चय

सुनाया कि एक तो स्थानीय मनुष्योके दृष्टि-बिंदुकी अवगणना नहीं होनी चाहिए। दूसरे, जहातक उनसे मिलकर रहा जाय, हम मिलकर रहने-की कोशिश करे। इन दो बातोको ध्यानमें रखकर मैं उनसे जो कहलाना चाहू वह उन्हे बता दू, पर यह मुझे उन्हे लिखकर देना चाहिए। साथ ही उनकी यह भी शर्त थी कि इनमेसे एक भी वाक्य या विचारका वह उपयोग न करे तो मुझे बुरा न मानना चाहिए। लेख न लबा होना चाहिए और न छोटा। कोई महत्वपूर्ण बात भी छूटने न पावे। इन सब बातोका खयाल रखते हुए मुझे उनके लिए स्मरणार्थ टिप्पणिया लिखनी पडती थी। यह तो मैं सबसे पहले कह देता हू कि उन्होने मेरी भाषाका तो जरा भी उपयोग नही किया। वह तो अग्रेजीके पारगत विद्वान् थे। फिर मै यह आशा भी क्यो करू कि वह मेरी भाषाका उपयोग करे। पर मैं यह भी नही कह सकता कि उन्होने मेरे विचारोका भी उपयोग किया। हा, मेरे विचारोकी उपयुक्तताको उन्होने जरूर स्वीकार किया। इसलिए मैने अपने दिलको समझा लिया कि आखिर उन्होने मेरे विचारोका भी किसी तरह उपयोग किया होगा, क्योकि उनकी विचार-शैली ऐसी अजीब थी कि उससे हमे यही पता नही चलता था कि उन्होने हमारे विचारोको कहा स्थान दिया है, अथवा दिया भी है, या नही। गोखले-जीके सभी भाषणोके समय मै हाजिर था, पर मुझे ऐसा एक भी प्रसग याद नही कि जिसमे मुझे यह इच्छा हुई हो कि अमुक विशेषण या अमुक विचारका उपयोग वह न करते तो अच्छा होता। उनके विचारोकी स्पष्टता, दृढता, विनय, इत्यादि उनके अथक परिश्रम और सत्यपरायणता-के फल-स्वरूप थे।

जोहान्सबर्गमे केवल भारतीयोकी एक विराट सभा भी तो हो जाना जरूरी था। मेरा यह आग्रह पहलेसे ही चला आ रहा है कि भाषण मातृ-भाषा ही मे अथवा राष्ट्र-भाषा हिंदुस्तानीमे ही होना चाहिए। इस आग्रहके कारण दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोके साथ मेरा अधिक सरल और निकट

का सबंध हो गया। इसलिए मै चाहता था कि भारतीयोकी सभामें गोखले-जी भी हिंदुस्तानीमे भाषण दे तो बडा अच्छा हो, किंतु इस विषयमे उनके विचार मै जानता था। टूटी-फूटी हिंदीसे काम चलाना तो उन्हे पसदही नही था। अर्थात् वह या तो मराठीमे भाषण दे सकते थे या अग्रेजीमें। मराठीमें भाषण देना उन्हे कृत्रिम मालूम हुआ। यदि मराठीमे बोलते भी तो गुजरातियो तथा उत्तर हिंदुस्तानके निवासी भारतीयोके लिए उसका अनुवाद करना अनिवार्य था। यदि ऐसा था तो फिर अग्रेजीमे ही क्यो न बोला जाय? पर मेरे पास एक ऐसी दलील थी, जिसको गोखले-जी स्वीकार कर सकते थे। जोहान्सदर्गमे कोकणके कई मुसलमान भी बसते थे। कुछ महाराष्ट्रीय हिंदू भी थे। ये सब गोखलेजीका मराठी भाषण सुननेके लिए बडे लालायित थे और उन लोगोने मुझे यह भी कह रक्खा था कि मै गोखलेजीसे मराठीमे भाषण देनेके लिए अनुरोध करू। इसलिए मैने गोखलेजीसे कहा, "यदि आप मराठीमे भाषण देगे तो इन लोगोको बडा आनद होगा। आप जो कुछ कहेगे उसका मै हिंदुस्तानीमे अनुवाद करके सुना दूगा।" यह सुनकर वह जोरसे खिलखिलाकर हँस पडे। "तुम्हारा हिंदुस्तानीका ज्ञान तो मैने अच्छी तरह जाच लिया, वह तुम्हीको मुबारक हो! पर याद रक्खो अब तुम्हे मराठीसे अनुवाद करना होगा। भला बताओ तो सही कि इतनी अच्छी मराठी तुम कहासे सीख गए?" मैने कहा—"जो हाल मेरी हिंदुस्तानीका है वही मराठीके विषयमें भी समझिए। मराठीमे एक अक्षर भी मै नही बोल सकता। पर आप जिस विषयपर आज कुछ कहेंगे उसका भावार्थ मै जरूर कह दूगा। आप देखिएगा कि मै लोगोके सामने उसका उलट-सुलट अर्थ तो हरगिज नहीं करूगा। भाषणका अनुवाद करके सुनानेके लिए मै ऐसे लोग तो आपको अवश्य ही दे सकता हू, जो अच्छी तरह मराठी जानते है। पर शायद आप इस प्रस्तावको मजूर नही करेगे। इसलिए मुझीको निबाह लीजिए, पर बोलिएगा मराठीमे। कोकणी भाइयोके साथ-साथ मुझे भी आपकी मराठी

सुननेकी बडी अभिलाषा है।" "भाई, अपनी ही टेक रक्खो। अब यहा तुम्हारे ही तो पाले पडा हुआ हू न ? अब कही यो थोडे छुट्टी मिल सकती है !" यह कहकर उन्होने मुझे खुश कर दिया। इसके बाद जजीबार तक इस तरहकी प्रत्यक सभामे वह मराठी हीमे बोले और मै खास उन्हीका नियुक्त किया हुआ अनुवादक रहा। मेरा खयाल है कि प्रत्येक भारतीयको यथा-सभव अपनी मातृ-भाषामे अथवा व्याकरण-शुद्ध अग्रेजीकी बनिस्बत व्याकरण-रहित टूटी-फूटी हिंदीहीमे भाषण देना चाहिए। मै कह नही सकता कि यह बात मै उनको कहा तक समझा सका, किंतु इतना तो मै जरूर कहूगा कि मुझे प्रसन्न करनेके लिए उन्होने दक्षिण अफ्रीकामे तो मराठी हीमे भाषण दिए। मै यह भी जान सका कि अपने भाषणके बाद उसके प्रभावसे वह खुश भी हुए। दक्षिण अफ्रीकामे अनेक प्रसगोपर किए हुए अपने बर्तावसे गोखलेजीने यह बता दिया कि सिद्धातकी कठिनाई न हो तो मनुष्यको अपने सेवकोको जरूर राजी रखना चाहिए। यह भी एक गुण है। (द० अ० स०, १९२५)

• •

जोहान्सबर्गसे हमे प्रिटोरिया जाना था। प्रिटोरियामे गोखलेजीको यूनियन सरकारका निमत्रण था। तदनुसार होटलमे उनके लिए सुरक्षित जगहमे ही हम ठहरे। यहापर उन्हे यूनियन सरकारके मत्रिमडलमे, जिसमे जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी थे, मिलना था। जैसा कि ऊपर लिख चुका हू, मैने उनका कार्यक्रम ऐसा बनाया था कि उन्हे हमेशा करने योग्य कामोकी सूचना मै प्रतिदिन सुबह कर दिया करता था। यदि वह चाहते तो अगली रातको भी बता देता। मत्रि-मडलसे मिलनेका काम उत्तरदायित्व-पूर्ण था। हम दोनोने निश्चय कर लिया था कि मुझे उनके साथ नही जाना चाहिए, जानेकी आज्ञा भी नही मागनी चाहिए। मेरी उपस्थितिके कारण मत्रि-मडल और गोखलेजीके बीचमे जरूर ही एक हद तक पर्दा पड़ जानेकी सभावना थी। मत्रिगण उन्हें न तो पेट-

भर स्थानीय भारतीयोकी और न मेरी ही ऐसी बातें बता सकते जिनको वे गलत समझते थे। और यदि वे कुछ कहना चाहते तो उसे भी खुले दिलसे नही कह सकते थे, किंतु इसमे एक असुविधा भी थी। गोखलेजीकी जिम्मेदारी दुगुनी हो जाती थी। यदि किसी बातको वह भूल जाय, या मत्रि-मडलकी तरफसे कोई ऐसी बात कही जाय जिसका उत्तर उनके पास न हो, तो क्या किया जाय? अथवा भारतीयोकी तरफसे किसी बातको कबूल करना हो तब क्या किया जाय? येदोनो बाते बिना मेरी या दक्षिण अफ्रीकाके किसी जिम्मेदार नेताकी उपस्थितिके कैसे तय हो सकती थी? पर इसका निर्णय स्वय गोखलेजीने ही फौरन कर डाला। यही कि मै उनके लिए शुरूसे आखिर तक सक्षेपमे भारतीयोकी स्थितिका वृत्तात लिख दू। उसमे यह भी हो कि भारतीय अपनी मागोमे कहातक कम-ज्यादा करनेको तैयार है। इसके बाहरकी कोई बात उपस्थित हो तो उसमे गोखलेजी अपना अज्ञान कुबूल कर ले। इस निश्चयके साथ ही वह निश्चित भी हो गए। अब रहा यह कि मै ऐसा एक कागज तैयार करलू और वे उसे पढ ले। पर पढने इतना समय तो मैने रक्खा ही नही था। कितना ही सक्षेपमे लिखू तो भी १८-२० वर्षका, चार रियासतोकी भारतीय जनताकी स्थितिका इतिहास मै १०-२० सफेसे कममे कैसे दे सकता था? फिर उसके पढ लेनेपर उनको कुछ सवाल तो अवश्य ही सूझते। पर उनकी स्मरण-शक्ति जितनी तीव्र थी, उतनी ही उनकी मेहनत करनेकी शक्ति भी अगाध थी। रातभर जागते रहे। पोलकको और मुझे भी सोने नही दिया। प्रत्येक बातकी पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त कर ली। उलट-सुलट रीतिसे सवाल करके इस बातकी जाच भी कर ली कि वह स्थितिको बराबर समझ गए या नही। अपने विचार मेरे सामने कह सुनाये। अत मे उन्हे पूरा सतोष हो गया। मै तो निर्भय ही था।

लगभग दो घटे मंत्रि-मडलके पास वह बैठे और वहासे आनेपर

मुझसे कहा, "तुम्हे एक सालके अंदर भारतवर्ष आना है। सब बातोका फैसला हो गया है। खूनी कानून रद होगा, इमिग्रेशन कानूनसे वर्ण-भेद निकाल दिया जायगा और तीन पौडका कर भी रद होगा।"मैंने कहा, "इसमे मुझे पूरा सदेह है। मत्रि-मडलको जितना मै जानता हूं, उतना आप नही जानते। आपका आशावाद मुझे प्रिय है; क्योकि स्वय मै भी आशावादी हू। पर अनेक बातोमे धोखा खानेपर अब मै इस विषयमे आपके इतनी आशा नही रख सकता। पर मुझे भय भी नही है। आप वचन ले आए, यही मेरे लिए काफी है। मेरा धर्म तो केवल यही है कि आवश्यकता उपस्थित होने पर युद्ध ठान दू और यह सिद्ध कर दू कि वह न्याय है। इसकी सिद्धिमे आपको दिया गया वचन हमारे लिए बड़ा फायदेमद होगा। और यदि लडना ही पडा तो वह हमे दूनी शक्ति देगा। पर मुझे न तो इस बातका विश्वास होता है कि बिना अधिक तादादमे भारतीयोके जेल गए इसका निबटारा हो सकता है और न इस बातका भी कि एक सालक अदर मै भारतवर्ष जा सकूगा।" तब वह बोले, "मै तुम्हे जो कुछ कहता हू इसमे कभी फर्क नही हो सकता। जनरल बोथाने मुझे वचन दिया है कि खूनी कानून और वह तीन पौडवाला कर भी रद होगा। तुम्हे एक सालके अदर भारत लौटना ही होगा। मै अब इस विषयमें तुम्हारी एक भी दलील नही सुनूगा।"

जोहान्सबर्गका भाषण प्रिटोरियाकी मुलाकातके बाद हुआ था।

ट्रान्सवालसे डरबन, मैरित्सबर्ग आदि स्थानोको गए। वहा कई गोरोसे काम पडा। कैम्बरलीकी हीरोकी खान देखी। कैम्बरली और डरबनके स्वागत-मडलोने भी जोहान्सबर्गके जैसे भोज दिए थे। उनमें अनेक अग्रेज भी आए थे। इस तरह भारतीयो और गोरोका दिल चुरा कर गोखलेजीने दक्षिण अफ्रीकाका किनारा छोडा। उनकी आज्ञा प्राप्त कर कैलनबेक और मै उन्हे जजीबार तक छोडनेके लिए गए थे। स्टीमरमे उनके लिए ऐसे भोजनकी व्यवस्था कर दी गई जो उनको

पुग्राफिक हो। रास्तेमे डेलागोआ बे, इन्हामबेन, जजीबार, आदि बदरगाहोपर भी उनका बडा सम्मान किया गया।

रास्तेमे हमारे बीच जो बाते होती उनका विषय भारतवर्ष और उसके प्रति हमारा धर्म ही रहता। प्रत्येक बातमे उनका कोमल भाव, सत्यपरायणता, स्वदेशाभिमान चमकता था। मैंने देखा कि स्टीमरमें वह जो खेल खेलते उनमे भी खेलोकी बनिस्बत भारतवर्षकी सेवाका भाव, ही विशेष रहता। भला उनके खेलमे भी सपूर्णता क्यो न हो !

स्टीमरमे शातिके साथ बाते करनेके लिए हमें समय मिल ही गया। उसमे उन्होने मुझे भारतवर्षके लिए तैयार किया। भारतवर्षके प्रत्येक नेताका पृथक्करण करके दिखाया। वे वर्णन इतने हूबहू थे कि मुझे बादमे उन नेताओका जो प्रत्यक्ष अनुभव हुआ, उसमे और उसके चरित्र-चित्रणमे शायद ही कोई फर्क दिखाई दिया।

गोखलेजीके दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासमे उनके साथ मेरा जो सबध रहा, उसके ऐसे कितने ही पवित्र सस्मरण है, जिनको मै यहा दे सकता हू, किंतु सत्याग्रहके इतिहासके साथ उनका कोई सबध नही है। इसलिए मुझे अनिच्छापूर्वक अपनी कलमको रोकना पडता है। जजीबारमे हमारा जो वियोग हुआ वह हम दोनोके लिए बडा दुखदायी था, किंतु यह सोचकर कि देह-धारियोके घनिष्ट-से-घनिष्ट सबध भी अतमे टूटते ही है, कैलनबेकने और मैंने अपना समाधान किया। हम दोनोने यह आशा की कि गोखलेजीकी वाणी सत्य हो और हम दोनो एक सालके अदर ही भारतवर्ष जा सके, पर यह असभव सिद्ध हुआ।

इतना होते हुए भी गोखलेजीके दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासने हमे अधिक दृढ बना दिया। युद्धका जब अधिक रग चढा तब इस मुलाकातका रहस्य और आवश्यकता हम और भी अच्छी तरह समझे। यदि गोखलेजी दक्षिण अफ्रीका नही आते मत्रि-मडलमे नही मिलते तो हम तीन पौंडवाले करको अपने युद्धका विषय ही नही बना सकते थे। यदि खूनी

कानून रद होते ही सत्याग्रह बद कर दिया जाता तो तीन पौडके करके लिए हमे नया सत्याग्रह शुरू करना पडता और उसमे असख्य कष्ट उठाने पडते । इतना ही नही, बल्कि इस बातमें भी भारी सदेह था कि लोग उसके लिए शीघ्र तैयार होते भी या नही । इस करको रद कराना स्वतत्र भारतीयोका कर्त्तव्य था । उसको रद करानेके लिए अर्जिया वगैरह सब उपाय काममे लाये जा चुके थे । सन् १८९५ के सालसे कर दिया जा रहा था । चाहे कितना ही घोर दु ख क्यो न हो, किंतु यदि वह दीर्घ-कालीन हो जाता है तो लोग उसके आदी हो जाते है । फिर उन्हे यह समझाना महा कठिन होता कि उन्हे उसका प्रतिकार करना चाहिए । गोखलेजीको जो वचन दिया गया उसने सत्याग्रहियोके मार्गको बडा सरल बना दिया । या तो सरकारको अपने वचनके अनुसार उस करको रद कर देना चाहिए था, या नही तो स्वय वह वचन-भग ही सत्याग्रहके लिए एक काफी बलवान कारण हो जाता, और हुआ भी ठीक यही । सरकारने एक सालके अदर उस करको रद नही किया । यही नही, बल्कि यह भी साफ-साफ कह दिया कि वह कर रद नही किया जा सकता ।

इसलिए गोखलेजीके प्रवाससे हमे तीन पौडवाले करको सत्याग्रहके द्वारा रद करानेमे बडी सहायता मिली । दूसरे, उनके उस प्रवासके कारण वह दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके एक विशेषज्ञ समझे जाने लगे । दक्षिण अफ्रीका सबधी अब उनके कथनका वजन भी कही अधिक बढ गया । साथ ही दक्षिण अफ्रीकामे रहनेवाले भारतीयोकी स्थितिका प्रत्यक्ष ज्ञान हो जानेके कारण वह इस बातको अधिक अच्छी तरह समझ सके कि भारतवर्षको उन लोगोके लिए क्या करना चाहिए, और उसे यह बात समझानेमे उनकी शक्ति तथा अधिकार भी बहुत बढ गया । फलत' अब की बार जब युद्ध चेता तो भारतसे धनकी वर्षा होने लग गई । लॉर्ड हार्डिज तकने सत्याग्रहियोके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट कर उन्हे

उत्साहित किया। भारतसे मि० एण्ड्रूज और मि० पियर्सन दक्षिण अफ्रीका आए। यह सब बिना गोखलेजीके प्रवासके नही हो सकता था। (द० अ० स०, १९२५)

. . . .

मै गोखलेजीके पास गया। वह फर्ग्यूसन कालेजमे थे। बडे प्रेमसे मुझसे मिले और मुझे अपना बना लिया। उनका भी यह ही प्रथम परिचय था; पर ऐसा मालूम हुआ मानो हमे पहले मिल चुके हो। सर फिरोजशाह तो मुझे हिमालय जैसे मालूम हुए, लोकमान्य समुद्रकी तरह। गोखलेजी गगाकी तरह। उसमे मै नहा सकता था। हिमालय पर चढना मुश्किल है, समुद्रमे डूबनेका भय रहता है, पर गगाकी गोदीमे खेल सकते है, उसमे डोगीपर चढकर तैर सकते है। गोखलेजीने खोद-खोदकर बाते पूछी, जैसी कि मदरसेमे भरती होते समय विद्यार्थीसे पूछी जाती है। किस-किससे मिलू और किस प्रकार मिलू, यह बताया और मेरा भाषण देखनेके लिए मागा। मुझे अपने कालेजकी व्यवस्था दिखाई। कहा, "जब मिलना हो, खुशीसे मिलना और डाक्टर भाडारकरका उत्तर मुझे जताना।" फिर मुझे विदा किया। राजनैतिक क्षेत्रमे गोखलेजीने जीते-जी जैसा आसन मेरे हृदयमे जमाया और जो उनके देहातके बाद अब भी जमा हुआ है वैसा फिर कोई न जमा सका। (आ०, १९२७)

. .

पहले ही दिन गोखलेजीने मुझे मेहमान न समझने दिया, मुझे अपने छोटे भाईकी तरह रक्खा। मेरी तमाम जरूरते मालूम कर ली और उनका प्रबध कर दिया। खुश-किस्मतीसे मेरी जरूरते बहुत कम थी। सब काम खुद कर लेनेकी आदत डाल ली थी, इसलिए औरोसे मुझे बहुत ही कम काम कराना पडता था। स्वावलबनकी मेरी इस आदतकी, उस समयके मेरे कपडे-लत्तेकी सुघडताकी, मेरी उद्योगशीलता और

नियमितताकी बडी गहरी छाप उनपर पडी और वे उसकी इतनी स्तुति करने लगे कि मै परेशान हो जाता।

मुझे यह न मालूम हुआ कि उनकी कोई बात मुझसे गुप्त थी। जो कोई बडे आदमी उनसे मिलने आते उनका परिचय वह मुझसे कराते थे। इन परिचयोमे जो आज सबसे प्रधानरूपसे मेरी नजरोके सामने खडे हो जाते है वह है डा० प्रफुल्लचद्र राय। वह गोखलेके मकानके पास ही रहते थे और प्राय हमेशा आया करते थे।

"यह है प्रोफेसर राय, जो ८००) मासिक पाते है, पर अपने खर्चके लिए सिर्फ ४०) लेकर बाकी सब लोक-सेवामे लगा देते है। इन्होने शादी नही की, न करना ही चाहते है।" इन शब्दोमे गोखलेने मुझे उनका परिचय कराया।

आजके डा० रायमे और उस समयके प्रो० रायमे मुझे थोडा ही भेद दिखाई देता है। जैसे कपडे उस समय पहनते थे आज भी लगभग वैसे ही पहनते है। हा, अब खादी आ गई है। उस समय खादी तो थी ही नहीं। स्वदेशी मिलोके कपडे होगे। गोखले और प्रो० रायकी बाते सुनते हुए मै न अघाता था, क्योकि उनकी बाते या तो देश-हितके सबधमे होती या होती ज्ञान-चर्चा। कितनी ही बाते दुखद भी होती; क्योकि उनमे नेताओकी आलोचना भी होती थी। जिन्हे मै महान् योद्धा मानना सीखा था, वे छोटे दिखाई देने लगे।

गोखलेकी काम करनेकी पद्धतिसे मुझे जितना आनद हुआ उतना ही बहुत कुछ सीखा भी। वह अपना एक भी क्षण व्यर्थ न जाने देते थे। मैने देखा कि उनके तमाम सबध देश-कार्यके ही लिए होते थे। बाते भी तमाम देश-कार्यके ही निमित्त होती थी। बातोमे कही भी मलिनता, दभ या असत्य न दिखाई दिया। हिदुस्तानकी गरीबी और पराधीनता उन्हे प्रतिक्षण चुभती थी। अनेक लोग उन्हे अनेक बातोमे दिलचस्पी कराने आते। वे उन्हे एक ही उत्तर देते, "आप इस कामको कीजिए,

मुझे अपना काम करने दीजिए। मुझे देशकी स्वाधीनता प्राप्त करनी है। उसके बाद मुझे दूसरी बाते सूझेगी। अभी तो इस कामसे मुझे एक क्षण-की भी फुरसत नही रहती।"

रानडेके प्रति उनका पूज्य भाव बात-बातमे टपका पड़ता था। 'रानडे ऐसा कहते थे'—यह तो उनकी बातचीतका मानो 'सूत-उवाच' ही था। मेरे वहा रहते हुए रानडेकी जयती (या पुण्यतिथि, अब ठीक याद नही है) पडती थी। ऐसा जान पड़ा, मानो गोखले सर्वदा उसको मनाते हो। उस समय मेरे अलावा उनके मित्र प्रोफेसर काथवटे तथा दूसरे एक सज्जन थे। उन्हे उन्होने जयती मनानेके लिए निमत्रित किया और उस अवसरपर उन्होंने हमे रानडेके कितने ही सस्मरण कह सुनाये। रानडे, तैलग और माडलिककी तुलना की। ऐसा याद पडता है कि तैलगकी भाषाकी स्तुति की थी। माडलिककी सुधारकके रूपमे प्रशसा की थी। अपने मवक्किलोकी वह कितनी चिता रखते थे, इसका एक उदाहरण दिया। एक बार गाडी चूक गई तो माडलिक स्पेशल ट्रेन करके गये। यह घटना कह सुनाई। रानडेकी सर्वाङ्गीण शक्तिका वर्णन करके बताया कि वह तत्कालीन अग्रणियोमे सर्वोपरि थे। रानडे अकेले न्यायमूर्ति न थे। वह इतिहासकार थे, अर्थ-शास्त्री थे। सरकारी जज होते हुए भी काग्रेसमे प्रेक्षकके रूपमे निर्भय होकर आते। फिर उनकी समझ-दारीपर लोगोका इतना विश्वास था कि सब उनके निर्णयोको मानते थे। इन बातोका वर्णन करते हुए गोखलेके हर्षका ठिकाना न रहता था।

गोखले घोडा-गाड़ी रक्खे हुए थे। मैने उनसे इसकी शिकायत की। मै उनकी कठिनाइयोको न समझ सका था। "क्या आप सब जगह ट्राममे नही जा सकते ? क्या इससे नेताओकी प्रतिष्ठा कम हो जायगी ?"

कुछ दुखित होकर उन्होने उत्तर दिया, "क्या तुम भी मुझे नही पह-चान सके ? बडी धारा-सभासे जो कुछ मुझे मिलता है उसे मे अपने काममें नही लेता। तुम्हारी ट्रामके सफरपर मुझे ईर्ष्या होती है। पर मै ऐसा

नही कर सकता। जब तुमको मेरे जितने लोग पहचानने लग जावेगे तब तुम्हे भी ट्राममे बैठना असभव नही तो मुश्किल हो जायगा। नेता लोग जो कुछ करते है, केवल आमोद-प्रमोदके ही लिए करते है, यह माननेका कोई कारण नही। तुम्हारी सादगी मुझे पसद है। मै भरसक सादगीसे रहता हू; पर यह बात निश्चित समझना कि कुछ खर्च तो मुझ-जैसोके लिए अनिवार्य हो जाता है।"

इस तरह मेरी एक शिकायत तो ठीक तरहसे रद हो गई; पर मुझे एक दूसरी शिकायत भी थी और उसका वह सतोष-जनक उत्तर न दे सके।

"पर आप घूमने भी तो पूरे नही जाते। ऐसी हालतमे आप बीमार क्यो न रहे ? क्या देश-कार्यसे व्यायामके लिए फुरसत नही मिल सकती ?" मैने कहा।

"मुझे तुम कब फुरसतमे देखते हो कि जिस समय मै घूमने जाता ?" उत्तर मिला।

गोखलेके प्रति मेरे मनमे इतना आदर-भाव था कि मै उनकी बातोका जवाब न देता था। इस उत्तरसे मुझे सतोष न हुआ, पर मै चुप रहा। मै मानता था और अब भी मानता हू कि जिस तरह हम भोजन-पानेके लिए समय निकालते है उसी तरह व्यायामके लिए भी निकालना चाहिए। मेरी यह नम्र सम्मति है कि उससे देश-सेवा कम नही, अधिक होती है।

(आ०, १९२७)

ब्रह्मदेशसे लौटकर मैने गोखलेसे बिदा मागी। उनका वियोग मेरे लिए दु सह था, परतु मेरा बगालका, अथवा सच पूछिए तो यहा कलकत्तेका, काम समाप्त हो गया था।

मेरा विचार था कि काममे लगनेसे पहले मैं थोडा-बहुत सफर तीसरे दर्जेमे करू, जिससे तीसरे दर्जेके मुसाफिरोकी हालत मै जान लू और

दु खोको समझ लू। गोखलेके सामने मैने अपना यह विचार रक्खा। पहले तो उन्होने इसे हँसीमे टाल दिया, पर जब मैने यह बताया कि इसमे मैने क्या-क्या बाते सोच रक्खी है तब उन्होने खुशीसे मेरी योजना-को स्वीकार किया। सबसे पहले मैने काशी जाकर विदुषी ऐनी बेसेटके दर्शन करना तै किया। वह उस समय बीमार थी।

तीसरे दर्जेकी यात्राके लिए मुझे नया साज-सामान जुटाना था। पीतलका एक डिब्बा गोखलेने खुद ही दिया और उसमे मेरे लिए मगदके लड्डू और पूरी रखवा दी। बारह आनेका एक केनवासका बैग खरीदा। छाया (पोरबदरके नजदीकके एक गाव) के ऊनका एक लबा कोट बनवाया था। बैगमे यह कोट, तौलिया, कुरते और धोती रक्खे। ओढनेके लिए एक कबल साथ लिया। इसके अलावा एक लोटा भी साथ रक्खा। इतना सामान लेकर मै रवाना हुआ।

गोखले और डा० राय मुझे स्टेशन पहुचाने आये। मैने दोनोसे अनुरोध किया था कि वे न आवे, पर उन्होने एक न सुनी। "तुम यदि पहले दर्जेमे सफर करते तो मै नही आता, पर अब तो जरूर चलूगा।"—गोखले बोले।

प्लेटफार्मपर जाते हुए गोखलेको तो किसी ने न रोका। उन्होने सिरपर अपनी रेशमी पगडी बाध रक्खी थी और धोती तथा कोट पहने हुए थे। डा० राय बगाली लिबासमे थे। इसलिए टिकटबाबूने अदर आते हुए पहले तो रोका, पर गोखलेने कहा—"मेरे मित्र है।" तब डा० राय भी अदर आ सके। इस तरह दोनोने मुझे विदा दी। (आ०, १९२७)

• •

विलायतमे मुझे पसलीके वरमकी शिकायत हो गई थी। इस बीमारी-के वक्त गोखले विलायतमे आ पहुचे थे। उनके पास मै व कैलनबेक हमेशा जाया करते। उनसे अधिकाशमे युद्धकी ही बाते हुआ करती। जर्मनीका भूगोल कैलनबेककी जबानपर था, यूरोपकी यात्रा भी उन्होने

बहुत की थी। इसलिए वह नक्शा फैलाकर गोखलेको लडाईकी छावनिया दिखाते ।

जब मै बीमार हुआ था तब मेरी बीमारी भी हमारी चर्चाका एक विषय हो गई थी । मेरे भोजनके प्रयोग तो उस समय भी चल ही रहे थे । उस समय मै मूगफली, कच्चे और पक्के केले, नीबू, जैतूनका तेल, टमाटर , अगूर इत्यादि चीजे खाता था । दूध, अनाज, दाल, वगैरह चीजे बिलकुल न लेता था । मेरी देखभाल जीवराज मेहता करते थे । उन्होने मुझे दूध और अनाज लेनेपर बडा जोर दिया । इसकी शिकायत ठेठ गोखलेतक पहुची । फलाहार-सबधी मेरी दलीलोके वह बहुत कायल न थे । तदुरुस्तीकी हिफाजतके लिए डाक्टर जो-जो बतावे वह लेना चाहिए, यही उनका मत था ।

गोखलेके आग्रहको न मानना मेरे लिए बहुत कठिन बात थी । जब उन्होने बहुत ही जोर दिया तब मैने उनसे २४ घटेतक विचार करनेकी इजाजत मागी । कैलनबेक और मै घर आए । रास्तेमे मैने उनके साथ चर्चा की कि इस समय मेरा क्या धर्म है । मेरे प्रयोगमे वह मेरे साथ थे । उन्हे यह प्रयोग पसद भी था । परतु उनका रुख इस बातकी तरफ था कि यदि स्वास्थ्यके लिए मै इस प्रयोगको छोड दू तो ठीक होगा । इसलिए अब अपनी अतरात्माकी आवाजका फैसला लेना ही बाकी रह गया था ।

सारी रात मै विचारमे डूबा रहा । अब यदि मै अपना सारा प्रयोग छोड दू तो मेरे सारे विचार और मतव्य धूलमे मिल जाते थे । फिर उन विचारोमे मुझे कही भी भूल न मालूम होती थी। इसलिए प्रश्न यह था कि किस अशतक गोखलेके प्रेमके अधीन होना मेरा धर्म है, अथवा शरीर-रक्षाके लिए ऐसे प्रयोग किस तरह छोड देने चाहिए । अतको मैने यह निश्चय किया कि धार्मिक दृष्टिसे प्रयोगका जितना अश आवश्यक है उतना रक्खा जाय और शेष बातोमे डाक्टरोकी आज्ञाका पालन किया

जाय। मेरे दूध त्यागनेमे धर्म-भावनाकी प्रधानता थी। कलकत्तेमे गाय-भैसका दूध जिन घातक विधियो द्वारा निकाला जाता है, उसका दृश्य मेरी आखोके सामने था। फिर यह विचार भी मेरे सामने था कि मासकी तरह पशुका दूध भी मनुष्यकी खुराक नही हो सकता। इसलिए दूध-त्यागका दृढ निश्चय करके मै सुबह उठा। इस निश्चयमे मेरा दिल बहुत हलका हो गया था, किंतु फिर भी गोखलेका भय तो था ही, किंतु साथ ही मुझे यह विश्वास था कि वह मेरे निश्चयको उलटनेका उद्योग न करेगे।

शामको 'नेशनल लिबरल क्लब' मे हम उनसे मिलने गए। उन्होने तुरत पूछा, "क्यो डाक्टरकी सलाहके अनुसार चलनेका निश्चय किया है न?"

मैने धीरेसे जवाब दिया, "और सब बात मान लूगा, परतु आप एक बातपर जोर न दीजिएगा। दूध और दूधकी बनी चीजे और मास, इतनी चीजे मै न लूगा, और इनके न लेनेसे यदि मौत भी आती हो तो मै समझता हू उसका स्वागत कर लेना मेरा धर्म है।"

"आपने यह अतिम निर्णय कर लिया है?" गोखलेने पूछा।

"मै समझता हू कि इसके सिवा मै आपको दूसरा उत्तर नही दे सकता। मै जानता हूं कि इससे आपको दुःख होगा, परतु मुझे क्षमा कीजिएगा।" मैने जवाब दिया।

गोखलेने कुछ दुःखसे, परतु बडे ही प्रेमसे कहा "आपका यह निश्चय मुझे पसद नही। मुझे इसमे धर्मकी कोई बात नही दिखाई देती। पर अब मै इस बातपर जोर न दूगा।" यह कहते हुए जीवराज मेहताकी ओर मुखातिब होकर उन्होने कहा—"अब गाधीजीको ज्यादा दिक न करो। उन्होने जो मर्यादा बाध ली है उसके अदर उन्हे जो-जो चीजे दी जा सकती है, वही देनी चाहिए।"

डाक्टरने अपनी अप्रसन्नता प्रकट की, पर वह लाचार थे। मुझे

मूगका पानी लेनेकी सलाह दी। कहा, "उसमे हीगका बघार दे लेना।" मैने इसे मजूर कर लिया। एक-दो दिन मैने वह पानी लिया भी; परतु इससे उलटे मेरा दर्द बढ गया। मुझे वह मुआफिक नही हुआ। इससे मै फिर फलाहारपर आ गया। ऊपरके इलाज तो डाक्टरने जो मुनासिब समझे किए ही। उससे अलबत्ता कुछ आराम था। परतु मेरी इन मर्यादाओपर वह बहुत बिगडते। इसी बीच गोखले भारतको रवाना हुए, क्योकि वह लदनका अक्तूबर-नवबरका कोहरा सहन नही कर सके। (आ० १९२७)

मेरे बबई पहुचते ही गोखलेने मुझे तुरत खबर दी कि बबईके गवर्नर आपसे मिलना चाहते है और पूना आनेके पहले आप उनसे मिल आवे तो अच्छा होगा। इसलिए मै उनसे मिलने गया।

× × ×

अब मै पूना पहुचा। वहाके तमाम सस्मरण लिखना मेरे सामर्थ्यके बाहर है। गोखलेने और भारत-सेवक-समितिके सदस्योने मुझे प्रेमसे पाग दिया। जहातक मुझे याद है, उन्होने तमाम सदस्योको पूना बुलाया था। सबके साथ दिल खोलकर मेरी बाते हुई। गोखलेकी तीव्र इच्छा थी कि मै भी समितिमे आजाऊ। इधर मेरी तो इच्छा थी ही, परतु उसके सदस्योकी यह धारणा हुई कि समितिके आदर्श और उसकी कार्य-प्रणाली मुझसे भिन्न थी। इसलिए वे दुविधामे थे कि मुझे सदस्य होना चाहिए या नही। गोखलेकी यह मान्यता थी कि अपने आदर्शपर दृढ रहनेकी जितनी प्रवृत्ति मेरी थी उतनी ही दूसरोके आदर्शकी रक्षा करने और उनके साथ मिल जानेका स्वभाव भी था। उन्होने कहा, "परतु हमारे साथी आपके दूसरोको निभा लेनेके इस गुणको नही पहचान पाए है। वे अपने आदर्शपर दृढ रहनेवाले स्वतत्र और निश्चित विचारके लोग है। मै आशा तो यही रखता हू कि वे आपको सदस्य बनाना मजूर

कर लेगे, परतु यदि न भी करे तो आप इससे यह तो हरगिज न समझेगे कि आपके प्रति उनका प्रेम या आदर कम है। अपने इस प्रेमको अखडित रहने देनेके लिए ही वे किसी तरहकी जोखिम उठानेसे डरते है, परतु आप समितिके बाकायदा सदस्य हो, या न हो, मै तो आपको सदस्य मानकर ही चलूगा।"

मैने अपना सकल्प उनपर प्रकट कर दिया था। समितिका सदस्य बनू या न बनू, एक आश्रमकी स्थापना करके फिनिक्सके साथियोको उसमे रखकर मै बैठ जाना चाहता था। गुजराती होनेके कारण गुजरातके द्वारा सेवा करनेकी पूजी मेरे पास अधिक होनी चाहिए, इस विचारसे गुजरातमे ही कही स्थिर होनेकी इच्छा थी। गोखलेको यह विचार पसद आया और उन्होने कहा—"जरूर आश्रम स्थापित करो। सदस्योके साथ जो बातचीत हुई है उसका फल कुछ भी निकलता रहे, परतु आपको आश्रमके लिए धन तो मुझ ही से लेना है। उसे मै अपना ही आश्रम समझूगा।"

यह सुनकर मेरा हृदय फूल उठा। चदा मागनेकी झझटसे बचा, यह समझकर बडी खुशी हुई और इस विचारसे कि अब मुझे अकेले अपनी जिम्मेदारीपर कुछ न करना पडेगा, बल्कि हरेक उलझनके समय मेरे लिए एक पथ-दर्शक यहा है। ऐसा मालूम हुआ मानो मेरे सिरका बोझ उतर गया।

गोखलेने स्वर्गीय डाक्टर देवको बुलाकर कह दिया, "गाधीका खाता अपनी समितिमे डाल लो और उनको अपने आश्रमके लिए तथा सार्वजनिक कामोके लिए जो कुछ रुपया चाहिए, वह देते जाना।"

अब मै पूना छोडकर शातिनिकेतन जानेकी तैयारी कर रहा था। अतिम रातको गोखलेने खास मित्रोकी एक पार्टी इस विधिसे की, जो मुझे रुचिकर होती। उसमे वही चीजे अर्थात् फल और मेवे मगाए थे, जो मै खाया करता था। पार्टी उनके कमरेसे कुछ ही दूरपर थी। उनकी

हालत ऐसी न थी कि वे वहातक भी आ सकते, परतु उनका प्रेम उन्हे कैसे रुकने देता ! वह जिद करके आए थे; परतु उनको गश आ गया और वापस लौट जाना पडा। ऐसा गश उन्हे बार-बार आ जाया करता था, इसलिए उन्होने कहलाया कि पार्टीमे किसी प्रकारकी गडबड न होनी चाहिए। पार्टी क्या थी, समितिके आश्रममे अतिथि-घरके पासके मैदानमे जाजम बिछाकर हम लोग बैठ गये थे और मूगफली, खजूर वगैरह खाते हुए प्रेम-वार्ता करते थे एव एक-दूसरेके हृदयको अधिक जाननेका उद्योग करते थे।

किंतु उनकी यह मूर्छा मेरे जीवनके लिए कोई मामूली अनुभव नही था। *(आ० १९२७)*

राजनैतिक क्षेत्रमे मैने अपने आपको उस महात्माका शिष्य कहा है और मै उसे राजनैतिक बातोमे अपना गुरू मानता हू और यह बात मै भारतवासियोकी ओरसे कहता हू। सन् १८९६ मे मैने अपने शिष्य होनेकी बात कही थी और मुझे अपनी इस पसदके लिए कभी दुख नही हुआ।

मि० गोखलेने मुझे इस बातकी शिक्षा दी थी कि प्रत्येक भारतवासीको, जो अपने देशके प्रेमका दम भरता हो, सदा राजनैतिक क्षेत्रमे कार्य करनेका ध्यान रखना चाहिए। उसे केवल जबानी जमा-खर्च ही नही करना चाहिए, बल्कि उसे देशके राजनैतिक जीवन तथा राजनैतिक सस्थाओको आध्यात्मिक बनाना चाहिए। उन्होने मेरे जीवनमे उत्तेजना उत्पन्न की तथा वे अब भी उत्तेजना उत्पन्न कर रहे है। उस उत्तेजनासे मै अपने आपको पवित्र करना चाहता हू तथा अपने आपको आध्यात्मिक बनाना चाहता हू। मैने उस आदर्शके लिए अपने आपको समर्पित कर दिया है। मुझे इसमे विफलता हो सकती है और जिस सीमा तक मुझे उसमे विफलता होगी उस सीमातक मै अपने आपको अपने गुरुका अयोग्य शिष्य समझूगा। . .

मैं उस महात्मा राजनीतिज्ञके समीप उनके जीवनके अंत समय तक रहा और मैंने उनमे कभी अहभाव नही पाया। जातीय-सेवा-सभाके आप सभासदोसे मैं प्रश्न करता हू कि आप लोगोमे किसी प्रकारका अहभाव तो नही है ? यदि महात्मा गोखलेने कीर्त्तिशाली होना चाहा तो केवल देशके राजनैतिक क्षेत्रमे कीर्त्तिशाली होना चाहा। उनकी यह इच्छा इस-लिए नही थी कि सर्वसाधारण मेरी प्रसशा करे, बल्कि यह इच्छा इसलिए थी कि मेरे देशका लाभ—मेरे देशका कल्याण—हो। उन्होने सर्वसाधा-रणकी प्रशसाकी कभी कामना नही की थी, पर स्वय सर्वसाधारण ही उन पर प्रशसाकी वर्षा करते थे, वे जबरदस्ती उनकी तारीफे करते थे। वे चाहते थे कि मेरे देशका लाभ हो और यही उनका बहुत बडा दैवी बल था।

आज आप लोग मुझसे इस चित्रको उद्घाटित करनेके लिए कहते है। मै यह काम पूरी ईमानदारी, हृदयकी पूरी सत्यता और शुद्धताके साथ करूगा और यही ईमानदारी या हृदयकी शुद्धता जीवनका अतिम उद्देश्य होना चाहिए।* ('महात्मा गाधी'—रामचद्र वर्मा, पृष्ठ ४१)

. . . .

गोखलेकी पुण्यतिथिके अवसरपर उस स्वर्गस्थ महात्माके भाषणों तथा लेखोंका गुजराती अनुवाद प्रकाशित करनेका विचार पहलेपहल मेरे ही मनमे उत्पन्न हुआ था। इसलिए उसके पहले भागकी प्रस्तावना अधिकाशमे मुझको ही लिखना उचित था। हम लोगोने नियम किया है कि हरसाल गोखलेकी पुण्यतिथि मनावेगे। भजन, कीर्त्तन, व्याख्यान और तदनतर सभाका विसर्जन—यह हर साल ही होता है। इससे काल-क्षेप तो बहुत होता है, पर उससे कोई वास्तविक लाभ नही होता। अत.

---

*बंगलौरमें गोखलेकी मूर्ति-अनावरणके समय प्रकट किये गए उद्गार।

भाषणोकी अपेक्षा कार्यको अधिक महत्व देने तथा ऐसे उत्सवोको सर्व-साधारणके लिए सचमुच लाभदायक बनानेके लिए गत वर्ष पुण्य-तिथिके प्रबन्ध-कर्त्ताओने इस अवसर पर मातृभाषामे कोई उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करना निश्चित किया था। पुस्तक चुननेमे भी देर नही लगी। स्वभावत ही पहली पुस्तक स्वर्गीय गोखले के भाषणोका सग्रह पसन्दकी गई।

स्व० गोखलेके विषयमें दो-चार शब्द लिखना ही सच्ची प्रस्तावना हो सकता है; परतु गुरुके विषयमे शिष्य क्या लिखे और कैसे लिखे ? उसका लिखना एक प्रकारकी धृष्टतामात्र है। सच्चा शिष्य वही है जो गुरुमे अपनेको लीन कर दे, अर्थात् वह टीकाकार हो ही नही सकता। जो भक्ति दोष देखती हो वह सच्ची भक्ति नही और दोषगुणके पृथक्करणमे असमर्थ लेखक द्वारा की हुई गुरु-स्तुतिको यदि सर्वसाधारण अगीकार न करे तो इसपर उसे नाराज होनेका अधिकार नही हो सकता। शिष्यके आचरणो हीसे गुरुकी टीका होती है। गोखले राजनैतिक विषयोमे मेरे गुरु थे, इस बातको मै अनेक बार कह चुका हू। इस कारण उनके विषयमे कुछ लिखनेमे मै अपनेको असमर्थ समझता हू। मै चाहे जितना लिख जाऊ, मुझे थोडा ही मालूम होगा। मेरे विचारसे गुरु-शिष्यका सबध शुद्ध आध्यात्मिक सबध है। वह अकशास्त्रके नियमानुसार नही होता। कभी-कभी वह हमारे बिना जाने भी हो जाता है। उसके होनेमे एक क्षणसे अधिक नही लगता, पर एक बार होकर वह फिर टूटना जानता ही नही।

१८९६ ई० मे पहले-पहल हम दोनो व्यक्तियोमे यह सबध हुआ। उस समय न मुझे उनका ख्याल था और न उन्हे मेरा। उसी समय मुझे गुरुजीके भी गुरु लोकमान्य तिलक, सर फिरोजशाह मेहता, जस्टिस बदरुद्दीन तैयबजी, डा० भाडारकर तथा बगाल और मद्रास प्रातके और भी अनेक नेताओके दर्शनोका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मै उस समय बिल्कुल

नवयुवक था, मुझपर सबने प्रेम-वृष्टि की। सबके एकत्र दर्शनका वह प्रसग मुझे कभी न भूलेगा, परतु गोखलेसे मिलकर मेरा हृदय जितना शीतल हुआ उतना औरोसे मिलनेसे नही हुआ। मुझे याद नही आता कि गोखलेने मुझपर औरोकी अपेक्षा अधिक प्रेम-वृष्टि की थी। तुलना करनेसे मै कह सकता हू कि डा० भाडारकर ने मुझपर जितना अनुराग प्रकट किया उतना और किसीने नही किया। उन्होने कहा——यद्यपि मै आजकल सार्वजनिक कार्योमे अलग रहता हू, पर फिर भी केवल तुम्हारी खातिर मै उस सभाका अध्यक्ष बनना स्वीकार करता हू, जो तुम्हारे प्रश्नपर विचार करनेके लिए होनेवाली है। यह सब होते हुए भी केवल गोखले हीने मुझे अपने प्रेम-पाशमे आबद्ध किया। उस समय मुझे इस बातका बिलकुल ज्ञान नही हुआ। पर सन् १६०२ वाली कलकत्तेकी काग्रेसमे मुझे अपने शिष्य-भावका पूरा-पूरा अनुभव हुआ। उपर्युक्त नेताओमेसे अनेकके दर्शनोका उस समय मुझे फिर सौभाग्य प्राप्त हुआ। कितु मैने देखा कि गोखलेको मेरी याद बनी हुई थी। देखते ही उन्होने मेरा हाथ पकड लिया। वे मुझे अपने घर खीच ले गए। मुझे भय था कि विषय-निर्वाचिनी-समितिमे मेरी बात न सुनी जायगी। प्रस्तावोकी चर्चा शुरू हुई और खतम भी हो गई, पर मुझे अततक यह कहनेका साहस न हुआ कि मेरे मनमें भी दक्षिण अफ्रीका सबधी एक प्रश्न है। मेरे लिए रातको कौन बैठा रहता! नेतागण कामको जल्दी निपटानेके लिए आतुर हो गए। उनके उठ जानेके डरसे मै कापने लगा। मुझे गोखलेको याद दिलानेका भी साहस न हुआ। इतनेमे वे स्वय ही बोले——मि० गाधी भी दक्षिण अफ्रीकाके हिदुस्तानियोकी दशाके सबधमे एक प्रस्ताव करना चाहते है। उस पर अवश्य विचार किया जाय। मेरे आनदकी सीमा न रही। राष्ट्रसभाके सबधमे मेरा यह पहला ही अनुभव था। इसलिए उससे स्वीकृत होनेवाले प्रस्तावोका मै बडा महत्व समझता था। इसके बाद भी उनके दर्शनके कितने ही अवसर उपस्थित हुए और वे सभी पवित्र है। पर इस समय जिस बातको मै उनका महामत्र

मानता हू, उसका उल्लेखकर, इस प्रस्तावनाको पूर्ण करना उत्तम होगा।

इस कठिन कलिकालमे किसी विरले ही मनुष्यमे शुद्ध धर्मभाव देख पडता है। ऋषि, मुनि, साधु आदि नाम धारणकर भटकते फिरनेवालोंको इस भावकी प्राप्ति शायद ही कभी होती है। आजकल उनका धर्म-रक्षक पदसे च्युत हो जाना सभी लोग देख रहे हैं। यदि एक ही सुदर वाक्यमे धर्मकी पूरी व्याख्या कही है तो वह भक्त-शिरोमणि गुजराती कवि नरसिह मेहताके इस वाक्यमे है .

"ज्यां लगी आतमा तत्व चीन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व जूठी।"

अर्थात्—जबतक आत्मतत्वकी पहचान न हो तबतक सभी साधनाए निरर्थक है। यह वचन उसके अनुभव-सागरके मथनसे निकला हुआ रत्न है। इससे ज्ञात होता है कि महातपस्वी तथा योगी जनोमे भी (सच्चा) धर्मभाव होना अनिवार्य नही है। गोखलेको आत्मतत्वका उत्तम ज्ञान था, इसमे मुझे तनिक भी सदेह नही। यद्यपि वे सदा ही धार्मिक आडबरसे दूर रहे, फिर भी उनका सपूर्ण जीवन धर्ममय था। भिन्न-भिन्न युगोमें मोक्ष-मार्ग पर लगानेवाली प्रवृत्तिया देखी गई है। जब-जब धर्मबधन ढीला पडता है तब-तब कोई एक विशेष प्रवृत्ति धर्म-जागृतिमे विशेष उपयोगी होती है। यह विशेष प्रवृत्ति उस समयकी परिस्थितिके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है। आजकल हम अपनेको राजनैतिक विषयोमे अवनत देखते है। एकागी दृष्टिसे विचार करनेसे जान पड़ेगा कि राजनैतिक सुधारसे ही अन्य बातोमे हम उन्नति कर सकेगे। यह बात एक प्रकारसे सच भी है। राजनैतिक अवस्थाके सुधारके बिना उन्नति होना सभव नही। पर राजनैतिक स्थितिमे परिवर्तन होने हीसे उन्नति न होगी। परिवर्तनके साधन यदि दूषित तथा घृणित हुए तो उन्नतिके बदले और अवनति ही होनेकी अधिकतर सभावना है। जो परिवर्त्तन शुद्ध और पवित्र साधनोसे किया जाता है वही हमे उच्च मार्गपर ले जा सकता है।

सार्वजनिक कामोमे पडते ही गोखलेको इस तत्वका ज्ञान हो गया था और इसको उन्होने कार्य मे भी परिणत किया। यह बात सभी लोग जानते थे कि यह भव्य विचार उन्होने अपने भारत-सेवक-समिति तथा संपूर्ण जन-समुदायके सम्मुख रक्खा कि यदि राजनीतिको धार्मिक स्वरूप दिया जायगा तो यही मोक्ष-मार्ग पर ले जानेवाली हो जायगी। उन्होने साफ कह दिया कि जबतक हमारे राजनैतिक कार्योको धर्मभावकी सहायता न मिलेगी तब-तक वे सूखे, रसहीन, ही बने रहेगे। उनकी मृत्युपर 'टाइम्स आव इडिया' मे जो लेख प्रकाशित हुआ था उसके लेखकने इस बातका स्पष्ट उल्लेख किया था और राजनैतिक सन्यासी उत्पन्न करने के उनके प्रयत्नकी सफलता पर अविश्वास प्रकट करते हुए, उनकी यादगार 'भारत-सेवक-समिति' का ध्यान इसकी ओर आकर्षित किया था। वर्तमान कालमे राजनैतिक सन्यासी ही सन्यासाश्रमकी गौरववृद्धि कर सकते है। अन्य गेरुवा वस्त्र-धारी सन्यासी उसकी अपकीर्त्तिके ही कारण है। शुद्धधर्म मार्गमे चलने-वाले किसी भारतवासीका राजनैतिक कामोमे परे रहना कठिन है। उसी बातको मै दूसरी तरह अगीकार किए बिना रह ही नही सकता। और आजकलकी राज्य-व्यवस्थाके जालमे हम इस तरह फस गए है कि राजनीतिसे अलग रहते हुए, लोक-सेवा करना सर्वथा असभव ही है। पूर्व समयमे जो किसान इस बातको जाने बिना भी कि जिस देशमे हम बसते है उसका अधिकारी कौन है, अपनी जीवन-यात्रा भलीभाति निर्वाह कर लेता था, वह आज ऐसा नही कर सकता। ऐसी दशामे उसका धर्माचरण राजनैतिक परिस्थितिके अनुसार ही होना चाहिए। यदि हमारे साधु, ऋषि, मुनि, मौलवी और पादरी इस उच्च तत्वको स्वीकार कर ले तो जहा देखिए वही भारत-सेवक-समितिया ही दिखाई देने लगे और भारतमे धर्म-भाव इतना व्यापक हो जाय कि जो राजनैतिक चर्चा आज लोगोको अरुचिकर होती है वही उन्हे पवित्र और प्रिय मालूम होने लगे, फिर पहले ही की तरह भारतवासी धार्मिक साम्राज्यका उपभोग

करने लगे। भारतका बधन एक क्षणमे दूर हो जाय और वह स्थिति प्रत्यक्ष आखोके सामने आ जाय, जिसका दर्शन एक प्राचीन कविने अपनी अमरवाणीमे इस प्रकार किया है—फौलादसे तलवार बनानेका नही बल्कि (हल की) फाल बनानेका काम लिया जायगा और सिह और बकरे साथ-साथ विचरण करेगे। ऐसी स्थिति उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्ति ही गुरुवर गोखलेका जीवन-मत्र थी। यही उनका सदेश है और मुझे विश्वास है कि शुद्ध और सरल मनसे विचार करनेपर उनके भाषणोके प्रत्येक शब्दमे यह मत्र लक्षित होगा।*

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय ! तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

श्रीकृष्णने अर्जुनको जो उपदेश दिया था, वही उपदेश भारत-माताने महात्मा गोखलेको दिया था और उनके आचरणोमे सूचित होता है कि उन्होने उसका पालन भी किया है। यह सर्वमान्य बात है कि उन्होने जो-जो किया, जिस-जिसका उपभोग किया, जो स्वार्थ त्याग किया, जिस तपका आचरण किया, वह सभी कुछ उन्होने भारत-माताके चरणोमें अर्पण कर दिया।

केवल देश ही के लिए जन्म लेनेवाले इस महात्माका अपने देश-बधुओके प्रति क्या सदेश है ? 'भारत-सेवक-समिति' के जो सेवक महात्मा गोखलेके अतिम समयमे उनके पास उपस्थित थे, उन्हे उन्होने निम्नलिखित वाक्य कहे थे :

"(तुम लोग) मेरा जीवन-चरित लिखने न बैठना, मेरी मूर्त्ति बनवानेमे भी अपना समय मत लगाना। तुम लोग भारतके सच्चे सेवक

***स्वर्गीय गोखलेकी गत पुण्य-तिथिके उपलक्षमें उनके भाषणों तथा लेखोंके गुजराती संग्रहकी भूमिका।**

होगे तो अपने सिद्धातके अनुसार आचरण करने अर्थात् भारतकी ही सेवा करनेमें अपनी आयु व्यतीत करोगे ।"

सेवाके सबधमे उनके आतरिक विचार हमे मालूम है । राष्ट्रीय सभाका कार्य सचालन, भाषण तथा लेख द्वारा जनताको देशकी सच्ची स्थितिका ज्ञान कराना, प्रत्येक भारतवासीको साक्षर बनानेका प्रयत्न कराना, ये सब काम सेवा ही है । पर किस उद्देश्य और किस प्रणालीसे यह सेवा की जाय ? इस प्रश्नका वे जो उत्तर देते वह उनके इस वाक्यसे प्रकट होता है । अपनी सस्था ('भारत-सेवक-समिति') की नियमावली बनाते हुए उन्होने लिखा है "सेवकोका कर्त्तव्य भारतके राज-नैतिक जीवनको धार्मिक बनाना है ।" इसी एक वाक्यमे सब-कुछ भरा हुआ है । उनका जीवन धार्मिक था । मेरा विवेक इस बातका साक्षी है कि उन्होने जो-जो काम किए, सब धर्मभाव हीकी प्रेरणासे किए । बीस साल पहले उनका कोई-कोई उद्गार या कथन नास्तिकोका-सा होता था । एक बार उन्होने कहा था—"क्या ही अच्छा होता यदि मुझमे भी वही श्रद्धा होती, जो रानडेमे थी ।" पर उस समय भी उनके कार्योंके मूलमे उनकी धर्म-बुद्धि अवश्य रहती थी । जिस पुरुषका आचरण साधुओके सदृश्य है, जिसकी वृत्ति निर्मल है, जो सत्यकी मूर्ति है, जो नम्र है, जिसने सर्वथा अहकारका परित्याग कर दिया है, वह निस्सदेह धर्मात्मा है । गोखले इसी कोटिके महात्मा थे । यह बात मै उनके लगभग २० वर्षोंकी सगतिके अनुभवसे कह सकता हू ।

१८९६ मे मैने नेटालकी शर्त्तबदीकी मजदूरीपर भारतमे वाद-विवाद आरंभ किया। उस समय कलकत्ता, बबई, पूना, मद्रास आदि स्थानोके नेताओसे मेरा पहले-पहल सबध हुआ । उस समय सब लोग जानते थे कि महात्मा गोखले रानडेके शिष्य है । फर्ग्यूसन कालेजको वे अपना जीवन भी अर्पण कर चुके थे, और मै उस समय एक निरा अनुभव-हीन युवक था । मै पहले-पहल पूनेमे उनसे मिला । इस पहली ही भेंटमे हम

लोगोमें जितना घनिष्ट सबध हो गया उतना और किसी नेतासे नही हुआ । महात्मा गोखलेके विषयमें जो बाते मैंने सुनी थी वे सब प्रत्यक्ष देखनेमें आई । उनकी वह प्रेम-युक्त और हास्यमय मूर्त्ति मुझे कभी न भूलेगी । मुझे उस समय मालूम हुआ कि मानो वे साक्षात् धर्म की ही मूर्त्ति हैं । उस समय मुझे रानडेके भी दर्शन हुए थे । पर उनके हृदयमे मैं स्थान न पा सका । मैं उनके विषयमें केवल इतना ही जान सका कि वे गोखलेके गुरु हैं । अवस्था और अनुभवमें वे मुझसे बहुत अधिक बडे थे, इस कारण अथवा और किसी कारणसे मैं रानडेको उतना न जान सका, जितना कि गोखलेको मैंने जाना ।

१८९६ ई० के अवसरसे ही गोखलेका राजनैतिक जीवन मेरे लिए आदर्श-स्वरूप हुआ । उसी समयसे उन्होने राजनैतिक गुरुके नाते मेरे हृदयमे निवास किया । उन्होने सार्वजनिक सभा (**पूना**) की त्रैमासिक पुस्तकका सपादन किया । उन्होने फर्ग्यूसन-कालेजमें अध्यापन कार्य करके उसे उन्नत दशाको पहुचाया । उन्होंने ब्रेल्वी-कमीशनके सामने गवाही देकर अपनी वास्तविक योग्यताका प्रमाण दिया, उनकी बुद्धिमत्ताकी छाप लार्ड कर्जनपर—उन लार्ड कर्जनपर जो अपने सामने किसीको कुछ न गिनते थे—बैठी और वे उनसे शकित रहने लगे ।

उन्होने बडे-बड़े काम करके मातृभूमिकी कीर्तिको उज्ज्वल किया । पब्लिक-सर्विस-कमीशनका काम करते समय उन्होने अपने जीने-मरने तककी परवा न की । उनके इन तथा अन्य कार्योंका दूसरे व्यक्तियोने उत्तम रीतिसे वर्णन किया है ।

× × ×

जनरल बोथा तथा स्मट्ससे जब उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाकी राजधानी प्रिटोरियामे मुलाकात की थी उस समय इस मुलाकातके लिए तैयार होनेमे उन्होंने जितना परिश्रम किया था वह मुझे इस जन्ममे नही भूल

सकता। मुलाकातके पहले दिन उन्होने मेरी और मि० कैलनबेककी परीक्षा ली। वे स्वय रातके तीन ही बजे जाग पडे और हम लोगोको भी उन्होने जगाया। उन्हे जो पुस्तके दी गई थी उनको उन्होने अच्छी तरह पढ लिया था। अब हम लोगोमे जिरह करके वे इस बातका निश्चय करना चाहते थे कि उनकी तैयारी पूरी हुई या अभी उसमे कसर है। मैंने उनसे विनयपूर्वक कहा कि इतना परिश्रम अनावश्यक है। हम लोगोको तो कुछ मिले या न मिले, लडना ही होगा, पर अपने आरामके लिए मै आपका बलिदान नही करना चाहता। पर जिस पुरुषने सर्वदा काममे लगे रहनेकी आदत ही बना रक्खी थी, वह मेरी बातोपर कब ध्यान देता। उनकी जिरहोका मै क्या वर्णन करू। उनकी चिताशीलताकी कितनी प्रशसा करू। इतने परिश्रमका एक ही परिणाम होना चाहिए था। मत्रि-मडलने वचन दिया कि आगामी बैठकमे सत्याग्रहियोकी आकाक्षाओको स्वीकार करनेवाला कानून पास किया जायगा और मजदूरोको ४५ रुपयोका जो कर देना पडता है वह माफ कर दिया जायगा।

पर इस वचनका पालन नही किया गया। तो क्या गोखले निश्चेष्ट हो बैठ रहे? एक क्षणके लिए भी नही। मेरा विश्वास है कि १९१३ई० मे उक्त वचनको पूरा करानेके लिए उन्होने जो अविराम श्रम किया, उससे उनके जीवनके दस वर्ष अवश्य छीजे होगे। उनके डाक्टरकी भी यही राय है। उस वर्ष भारतमे जागृति उत्पन्न करने और द्रव्य एकत्र करनेके लिए उन्होने जितने कष्ट सहे, उनका अनुमान कठिन है। यह महात्मा गोखलेका ही प्रताप था कि दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नपर भारतवर्ष हिल उठा। लार्ड हार्डिजने मद्रासमे इतिहासमें यादगार होने योग्य जो भाषण दिया वह भी उन्हीका प्रताप था। उनसे घनिष्ट परिचय रखने-वालोंका कहना है कि दक्षिण अफ्रीकाके मामलेकी चिताने उन्हे चारपाईपर डाल दिया, फिर भी अततक उन्होने विश्राम करना स्वीकार न किया।

दक्षिण अफ्रीकासे आधीरातको आनेवाले पत्र-सरीखे लबे-चौड़े तारोको उसी क्षण पढना, जवाब तैयार करना, लार्ड हार्डिजके नाम पर तार भेजना, समाचार-पत्रोमे प्रकाशित कराए जानेवाले लेखका मसविदा तैयार करना और इन कामोकी भीडमे खाने और सोने तककी याद न रहना, रात-दिन एक कर डालना, ऐसी अनन्य निस्स्वार्थ भक्ति वही करेगा जो धर्मात्मा हो।

हिंदू और मुसलमानके प्रश्नको भी वे धार्मिक दृष्टिसे ही देखते थे। एक बार अपनेको हिंदू कहनेवाला एक साधु उनके पास आया और कहने लगा कि मुसलमान नीच है और हिंदू उच्च। महात्मा गोखलेको अपने जालमे फसते न देख उसने उन्हे दोष देते हुए कहा कि तुममे हिंदुत्वका तनिक भी अभिमान नही। महात्मा गोखलेने भवे चढाकर हृदय-भेदी स्वरमे उत्तर दिया—"यदि तुम जैसा कहते हो वैसा करने हीमे हिंदुत्व है तो मै हिंदू नही। तुम अपना रास्ता पकडो।"

महात्मा गोखलेमे निर्भयताका गुण बहुत अधिक था। धर्मनिष्ठामें इस गुणका स्थान प्राय सर्वोच्च है। लेफ्टिनेट रैंडकी हत्याके पश्चात् पूनामे हलचल मच गई थी। गोखले उस समय इंग्लैंडमे थे। पूनावालोकी तरफसे वहा उन्होने जो व्याख्यान दिए वे सारे जगतमे प्रसिद्ध है। उनमें वे कुछ ऐसी बाते कह गए थे, जिनका पीछे वे सबूत न दे सकते थे। थोडे ही दिनो बाद वे भारत लौटे। अपने भाषणोमें उन्होने अंग्रेज सिपाहियोपर जो इलजाम लगाया था उसके लिए उन्होने माफी माग ली। इस माफी मागनेके कारण यहाके बहुतसे लोग उनसे नाराज भी हो गए। महात्माको कितने ही लोगोने सार्वजनिक कामोसे अलग हो जानेकी सलाह दी। कितने ही नासमझोने उनपर भीरुताका आरोप करनेमे भी आगापीछा न किया। इन सबका उन्होने अत्यत गभीर और मधुर भाषामे यही उत्तर दिया—"देश-सेवाका कार्य मैने किसीकी आज्ञासे अगीकार नही किया है और किसीकी आज्ञासे

उसे मै छोड भी नही सकता । अपना कर्त्तव्य करते हुए यदि मै लोकपक्षके साथ रहनेके योग्य समझा जाऊं तो अच्छा ही है, पर यदि मेरे भाग्य वैसे न हो तो भी मै उसे अच्छा ही समझूगा ।" काम करना उन्होने अपना धर्म माना था । जहातक मेरा अनुभव है, उन्होने कभी स्वार्थ-दृष्टिसे इस बातका विचार नही किया कि मेरे कार्योंका जनतापर क्या प्रभाव पडेगा । मेरा विश्वास है कि उनमे वह शक्ति थी जिससे यदि देशके लिए उन्हे फासी पर चढाना होता तो भी वे अविचलित चित्तसे हँसते हुए फासी पर चढ जाते । मै जानता हू कि अनेक बार उन्हे जिन अवस्थाओ मे रहना पडा है उनमे रहनेकी अपेक्षा फासीपर चढ़ना कही सहज था । ऐसी विकट परिस्थितियोका उन्हें अनेक बार सामना करना पडा, पर उन्होने कभी पाव पीछे न हटाया ।

इन सब बातोसे तात्पर्य यह निकलता है कि यदि इस महान् देशभक्तके चरित्रका कोई अश हमारे ग्रहण करने योग्य है तो वह उनका धर्म-भाव ही है । उसीका अनुकरण करना हमे उचित है । हम सब लोग बडी व्यवस्थापिका सभाके सदस्य नही हो सकते । हम यह भी नही देखते कि उसके सदस्य होनेसे देश-सेवा हो ही जाती है । हम सब लोग पब्लिक-सर्विस-कमीशनमे नही बैठ सकते । यह बात भी नही है कि उसमे के सब बैठनेवाले देशभक्त ही होते है । हम सब लोग उनकी बराबरीके विद्वान् नही हो सकते और विद्वानमात्रके देश-सेवक होनेका भी हमे अनुभव नही है । परतु निर्भयता, सत्य, धैर्य, नम्रता, न्यायशीलता, सरलता और अध्यवसाय आदि गुणोका विकास कर उन्हे देशके लिए अर्पण करना सबके लिए साध्य है, यही धर्मभाव है । राजनैतिक जीवनको धर्ममय करनेका यही अर्थ है । उक्त वचनके अनुसार आचरण करनेवालेको अपना पथ सदा ही सूझता रहेगा । महात्मा गोखलेकी सपत्तिका भी वह उत्तराधिकारी होगा । इस प्रकारकी निष्ठासे काम करनेवालेको और भी जिन-जिन विभूतियोकी आवश्यकता होगी वे सब प्राप्त होगी । यह ईश्वरका

वचन है और महात्मा गोखलेका चरित्र इसका ज्वलत प्रमाण है ।*
('महात्मा गांधी'—रामचंद्र वर्मा)

. . . .

मेरे पास एक गुमनाम पत्र आया है । उसमे मेरी प्रशसा करते हुए लेखकने लिखा है, "आपने जिस कामको उठाया है वह लोकमान्यको अतिशय प्रिय था । मालूम होता है, उनकी आत्मा आपमे विराजती है । आपको साहस नही छोडना चाहिए । काम करते जाइए, स्वराज्य आपका है । पर आपने अपनेको गोखलेका शिष्य किस तरह माना है ? यह लिखकर आपने अपनी अप्रतिष्ठा की है ।"

अच्छा हो यदि लेखक गुमनाम पत्र लिखनेकी बुरी आदत छोड दें । यदि हम लोग स्वराज्यके लिए वाकई तत्पर है तो हमे उचित ही है कि भीरुता त्यागकर साहसीकी भाति अपना मत प्रकट करे । चूकि पत्र सार्वजनिक दृष्टिसे महत्वपूर्ण है इसलिए इसका उत्तर दे देना आवश्यक प्रतीत होता है । मै लोकमान्यका अनुयायी नही हू । उनके करोडो देश-वासियोकी तरह मै उनके दृढ साहस, असीम पाडित्य और अगाध देश-प्रेम की हृदयसे प्रशसा करता हू । सबसे अधिक आदर मै उनके पवित्र और नि स्वार्थ जीवनकी करता हू । वर्तमान समाजके मनुष्योमे उन्होने जनताकी दृष्टि अपनी ओर सबसे अधिक आकृष्ट की है । उन्होने हम लोगोके हृदयमें स्वराज्यका बीजारोपण किया । वर्तमान शासनकी बुराइयोको जितना अधिक लोकमान्यने समझा था उतना अधिक और किसीने नहीं, और मै उनके सदेशको भारतकी झोपडियोतक उसी तरह पहुचाना चाहता हू और फैलानेका यत्न कर रहा हू जिस तरह कि उनका अच्छे-से-अच्छा शागिर्द । पर मेरे और उनके तरीकेमे भेद है । यही कारण है कि अभीतक

---

* बंबईकी 'भगिनी-समाज' नामक संस्थासे स्त्रियोके लिए प्रकाशित एक सामयिक पुस्तिका से ।

चद महाराष्ट्र-नेता मेरे साथ एकमत नही हो सके है। पर मेरा यह भी दृढ मत है कि लोकमान्यको मेरे तरीकेपर अविश्वास नही था। मेरे ऊपर उनका दृढ विश्वास था। अपनी मृत्युके कोई दस दिन पहले अपने अनेक मित्रोके सामने उन्होने कहा था कि आपका तरीका सबसे अच्छा है, यदि जनताको समझाकर आप अपने साथ कर सके। लेकिन उन्हे इस बातका सदेह था कि जनता मेरे तरीकेको समझ सकेगी। पर मै दूसरा तरीका जानता ही नही। मै यही चाहता हू कि परीक्षाके समय देश अपनी योग्यता दिखलावे कि उसने अहिसात्मक असहयोगके तत्वको समझ लिया है। मै अपनी अन्य अयोग्यताओको भी जानता हू। मै पाडित्यका दावा नही करता। मुझमे उनके समान सगठन-शक्ति भी नही है। मेरे कार्य-सचालनके लिए शागिर्द भी नही है और साथ ही बीस वर्षतक विदेशोमे रहनेके कारण भारतका मुझे अनुभव भी उतना नही है जितना लोकमान्यको था। हम लोगोमे दो बातोमे समता थी. देशप्रेम तथा स्वराज्य। यह दोनोके हृदयमे एक भावसे विद्यमान थे। इसलिए मै इस गुमनाम पत्रके लेखकको बतला देना चाहता हू कि लोकमान्यकी स्मृतिके लिए मेरे हृदयमे किसीसे कम आदर या मान नही है और स्वराज्यके प्रतिपादनमे मै उनके उत्तम-से-उत्तम शिष्यके साथ आगे बढता रहूगा। मै जानता हू कि उनकी सबसे सच्ची उपासना यही है कि भारतको जल्दी-से-जल्दी स्वराज्य मिल जाय। केवलमात्र इसीसे उनकी आत्माको शाति मिल सकती है।

शिष्य होना परम पवित्र, पर व्यक्तिगत भाव है। मैने १८८८ ई० मे दादाभाईके चरणोमे अपनेको समर्पित किया, पर मेरे आदर्शसे वे बहुत दूर थे। मै उनके पुत्रके स्थानपर हो सकता था, उनका शागिर्द नही हो सकता था। शिष्यका दर्जा पुत्रसे ऊचा है। शिष्य, पुत्र रूपसे, दूसरा जन्म ग्रहण करता है। शिष्य होना अपनी स्वकीय प्रेरणासे समर्पित करना है। १८९६ ई० मे दक्षिण अफ्रीकाके संबधमे भारतके सभी प्रधान नेताओसे मिला। जस्टिस रानडेसे मुझे भय लगता था। उनके सामने मुझे बयान

करनेका भी साहस नही होता था। बदरुद्दीन तैयबजी पिताकी तरह प्रतीत हुए। उन्होने मुझे सलाह दी कि फिरोजशाह मेहता और रानडेके परामर्शसे काम करो। सर फिरोजशाह तो हमारे सरक्षक बन गए। इसलिए उनकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य थी। जो कुछ वे कहते, मै चुपचाप स्वीकार करता। उन्होने मुझसे कहा, "२६ सितबरको सार्वजनिक सभामे तुम्हें भाषण देना होगा।" मैने सहर्ष स्वीकार कर लिया। २५ सितबरको मुझे उनसे मिलना था। मै उनके पास गया। उन्होने मुझसे पूछा, "क्या तुमने अपना भाषण लिखकर तैयार कर डाला है?" मैने उत्तर दिया, "जी, नही।"

उन्होने कहा, "इस तरह काम नही चलेगा। क्या आज रातभरमें लिखकर तैयार कर सकते हो?" इतना कहकर उन्होने अपने मुशीसे कहा, "तुम मिस्टर गाधीके साथ जाओ और व्याख्यान लिखवाकर ले आओ और इसे तुरत छपवा डालो और फौरन एक प्रति मेरे पास भेज दो।" इतना कहनेके बाद उन्होने मुझसे कहा, "लबा-चौडा भाषण मत लिखना। बबईके नागरिक देरतक नही ठहर सकते।" मैने चुपचाप स्वीकार कर लिया।

बबईके उस शेरने मुझे आज्ञापालनका मर्म सिखाया। उन्होने मुझे अपना शागिर्द नही बनाया। उन्होने आजमाइश भी नही की।

वहासे मै पूना गया। मै एकदम अजनबी था। जिनके यहा मै टिका था वे मुझे पहले-पहल लोकमान्य तिलकके पास ले गए। जिस समय मै उनसे मिला, वे अपने साथियोसे घिरे बैठे थे। उन्होने मेरी बाते सुनी और कहा, "आपका भाषण सार्वजनिक सभामे होना जरूरी है। पर आप जानते है कि यहा दलबदी है। इससे ऐसा सभापति चाहिए जो किसी दल-विषेशका न हो। यदि इसके लिए आप डाक्टर भाडारकर से मिले तो उत्तम हो।" मैने उनकी सलाह स्वीकार की और लौट आया। सिवा इसके कि स्नेहमय मिलापके भावका प्रदर्शन करके उन्होने मेरी घबराहट

दूर की, नही तो लोकमान्यका उस समय मुझपर कोई अच्छा प्रभाव नही पडा। वहासे मै श्रीयुत गोखलेके पास गया और तब डाक्टर भाडारकरके पास गया। डाक्टर भाडारकरने मेरा उसी तरह स्वागत किया, जिस तरह गुरु शिष्यका करता है।

मिलते ही उन्होने मुझसे कहा, "आप बडे उत्साही और तत्पर कार्य-कर्त्ता प्रतीत होते है, नही तो इतनी गर्मीमे मुझसे कोई भी मिलने नही आता। मैने सार्वजनिक सभाओमे इधर जाना छोड दिया है। पर आपने जिन दयनीय शब्दोमे अफ्रीकाकी दशाका वर्णन किया है, उससे मुझे लाचार होकर यह पद स्वीकार करना पडता है।

उनके चेहरेसे विद्वत्ता टपक रही थी। मेरे हृदयमे श्रद्धाका ज्वार उमड़ आया, पर गुरुभक्तिका भाव फिर भी न भरा। वह हृदय-सिहासन उस समय भी खाली रह गया। मुझे अनेक धीर-वीर मिले, पर राजाकी पदवी तक कोई न पहुच सका।

पर जिस समय मै श्रीयुत गोखलेसे मिलने गया, बाते एकदम बदल गई। मै नही कह सकता कि इसका क्या कारण था। मै उनके घरपर मिलने गया। यह मिलन ठीक उसी प्रकार था जैसा दो चिर विछोही मित्रो या माता और पुत्रका होता है। उनकी नम्र आकृति देखकर मेरा हृदय शात हुआ। दक्षिण अफ्रीका तथा मेरे सबधमे उन्होने जिस तरह पूछताछ की उससे मेरा हृदय श्रद्धासे भर गया। उनसे विदा होते समय मैने अपने दिलमे कहा, "बस मेरे मनका आदमी मिल गया।" उसी समयसे श्रीयुत गोखले मेरे हृदयसे अलग न हो सके। १६०१ मे दूसरी बार दक्षिण अफ्रीकासे लौटा। इस बार मेरी घनिष्टता और भी प्रगाढ हो गई। उन्होने अपने हाथमे मेरा हाथ लेकर पूछना शुरू किया, "किस तरह रहते हो ? क्या कपडा पहनते हो ? भोजन कैसा होता है ?" मेरी माता भी इतनी तत्पर नही थी। मेरे और उनके बीच कोई अतर नही था। यह चक्षु-राग था, अर्थात् प्रथम दर्शनसे ही हृदयमे प्रगाढ प्रेमका अकुर जम गया

था। १९१३ मे इसे कडी परीक्षामे उतरना पड़ा। उस समय मुझे मालूम हुआ कि उनमे सभी गुण वर्तमान हे। चाहे इसके पहले उनमे वे सब गुण न रहे हो, पर इसकी मुझे कोई परवाह नही। मेरे लिए उतना ही काफी था कि मुझे उनमे कोई दोष नही दिखलाई दिए। राजनैतिक क्षेत्रमे वे मुझे सबसे उत्तम व्यक्ति प्रतीत हुए। पर इससे यह न समझना चाहिए कि उनमे और मुझमे मतभेद नही था। सामाजिक नियमोमे मेरा उनका १९०१ तक मतभेद रहा। पश्चिमी सभ्यताके प्रभावपर भी हम लोगोका मतभेद था। अहिंसापर मेरा जो अटल विश्वास था उससे भी उनका मतभेद था। पर इससे हम लोगोमे किसी तरहका अतर नही आ सका। ये सब बाते किसी तरहका मतभेद नही उपस्थित कर सकी। यदि आज वे जीते रहते तो क्या होता, यह कहना व्यर्थ है। मै जानता हू कि मै उनकी आज्ञाका पालन करता होता। मैने इसे इसलिए लिखा है कि उस गुमनाम पत्रमे शागिर्दी-सबधी बातोसे मुझे हार्दिक पीडा हुई। क्या मुझपर इस बातका दोषारोपण किया जा सकता है कि मैने इस सबधको स्वीकार करनेमे देर की ? इस समय जबकि लोग यह कह रहे है कि मै स्वर्गीय गोखलेके दलसे एकदम विरुद्ध हो गया हू तो मेरे लिए उस पवित्र सबधको व्यक्त कर देना नितात आवश्यक था। (य० इ०, पृष्ठ ९०५)

• .. ..

मेरे इस दक्षिणके प्रवासमे कई नवयुवकोने मुझे लिखा है कि अस्पृश्यता तथा अन्य कुरीतियोके, जिनसे हिंदू-समाज पीडित हो रहा है, ब्राह्मण ही दोषी है। ये सारी बुराइया उन्हीकी बदौलत विद्यमान है। स्व० गोखलेके १९ वे पुण्य-वर्षके दिन मै यह लेख लिख रहा हूं। इसलिए स्वभावत ही मुझे उनका हरिजन-प्रेम याद आ रहा है। अस्पृश्यताके कलकसे सर्वथा मुक्त श्री गोखलेको छोडकर मुझे कोई अन्य व्यक्ति याद नही आता। वह मनुष्य-मनुष्यके बीचमे किसी प्रकारकी असमानताकी कल्पना भी नही कर सकते थे। उनकी दृष्टिमे तो मनुष्यमात्र समान थे।

एक बार दक्षिण अफ्रीकामे एक सज्जन उन्हे एक सांप्रदायिक सभामे लिवा ले जानेके लिए उनके पास आए, पर उन्होने इन्कार कर दिया। तब उनके हिंदू-धर्मके प्रति अपील की गई। इसपर वह बिगड उठे। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा और जरा गर्म पडकर उक्त सज्जनसे बोले, "अगर यही हिंदू-धर्म है तो मै हिंदू नही हू।" लोग तो यह सुनकर आश्चर्य-चकित रह गये। किसी व्यक्ति या सप्रदायकी उच्चताकी कल्पनाको वह सहन नही कर सकते थे। विश्वबधुत्वकी भावना उन्होने स्वय अपने जीवनमे चरितार्थ करके दिखा दी, इस बातको उनके साथी खूब जानते है। पारिया (अत्यज) कहे जानेवाले भाइयोसे वह खूब दिल खोलकर मिलते थे। यह बात उनमे नही थी कि वह किसी पर कृपा या अहसान कर रहे है। उनके हृदयमे तो केवल एक सेवाका ही आदर्श था। उनका विश्वास था कि सार्वजनिक आदमी जनताके नेता नही, बल्कि सेवक है। उनकी दृष्टिमे सबसे बडा सेवक ही सबसे बडा नेता था। और स्व० गोखले हर तरह एक सच्चे जन्मना ब्राह्मण थे। वह जन्म-जात अध्यापक भी थे। उनसे जब कोई 'प्रोफेसर' कहता तो बडे प्रसन्न होते थे। विनम्रता-की तो वह मूर्ति थे। राष्ट्रको उन्होने अपना सर्वस्व दे दिया था। चाहते तो वह मालामाल हो जाते, लेकिन उन्होने तो स्वेच्छासे गरीबीका ही बाना पसद किया। गोखले जैसे जन-सेवक पर क्या इन ब्राह्मण-निदको-को गर्व नही होगा? और यह बात नही कि ऐसे ब्राह्मण एक गोखले ही थे। मनुष्य-मनुष्यके बीचमे समानताको माननेवाले ऐसे ब्राह्मणोकी एक खासी लबी सूची बनाई जा सकती है। ब्राह्मणमात्रको दोषी ठहरानेका तो यह अर्थ हुआ कि जो ब्राह्मण आज खास तौरसे स्वय निस्स्वार्थ लोक-सेवा करनेको तैयार है, उनकी उस सेवाके मधुर फलको हम खुद अस्वी-कार कर रहे है। उन लोगोको किसीके प्रशसा-पत्र की जरूरत नही है। उनकी सेवा ही उनका पुरस्कार है। गोखलेने एक महान् अवसरपर लिखा था कि 'जो सेवा किसी व्यक्तिके कहनेसे हाथमे नही ली जाती, वह

किमी दूसरेकी आज्ञासे त्यागी भी नही जा सकती । इसलिए सबसे निरापद नियम तो यह है कि मनुष्यको हम उसके वर्तमान रूपमें ही ग्रहण करे, फिर चाहे जिस कुलमे वह पैदा हुआ हो और उसकी जाति या उसका रग चाहे जो हो । अस्पृश्यता-निवारणके इस आदोलनमे हमे किसीकी सेवाकी चाहे वह कितनी ही छोटी हो, अवगणना नही करनी चाहिए, जहातक कि उसमे सेवाकी भावना है, न कि उद्धार या कृपा की । (ह० से० ६ ३ ३४)

. . . .

(सरोजिनी नायडूकी बात करते-करते गोखलेकी बात बताने लगे । गोखलेका उनके बारेमें मत बताने लगे । कहने लगे,)

"मै तुझसे वहुत सी बाते कर लेता हू जो किसीसे नही करता । करने की है भी नही । ऐसे ही गोखले मेरे साथ सब बाते कर लिया करते थे । उनके मित्र तो बहुत थे, मगर ऐसा कोई नही था कि जिसके सामने नि सकोच अपने मनकी सारी बाते वे कह सके । मुझे उन्होने विश्वास-पात्र समझा और एक-एक आदमीका पृथक्करण करके बता दिया ।" (का० क०, २४ ८ ४२)

: ५७ :

घोषाल

काग्रेसके अधिवेशनको एक-दो दिनकी देर थी । मैने निश्चय किया था कि काग्रेसके दफ्तरमे यदि मेरी सेवा स्वीकार हो तो कुछ सेवा करके अनुभव प्राप्त करू ।

जिस दिन हम आए उसी दिन नहा-धोकर काग्रेसके दफ्तरमे गया ।

श्रीभूपेन्द्रनाथ बसु और श्रीघोषाल मत्री थे। भूपेनबाबूके पास पहुंचकर कोई काम मागा। उन्होने मेरी ओर देखकर कहा, "मेरे पास तो कोई काम नही है, पर शायद मि० घोषाल तुमको कुछ बतावेगे। उनसे मिलो।"

मैं घोषालबाबूके पास गया। उन्होने मुझे नीचेसे ऊपर तक देखा। कुछ मुस्कराए और बोले, "मेरे पास कारकुनका काम है। करोगे ?"

मैंने उत्तर दिया, "जरूर करूगा। अपने बस भर सबकुछ करनेके लिए मै आपके पास आया हू।"

"नवयुवक, सच्चा सेवा-भाव इसीको कहते है।"

कुछ स्वय-सेवक उनके पास खडे थे। उनकी ओर मुखातिब होकर कहा, "देखते हो, इस नवयुवकने क्या कहा ?"

फिर मेरी ओर देखकर कहा, "तो लो, यह चिट्ठियोका ढेर, और यह मेरे सामने पडी है कुरसी। उसे ले लो। देखते हो न, सैकडो आदमी मुझसे मिलने आया करते है। अब मैं उनसे मिलू या जो लोग फालतू चिट्ठिया लिखा करते है उन्हे उत्तर दू ? मेरे पास ऐसे कारकुन नही कि जिनसे मै यह काम करा सकू। इन चिट्ठियोमे बहुतेरी तो फिजूल होगी, पर तुम सबको पढ जाना। जिनकी पहुच लिखना जरूरी हो उनकी पहुच लिख देना और जिनके उत्तरके लिए मुझसे पूछना हो पूछ लेना।"

उनके इस विश्वाससे मुझे बडी खुशी हुई।

श्रीघोषाल मुझे पहचानते न थे। नाम-ठाम तो मेरा उन्होने बादको जाना। चिट्ठियोके जवाब आदिका काम आसान था। सारे ढेरको मैंने तुरत निपटा दिया। घोषालबाबू खुश हुए। उन्हे बात करनेकी आदत बहुत थी। मै देखता था कि वह बातोमे बहुत समय लगाया करते थे। मेरा इतिहास जाननेके बाद तो कारकुनका काम देनेमे उन्हें जरा शर्म मालूम हुई; पर मैंने उन्हे निश्चित कर दिया।

"कहा मैं और कहा आप ! आप कांग्रेसके पुराने सेवक, मेरे नजदीक तो आप मेरे बुजुर्ग हैं। मैं ठहरा अनुभवहीन नवयुवक ! यह काम सौंपकर मुझपर तो आपने अहसान ही किया है; क्योंकि मुझे आगे चलकर कांग्रेसमें काम करना है। उसके काम-काजका समझनेका अलभ्य अवसर आपने मुझे दिया है।"

"सच पूछो तो यही सच्ची मनोवृत्ति है। परंतु आजकलके नवयुवक ऐसा नहीं मानते। पर मैं तो कांग्रेसको उसके जन्मसे जानता हूं। उसकी स्थापना करनेमें मि० ह्यूमके साथ मेरा भी हाथ था।" घोषालबाबू बोले।

हम दोनोंमें खासा संबंध हो गया। दोपहरके खानेके समय वह मुझे साथ रखते। घोषालबाबूके बटन भी 'बेरा' लगाता। यह देखकर 'बेरा' का काम खुद मैंने लिया। मुझे वह अच्छा लगता। बड़े-बूढ़ोंकी ओर मेरा बड़ा आदर रहता था। जब वह मेरे मनोभावोंसे परिचित हो गए तब अपना निजी सेवाका सारा काम मुझे करने देते थे। बटन लगवाते हुए मुह पिचकारकर मुझसे कहते, "देखो न, कांग्रेसके सेवकको बटन लगाने तककी फुरसत नहीं मिलती, क्योंकि उस समय भी वे काममें लगे रहते हैं।" इस भोलेपनपर मुझे मनमें हँसी तो आई, परंतु ऐसी सेवाके लिए मनमें अरुचि बिलकुल न हुई। उससे जो लाभ मुझे हुआ उसकी कीमत नहीं आंकी जा सकती। (आ०, १९२७)

: ५८ :

चक्रैया

वह (चक्रैया) सेवाग्रामका आश्रमवासी था। नई तालीमके तरीकेपर सीखा था। बड़ा परिश्रमी और दस्तकार था। झूठ, फरेब, क्रोध-जैसे दोष

उसमें नही थे। दैववश उसके दिमागमे कुछ रोग पैदा हो गया। खुद निसर्गोपचारमे ही विश्वास करता था, पर दोस्तोने और डाक्टरोने उसका आपरेशन करनेका आग्रह किया। इस रोगसे उसकी आखोका तेज जाता रहा था। फिर भी उसने आपरेशन-मेजपर जानेसे पहले मुझे बडी कोशिशसे पत्र लिखा था कि प्राकृतिक चिकित्सा मुझे प्रिय है, पर आपरेशनका प्रयोग करानेके लिए भी मै तैयार हू और मौत आएगी तो राम-नाम लेता हुआ मरूगा। आखिर बबईके अस्पतालमे आपरेशन किया गया और आपरेशन-मेजपर ही उसके प्राण छूट गए।

उसके जानेपर रोना आता है, पर मै रो नही सकता, क्योकि मै रोऊ तो किसके लिए रोऊ और किसके लिए न रोऊ? भारतमाताको अगर बच्चे चाहिए तो बकौल तुलसीदासजी, ऐसे ही चाहिए, जो या तो दाता हों, या शूर। चक्रैया दाता था, क्योकि वह नि स्वार्थ सेवक और परम सतोषी था और शूर भी था, क्योकि उसन अपने हाथसे मृत्युको अपना लिया। वह हरिजन था, पर उसके दिलमे हरिजन-सवर्ण, हिदू-मुसलमान-जैसे भेद न थे। वह सबको इसान मानता था और स्वय सच्चा इसान था। (प्रा० प्र०, ३१ ५ ४७)

: ५६ :

विन्स्टन चर्चिल

मेरे पास एक बुलद चीज है और वह है लोकमत। लोकमतमें बडी प्रचड शक्ति है। अभी हमारे यहा इस शब्दका अर्थ पूरे जोरमे प्रकट नही हुआ है; पर अग्रेजीमे उस शब्दका अर्थ बडा जोरदार है। अग्रेजीमे इसे 'पब्लिक ओपिनियन' कहते हैं और उसके सामने बादशाह भी कुछ

नही कर सकता। चर्चिल जो इतना बडा बहादुर है और जो ऊंचे खानदान-का, बडा भारी वक्ता, बहुत ही विद्वान—मेरे जैसा अनजान बिलकुल नही है—यह सबकुछ होते हुए भी अपनी गद्दी न सभाल सका। इसका मतलब यह है कि वहाका लोकमत बहुत जाग्रत है। इसलिए उसके सामने किसीकी नही चल सकती। (प्रा० प्र०, १० ६ ४७)

. . . . .

आज सुबहके अखबारोमे रायटरद्वारा तारसे भेजा हुआ मि० चर्चिलके भाषणका जो सार छपा है, उसे मै हिंदुस्तानीमें आपको समझाता हू। वह सार इस तरह है .

"आज रातको यहा अपने एक भाषणमे मि० चर्चिलने कहा, 'हिदुस्तानमें भयकर खूरेजी चल रही है, उससे मुझे कोई अचरज नही होता। अभी तो इन बेरहमीभरी हत्याओ और भयकर जुल्मोकी शुरूआत ही है। यह राक्षसी खूरेजी वे जातिया कर रही है, ये जुल्म एक-दूसरी पर वे जातिया ढा रही है, जिनमे ऊची-से-ऊची सस्कृति और सभ्यताको जन्म देनेकी शक्ति है और जो ब्रिटिश ताज और ब्रिटिश पार्लामेंटके रवादार और गैर-तरफदार शासनमे पीढ़ियोतक साथ-साथ पूरी शातिसे रही है। मुझे डर है कि दुनियाका जो हिस्सा पिछले ६० या ७० बरससे सबसे ज्यादा शात रहा है, उसकी आबादी भविष्यमे सब जगह बहुत ज्यादा घटनेवाली है, और आबादीके घटावके साथ ही उस विशाल देशमें सभ्यताका जो पतन होगा, वह एशियाकी सबसे बड़ी निराशापूर्ण और दु खभरी बात होगी।"

आप सब जानते है कि मि० चर्चिल खुद एक बडे आदमी है। वे इग्लैंडके ऊचे कुलमे पैदा हुए है। मार्लबरो-परिवार इग्लैडके इतिहास-मे मशहूर है। दूसरे विश्व-युद्धके शुरू होनेपर जब ग्रेट ब्रिटेन खतरेमें था तब मि० चर्चिलने उसकी हुकूमतकी बागडोर सभाली थी। बेशक उन्होने उस समयके ब्रिटिश साम्राज्यको खतरेसे बचा लिया। यह दलील

गलत होगी कि अमेरिका या दूसरे मित्र-राष्ट्रोकी मदद्के बिना ग्रेट ब्रिटेन लड़ाई नही जीत सकता था। मि० चर्चिलकी तेज सियासी बुद्धिके सिवा मित्र-राष्ट्रोको एक साथ कौन मिला सकता था ? मि० चर्चिलने जिस महान् राष्ट्रकी लड़ाईके दिनोमे इतनी शानसे नुमाइदगी की, उसने उनकी सेवाओकी कदर की। लेकिन लडाई जीत लेनेके बाद उस राष्ट्रने ब्रिटिश द्वीपोको, जिन्होने लडाईमे जन-धनका भारी नुकसान उठाया था, नया जीवन देनेके लिए चर्चिलकी सरकारकी जगह मजदूर-सरकारको तरजीह देनेमें कोई हिचकिचाहट नही दिखाई। अग्रेजोने समयको पहचान कर अपनी इच्छासे साम्राज्यको तोड देने और उसकी जगह बाहरसे न दिखाई देनेवाला दिलोका ज्यादा मशहूर साम्राज्य कायम करनेका फैसला कर लिया। हिंदुस्तान दो हिस्सोमे बट गया है, फिर भी दोनो हिस्सोने अपनी मरजीसे ब्रिटिश कामनवेल्थके सदस्य बननेका ऐलान किया है। हिंदुस्तानको आजाद करनेका गौरव-भरा कदम पूरे ब्रिटिश राष्ट्रकी सारी पार्टियोने उठाया था। इस कामके करनेमे मि० चर्चिल और उनकी पार्टीके लोग शरीक थे। भविष्य अग्रेजोद्वारा उठाए गए इस कदमको सही साबित करेगा या नही, यह अलग बात है। और इसका मेरी इस बातसे कोई ताल्लुक नही है कि चूकि मि० चर्चिल सत्ताके फेरबदलके काममे शरीक रहे है, इसलिए उनसे उम्मीद की जाती है कि वे ऐसी कोई बात नही कहे या करे, जिससे इस कामकी कीमत कम हो। यकीनन आधुनिक इतिहासमे तो ऐसी कोई मिसाल नही मिलती, जिसकी अग्रेजोके सत्ता छोडनेके कामसे तुलना की जा सके। मुझे प्रियदर्शी अशोकके त्यागकी बात याद आती है। मगर अशोक बेमिसाल है और साथ ही वे आधुनिक इतिहासके व्यक्ति नही है। इसलिए जब मैने रायटरद्वारा प्रकाशित किया हुआ मि० चर्चिल-के भाषणका सार पढा तो मुझे दुख हुआ। मै मान लेता हू कि खबरे देनेवाली इस मशहूर सस्थाने मि० चर्चिलके भाषणको गलत तरीकेसे बयान नही किया होगा। अपने इस भाषणसे मि० चर्चिलने उस देशको

हानि पहुचाई है, जिसके वे एक बहुत बडे सेवक है। अगर वे यह जानते थे कि अग्रेजी हुकूमतके जुएसे आजाद होनेके बाद हिदुस्तानकी यह दुर्गति होगी तो क्या उन्होने एक मिनटके लिए भी यह सोचनेकी तकलीफ उठाई कि उसका सारा दोष साम्राज्य बनानेवालोके सिरपर है, उन 'जातियो' पर नही जिनमे चर्चिल साहबकी रायमे 'ऊची-से-ऊची स्कृतिको जन्म देनेकी ताकत है।' मेरी रायमे मि० चर्चिलने अपने भाषणमे सारे हिदुस्तानको एक साथ समेट लेनेमे बेहद जल्दबाजी की है। हिदुस्तानमे करोडोकी तादादमे लोग रहते है। उनमेसे कुछ लाखने जगलीपन अख्तियार किया है, जिनकी कि कोई गिनती नही है। मै मि० चर्चिलको हिदुस्तान आने और यहाकी हालतका खुद अध्ययन करनेकी हिम्मतके साथ दावत देता हू। मगर वे पहलेसे ही किसी विषयमे निश्चित मत रखनेवाले एक पार्टीके आदमीकी हैसियतसे नही, बल्कि एक गैरतरफदार अग्रेजकी तरह आए, जो अपने देशकी इज्जतका किसी पार्टीसे पहले खयाल रखता है और जो अग्रेज सरकारको अपने इस काममे शानदार सफलता दिलानेका पूरा इरादा रखता है। ग्रेट ब्रिटेनके इस अनोखे कामकी जाच उसके परिणामोसे होगी। हिदुस्तानके विभाजनने बेजाने उसके दो हिस्सोको आपसमे लडनेका न्यौता दिया। दोनो हिस्सोको अलग-अलग स्वराज देना आजादीके इस दानपर धब्बे-जैसा मालूम होता है। यह कहनेसे कोई फायदा नही कि दोनोमेसे कोई भी उपनिवेश ब्रिटिश कामनवेल्थसे अलग होनेके लिए आजाद है। ऐसा करनेसे कहना सरल है। मै इस पर और ज्यादा कुछ नही कहना चाहता। मेरा इतना कहना यह बतलानेके लिए काफी होगा कि मि० चर्चिलको इस विषयपर ज्यादा सावधानीसे बोलनेकी जरूरत क्यो थी। परिस्थितिकी खुद जाच करनेके पहले ही उन्होने अपने साथियोके कामकी निदा की है।

आप लोगोमेसे बहुतोने मि० चर्चिलको ऐसा कहनेका मौका दिया है। अभी भी आपके लिए अपने तरीकोको सुधारने और मि० चर्चिलकी

भविष्यवाणीको झूठ साबित करनेके लिए काफी वक्त है। मै जानता हू कि मेरी बात आज कोई नही सुनता। अगर ऐसा नही होता और लोग उसी तरह मेरी बातोको मानते होते, जिस तरह आजादीकी चर्चा शुरू होनेसे पहले मानते थे तो मै जानता हू कि जिस जगलीपनका मि० चर्चिलने बड़ा रस लेते हुए बढ़ा-चढाकर बयान किया है, वह कभी नही हो पाता और आप लोग अपनी माली और दूसरी घरेलू मुश्किलोको सुलझानेके ठीक रास्तेपर होते। (प्रा० प्र०, २८ ६ ४७)

: ६० :

सी० वाई० चिन्तामणि

(आज सुबह निर्णयपर बातें हुई। जयकर, सप्रू और चिंतामणिकी रायोंपर चर्चा हुई। बापू कहने लगे)

यह आशा रख सकते है कि जयकर सप्रूसे यहा अलग हो जायगे।

वल्लभभाई—बहुत आशा रखने जैसी बात नहीं है।

बापू—आशा इसलिए रख सकते है कि विलायतमे भी इस मामलेमे इनके विचार अलग ही रहे थे। वैसे तो क्या पता ?

वल्लभभाई—चिंतामणिने इस बार अच्छी तरह शोभा बढ़ाई।

बापू—क्योकि चितामणि हिंदुस्तानी है, जबकि सप्रूका मानस यूरोपियन है। चितामणि समझते है कि इस निर्णयमे ही बहुत कुछ विधान आ जाता है। सप्रू यह मानते है कि विधान मिल गया तो फिर इन बातोकी चिता ही नही (म० डा०, २१.८ ३२)

: ६१ :

जगदीशन्

जगदीशन्को खुद भी कोढ हो गया था। वे मद्रासके रहनेवाले हैं। वे बडे सज्जन और विद्वान पुरुष हैं। वे श्रीनिवास शास्त्रीजीके भक्त थे। तो उन्होने अपना जीवन इस काममे लगा दिया है। (प्रा० प्र०, २३ १० ४७)

. . . .

जिनको कुष्ट रोग रहता है उनके बारेमे मैंने कल एक बात कही थी। जगदीशन्का भी नाम लिया था। वे बडे विद्वान् आदमी है। उनको यह रोग था। वह बिलकुल नाबूद तो नही हुआ है, लेकिन काफी अकुशमे आ गया है। वे इसमे काफी काम करते है, काफी दिलचस्पी लेते है, उनसे मिलते-जुलते है। मेहनती तो जबरदस्त है ही। वे मद्रासमे रहते है, वर्धामे नही, लेकिन कई दिनोसे वर्धामे है। उन्होने इस बारेमे मुझसे खतो-किताबत की थी। उनका पत्र मिले कई दिन हो गए। उसको आज मैंने पढ लिया। मैंने उसमे एक बात देखी है, जिसे मै यहा साफ कर देना चाहता हू। वे कहते है कि जिसको कुष्ट रोग हो गया है उसको कोढी मत कहो। लोग उससे बुरा अर्थ निकाल लेते है। उसको वे अछूतसे भी बदतर मान लेते है। अछूत बदी थोडा करता है। उनको छूनेसे हम पतित हो जाते है, ऐसा हम मान लेते है। मै कह चुका हू कि सच्चा कोढ तो मनकी मलिनता है। अपने भाइयोसे घृणा करना, किसी जाति या वर्गके लोगोको बुरा कहना, रोगी मनका चिह्न है और वह कोढसे भी बुरा है। ऐसे लोग उससे भी बदतर है। तो फिर ऐसा नाम क्यो लेना चाहिए ? कुष्ट रोगसे पीडित कहो, लेकिन कोढी मत कहो। अगर बुरा कहनेसे बुरा बन जाय तो नही कहना चाहिए। गुलाबके पुष्पको आप चाहे किसी भी

नामसे कहे, लेकिन उसमें जो सुवास या सुगंध भरी है उसको वह कभी नही छोड़ेगा, बुरे-से-बुरा नाम दो तो भी नही। यदि यह जगदीशन् ऐसा कहता है, ठीक है, पर जो छूतकी बीमारी है वह कोई एक तो है नही। किसीको खुजली हो जाती है, उसको जो स्पर्श करेगा उसको खुजली हो जायगी। सर्दी है, हैजा है, प्लेग है, इसी तरहसे कुष्ट रोग है। फिर उसके प्रति घृणा क्या करनी? एक आदमी जब सचमुच कुष्ट रोगी बन जाता है तो लोग उसका तिरस्कार करते हैं। वे कहते हैं कि वह तो कमजात है। कमजात तो वे हुए जो तिरस्कार करते हैं। यह घृणा करनेका जो कोढ़ है वह निकल जाना चाहिए। (प्रा० प्र०, २४ १०.४७)

: ६२ :

हीरजी जयराम

चलालाके पड्या खादी-कार्यालयके श्री नागरदासभाई लिखते हैं

"श्री हीरजीभाई जयराम मिस्त्री, जिन्होंने हमें थानामें श्री स्वामी आनंदके आश्रमवाली जमीन दी थी, गुजर गए हैं।

"जब चर्खा-संघने और श्री रामजीभाई हंसराजने काठियावाड़में खादीका काम बंद किया तो हीरजीभाईने ही उस कामको टिकाये रक्खा था। सन् १९३७के अंतमें जब मैं यहां आया तो हीरजीभाई करीब दस चर्खोंका काम संभाले हुए थे और उनके लिए वे पींजने भी चलवा रहे थे। उन्होंने इस कामको इतना जिंदा रक्खा, उसीका यह नतीजा है कि आज काठियावाड़में हर साल करीब एक लाख रुपयेकी व्यापारी खादी पैदा होती है। चलालाके और उसकी शाखाओंके कुल मिलाकर २५ केंद्रोंमें

इस समय काम हो रहा है। व्यापारी खादीके साथ-साथ स्वावलंबी खादीका काम भी बढ़ रहा है। जिस समय हमने अपने खादी-कामको फैलाया, हीरजीभाई अपने कताई-पिंजाईके कामको जारी रक्खे हुए थे। कपड़ेके लिहाजसे उनका सारा परिवार स्वावलम्बी था, अपने खेतसे वे अच्छा फूटा हुआ कपास खुद चुन लाते थे और अपने हाथों उसे ओटते थे। वे नियमसे रोज दो गुंडी सूत तो कातते ही थे।

"काठियावाड़के खादी और हरिजन कार्यको उन्होंने समय-समयपर सहायता पहुंचाई थी। हमें उनका पूरा-पूरा आधार था। मरनेसे पहले उन्होंने अपनी वसीयत लिखी है, जिसमें मोरबीमें खादी-कार्य शुरू करनेके लिए एक हजार रुपए की मंजूरी दी है। मोरबीमें खादी-कार्य चलानेकी उनकी तीव्र इच्छा थी, परंतु वह सफल न हो सकी। मिस्त्रीजीने दो साल पहले अपनी दूसरी पत्नीके देहातके बाद तीसरी बार विवाह किया था। पहली पत्नीसे उनके तीन लड़के हैं।

"वे नीचे लिखे सज्जनोंको अपनी वसीयतका ट्रस्टी बना गये हैं:

१. श्री रामजीभाई हंसराज
२. श्री जगजीवनभाई मेहता
३. श्री छगनलाल जोशी
४. श्री नागरदास
५. एक स्थानीय व्यापारी

"वसीयतके दस्तावेजकी रजिस्ट्री हो चुकी है। सब मिलाकर स्थावर, जंगम और नकद मिल्कियत ५२ हजारकी है।"

मुझे तो भाई हीरजीके इस वसीयतनामेकी कोई खबर ही न थी। मुझे उनका चेहरा अच्छी तरह याद है। भाई हीरजीकी सारी सेवा मूक थी। थानेके नजदीकवाली जमीन भी उन्होंने सकुचाते-सकुचाते ही दी थी। उनकी सेवामें तनिक भी आडंबर न था। वे साधारण स्थितिके मामूली पढे-लिखे आदमी थे, परंतु उनकी सब सेवाएं ठोस थीं। नाम या यशका उन्हें कभी लोभ न रहा, उनकी सेवा ही उनका इनाम और प्रमाण-पत्र था। ऐसी आत्मा सदा ही अमर होती है। (ह० से०, १२.४.४२)

: ६३ :

श्रीकृष्णदास जाजू

नए अध्यक्षके रूपमे सघको पूर्व अध्यक्षकी भाति ही एक सुपरीक्षित और धर्मबुद्धिवाला कार्यकर्ता मिल गया है। जाजूजी दर्शनशास्त्री नही है, वह लेखक भी नही है; किंतु वह अधिक व्यवहारदक्ष है। वह अखिल भारतीय चर्खा सघकी महाराष्ट्र शाखाके प्रधान व्यवस्थापक रहे है। उनके परिश्रमसे ही उसे आज इतनी सफलता मिली है। (ह० से०, २ ३ ४०)

: ६४ :

मोहम्मद अली जिन्ना

जिन्नासाहबने जिस मुक्ति-दिवसका ऐलान किया था उस दिन मुझे गुलबर्गाके मुसलमानोकी तरफसे यह तार मिला—"नजात-दिवसका मुबारकबाद, काइदे-आजम जिन्ना जिंदाबाद।" मैंने समझा कि यह सदेश मुझे चिढानेके उद्देश्यसे भेजा गया है। मगर भेजनेवाले क्या जाने कि इस तारका उद्देश्य पूरा नही हुआ। जब मुझे वह मिला तो मै भी मन-ही-मन भेजनेवालोकी इस प्रार्थनामे शामिल होगया—"काइदे-आजम जिन्ना बहुत दिन जिए।" काइदे-आजम हमारे पुरानी साथी है। आज कुछ बातोमे हमारे-उनके विचार नही मिलते तो इससे क्या हुआ ? उनके लिए मेरे सद्भावमें कोई अतर नही आ सकता।

मगर काइदे-आजमकी तरफसे एक विशेष कारण उन्हे बधाई देनेके लिए और मिल गया है। ईदके दिन रेडियोपर उन्होने जो बढिया भाषण दिया था उसपर बधाईका तार भेजनेकी मुझे खुशी हासिल हुई थी।

अब वे और भी मुबारकबादके हकदार हो गए है, क्योंकि वे कांग्रेसकी नीति और राजनीतिके विरोधी दलोके साथ करारनामे कर रहे है । इस तरह वे मुस्लिम-लीगको साम्प्रदायिक चक्करसे निकालकर उसे राष्ट्रीय स्वरूप दे रहे है। मै उनके इस कदमको पूरी तरह उचित समझता हूं । मै देखता हू कि मद्रासकी जस्टिस पार्टी और डॉक्टर अबेडकरका दल जिन्नासाहबसे पहले ही मिल चुका है । अखबारोमे खबर है कि हिंदू महासभाके प्रधान श्रीसावरकर उनसे बहुत जल्द मिलनेवाले है । जिन्नासाहबने खुद जनताको सूचना दी है कि बहुत-से गैर-काग्रेसी हिदुओने उनके साथ सहानुभूति प्रकट की है । ऐसा होना मै पूरी तरह लाभदायक समझता हू । इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है कि हमारे देशमे दो ही बडे-बडे दल रह जाय, एक काग्रेसियोका और दूसरा-गैरकाग्रेसियोका या काग्रेस-विरोधी शब्द ज्यादा पसद हो तो, काग्रेस-विरोधियोका । जिन्नासाहबकी कृपासे कम तादादवाली जाति शब्द का नया और अच्छा अर्थ हो रहा है । काग्रेसका बहुमत सवर्ण हिदुओ, अवर्ण हिदुओ, मुसलमानो, ईसाइयो, पारसियो और यहूदियोके मेलसे बना है । इसलिए यह एक ऐसा बहुमत है जिसमें एक खास तरहकी राय रखनेवाले सब वर्गोंके लोग शामिल है । जो नया दल बनने जा रहा है वह एक खास तरहकी राय रखनेवाले तादादके लोगोका दल है । निर्वाचकोको पसद आनेपर इनका किसी भी दिन बहुमत हो सकता है । इस तरह दलोका एक होना ऐसी बात है जिसे हम सबको दिलसे चाहना चाहिए । अगर काइदे-आजम इस तरहका मेल साध सके तो मै ही नही, सारा हिंदुस्तान एक आवाजसे पुकारकर कहेगा—"काइदे-आजम जिन्ना जुग-जुग जिए", क्योकि वे ऐसी स्थायी और सजीव एकता स्थापित कर देगे, जिसके लिए मुझे विश्वास है कि सारा राष्ट्र तड़प रहा है । (ह० से०, २० १ ४०)

: ६५ :

छोटेलाल जैन

साबरमती-सत्याग्रहाश्रमके निवासी और सबधी कुछ इस तरह बिखरे पडे है कि उन्हे एक-दूसरेकी प्रवृत्तिका पता तक नही रहता। खास सबध जोडने या उसे यत्नपूर्वक रखनेकी प्रथा नही डाली गई। सबध केवल सेवा-सबधी रहा है। कहनेका यह आशय नही कि सब ऐसा ही करते है, किंतु मूक सेवामे स्व० मगनलाल गाधीके साथ बराबरी करने-वाले आश्रमवासी श्री छोटेलाल जैन का आत्मघात, इन शब्दोको लिखते हुए अदरसे मुझे काट रहा है। छोटेलालकी मूक सेवाका वर्णन भाषाबद्ध नही हो सकता। ऐसा करना मेरी शक्तिसे बाहर है। छोटेलालका कोई परिचय देता तो वह भागते थे। उनकी मृत्युसे उनके विषयमे उनके सगे-सबधी भी जानना चाहेगे। लेकिन आश्रममे आनेके बाद छोटेलालका कभी किसी दिन अपने सबधियोके पास जानेका या आश्रममे उनके रिश्ते-दारोके आनेका मुझे स्मरण नही आता। उनके नाम व पते-ठिकाने भी नही जानता तो भी उनके पास आश्रमकी खबर पहुचानेका तो मेरा कर्तव्य है ही। उनकी खातिर भी इस टिप्पणीका लिखना उचित है और छोटे-लालकी मृत्युसबधी इस टिप्पणीके साथ भला कौन ईर्ष्या करेगा?

मेरे सौभाग्यसे मुझे कुछ ऐसे योग्य साथी मिले है कि उनके बिना मै अपनेको अपग अनुभव करता हू। छोटेलाल मेरे ऐसे ही साथी थे। उनकी बुद्धि तीव्र थी। उन्हे कोई भी काम सौपते मुझे हिचकिचाहट नही होती थी। वे भाषाशास्त्री भी थे। राजपूताना-निवासी होनेसे उनकी मातृभाषा हिदी थी। पर वह गुजराती, मराठी, बगाली, तमिल, सस्कृत और अग्रेजी भी जानते थे। नई भाषा या नया काम हाथमे लेनेकी उनकी

जैसी शक्ति मैने और किसीमे नही देखी। आश्रमके स्थापना-कालसे ही छोटेलालने उससे अपना सबध जोड लिया था।

रसोई बनाना, पाखाना साफ करना, कातना, बुनना, हिसाब-किताब रखना, अनुवाद करना, चिट्ठी-पत्री लिखना आदि सब कामोको वह स्वाभाविक रीतिसे करते और वे उन्हे शोभते थे। मगनलालके लिखे 'बुनाई-शास्त्र' मे छोटेलालका हिस्सा मगनलालके जितना ही था, यह कहा जा सकता है। चाहे जैसे जोखमका काम उन्हे सौपा जाय उसे वह प्रयत्नपूर्वक करते और जबतक वह पूरा न हो जाय, उन्हे शाति नही मिलती थी। अविश्रात रीतिसे काम करते हुए भी छोटेलाल दूसरा काम लेनेको हमेशा तैयार रहते थे। उनके शब्दकोषमे 'थकान' के लिए स्थान नही था। सेवा करना और दूसरोसे सेवा-कार्य लेना यह उनका मत्र था। ग्राम-उद्योग-सघ स्थापित हुआ तो घानीका काम दाखिल करनेवाले छोटेलाल, धान दलनेवाले छोटेलाल और मधुमक्खिया पालनेवाले भी छोटेलाल। जिस तरह छोटेलालके बगैर मै अपग जैसा हो गया हू ऐसी ही स्थिति आज उनकी मधुमक्खियोकी भी होगी, क्योकि यह नोट लिखते समय मुझे पता नही कि उनके इस परिवारकी अब इतनी सार-सभाल कौन रखेगा।

छोटेलाल मधुमक्खियोके पीछे जैसे दीवाने हो गए थे। उनकी शोधमें उन्हे हलके प्रकारके मियादी बुखार (टाइफाइड) ने पकड लिया। यह उनके प्राणोका गाहक निकला। मालूम होता है, उन्हे छ सात दिन-अपनी सेवा कराना भी असह्य लगा। अत ३१ अगस्त, मगलवारकी रात-को ग्यारह और दो बजेके बीचमे सबको सोता हुआ छोडकर वह मगन-वाडीके कूएमे कूद पडे। आज पहली तारीखको शामके चार बजे लाश हाथमे आई। मै सेगावमे बैठा रातके आठ बजे यह लिख रहा हू। छोटलालकी देहका इस समय वर्धामे अग्नि-दाह हो रहा होगा।

इस आत्मघातके लिए छोटेलालको दोष देनेकी मुझमें हिम्मत नही।

छोटेलाल तो वीर पुरुष थे। उनका नाम १९१५ के दिल्ली-षडयंत्र-केस-में आया था; पर उसमें वह बरी हो गए थे। किसी आफिसरको मार-कर खुद फासीके तख्तेपर चढनेका स्वप्न वह उन दिनो देखते थे। इतनेमे मेरे लेखोके पाशमे आ फसे। दक्षिण अफ्रीकाके मेरे जीवनसे उन्होने परिचय प्राप्त कर लिया था। अपनी तीव्र हिंसक बुद्धिको उन्होने बदल दिया और अहिंसाके पुजारी बन गए। जिस तरह साप केंचुल उतार देता है उसी तरह उन्होने अपने हिंसक जीवनकी खोल उतारकर फेक दी। इतना होते हुए भी वह अपने मनसे क्रोधको नही जीत सके। उन्हे इस बीमारीमे अपनी सेवा लेना असह्य मालूम दिया और गहरी पैठी हुई हिंसा-को खुद अपनी बलि दे दी। इसके सिवाय, दूसरा अर्थ मै इस आत्मघातका नही लगा सकता।

छोटेलाल मुझे अपना देनदार बनाकर ४५ वर्षकी उम्रमे चल बसे। उनसे मै अनेक आशाए रखता था। उनकी अपूर्णता मै सहन नही कर सकता था, इससे छोटेलालने मेरे बाग्बाण जितने सहन किए उतने तो शायद मैने एक-दो को ही सहन कराये होगे। पर छोटेलालने उन्हे सदैव सहन किया। परतु ऐसे वचन सुनानेका मुझे क्या अधिकार था? मुझे तो उन्हे हिंदू-मुसलमानकी लडाईमें, या हिदूधर्ममे से अस्पृश्यता-रूपी कचरा निकाल बाहर करनेमे या गोमाताकी सेवामे होमकर उनका लहना चुकाना था। ऐसा करनेकी शक्ति रखनेवाले साथियोमे छोटेलाल एक ऊचा स्थान रखते थे। मेरे लिए तो ये सब स्वराजकी वेदिया है।

पर छोटेलालकी मृत्युका रोना रोकर अब क्या करू? ऐसे अनेक मूक योद्धाओकी आवश्यकता होगी। रामराज-रूपी स्वराज लेना आसान नही। छोटेलालके जीवनके इस छोटे-से टुकडेका परिचय पाकर दूसरे मूक सेवक आगे आवे। (ह० से०, ११ ९ ३७)

: ६६ :

पुरुषोत्तमदास टंडन

एक भाईने मेरे पास इस आशयका एक बहुत सख्त पत्र भेजा है कि क्या तुम अब भी पागल ही रहोगे ? अब तो थोडे दिनोंमे इस दुनियासे चले जाओगे, तब भी कुछ सीखोगे नही ? यदि पुरुषोत्तमदास टडनने यह कहा कि 'सबको तलवार लेनी चाहिए, सिपाही बनना चाहिए और अपना बचाव करना चाहिए' तो तुमको इस बातमे चोट क्यो लगती है ? तुम तो गीताके पढनेवाले हो ? तुम्हे तो इन द्वद्वोसे परे हो जाना चाहिए और बात-बातमे चोट लगा लेने या खुश होनेकी झझट छोड देनी चाहिए। तुम उस कहानीवाले भोले साधु बाबा-जैसी बात करते हो जो पानीमे बहते हुए बिच्छूके डक लगानेपर भी उसे हाथसे पकडकर बचानेकी कोशिश करता था। अगर तुमसे अहिसाका गीत गाए बिना रहा नही जाता तो कम-से-कम जो दूसरे रास्तेसे जाते है उन्हे तो जाने दो ! उनके बीचमे रोडा क्यो बनते हो ?

अगर मै स्थितप्रज्ञ रह सका तो अपनी एक सौ पच्चीस वर्षकी उम्रमें से एक भी वर्ष कम जिंदा नही रहूगा। अगर हम सब स्थितप्रज्ञ बने तो हममेसे एक भी आदमीको १२५ वर्षसे जरा भी कम जीनेका कोई कारण नही है। वैसे भगवान चाहे तो भले मुझे आज ही उठा ले, पर अभी तुरत मै चलनेवाला नही हू। मुझे अभी रहना है और काम करना है। पुरुषोत्तमदास टडन मेरे पुराने साथी है। हम वर्षोतक साथ-साथ काम करते आए है। मेरे जैसे ही ईश्वरके वे भक्त है। जब मैने यह सुना कि वे ऐसी बात कर रहे है तब मुझे दुःख हुआ। मैने कहा कि आज तीस बरससे भी अधिक समयसे जो हमने सीखा है और जिसकी हमने लगनसे साधना की है, वह क्या इस तरह गवा दिया जायगा ? बचावके लिए

तलवार पकड़नेकी बात की जाती है, पर आजतक मुझे दुनियामें एक आदमी ऐसा नहीं मिला है, जिसने बचावसे आगे बढ़कर प्रहार न किया हो। बचावके पेटमें ही वह पड़ा है। अब रही मेरे दिलपर चोट लगनेकी बात। अगर मैं पूरा स्थितप्रज्ञ बन गया होता तो मुझे चोट न लगती। अब भी चोट न लगे ऐसी कोशिश मैं कर रहा हूं। कल जहां था वहांसे आज कुछ-न-कुछ आगे ही बढ़ता हूं। अगर ऐसा नहीं हो तो रोज-रोज गीता-में से स्थितप्रज्ञके ये श्लोक बोलनेमें मैं दभी ठहरता हूं, पर ऐसा नहीं हो सकता कि इन श्लोकोंके बोलने भरसे ही कोई एक ही दिनमें स्थितप्रज्ञ बन जाय। (प्रा० प्र०, १३ ६ ४७)

•

आज सवेरे जब मेरा मौन था तो श्री पुरुषोत्तमदास टंडन आए। मैंने आपको बताया था कि जब टंडनजी ने कहा कि हरेक स्त्री-पुरुषको शस्त्रधारी बनना चाहिए और स्वरक्षा करनी चाहिए तो यह सुनकर मुझे कैसा बुरा लगा था। एक पत्र-लेखकने मुझसे पूछा था कि गीता पढ़ते रहनेपर भी इस तरह आपको बुरा कैसे लग सकता है? उस पत्रसे यह भी पता चलता था कि टंडनजी 'शठ प्रति शाठ्य' का सिद्धांत मानते हैं। तब टंडनजीसे मैंने पूछा कि आप क्या मानते हैं? इसका खुलासा देते हुए टंडनजीने बताया कि मैं 'शठ प्रति शाठ्य' के सिद्धांतको तो नहीं मानता हूं, लेकिन स्वरक्षाके लिए शस्त्रधारी बनना जरूरी है, ऐसा मैं मानता हूं। गीताने भी यही सिखाया है।

तब मैंने टंडनजीसे कहा कि इतना तो आप उस भाईको लिख दीजिए कि आप 'शठ प्रति शाठ्य' के माननेवाले नहीं हैं ताकि वे भ्रममें न रहें। और स्वरक्षाके लिए हिंसा करनेकी बात गीतामें कहीं है, यह मैं नहीं मानता। मैंने तो गीताका अलग ही अर्थ निकाला है। मेरी समझमें गीता ऐसा नहीं सिखाती है। गीतामें या दूसरे किसी संस्कृत ग्रंथमें अगर ऐसी बात लिखी है तो मैं उसे धर्मशास्त्र माननेको तैयार नहीं हूं। महज

सस्कृतमे कुछ लिख देनेसे कोई वाक्य शास्त्र-वाक्य नही बन जाता ।

टडनजीने मुझसे कहा—'तुमने तो उन बदरोको मारनेके लिए भी लिखा था, जो बेहद पीडा पहुचाते है और खेती उजाड देते है ।' लेकिन मै तो किसी भी प्राणीको और यहा तक कि चीटीतकको भी मारना पसद नही करता । फिर भी खेती-बाडीका सवाल अलग है और मनुष्य-मनुष्यका अलग है ।

तब टडनजीने कहा कि 'शठ प्रति शाठ्य' यानी एक दातके बदलेमे दो दात निकालनेकी बात हम न करे और एक दातके बदलेमे एक दात तथा एक थप्पडके बदलेमे एक थप्पडकी बात भी नही करेंगे, परतु हाथमे शस्त्र नही लेगे, अपनी शक्ति नही दिखाएगे तो स्वरक्षा किस तरह होगी ?

इसके बारेमे मेरा यह जवाब है कि स्वरक्षा जरूर की जाय, पर मेरी स्वरक्षा कैसे होगी ? कोई मेरे पास आता है और कहता है कि बोल, राम-नाम लेता है या नही ? नही लेगा तो यह तलवार देख ! तब मै कहूगा, यद्यपि मै हरदम राम-नाम लेता हू, लेकिन तलवारके बलपर मै हरगिज न लूगा, चाहे मारा क्यो न जाऊ ? और इस तरह स्वरक्षाके लिए मै मरूगा । वैसे कलमा पढनेमे मेरा कोई धर्म जानेवाला नहीं है । क्या हो गया, अगर मै ठेठ अरबीमे बोलू कि अल्लाह एक है और उसका रसूल एक ही मुहम्मद पैगबर है । ऐसा बोलनेमे कोई पाप नही और इतने भरसे वे मुझे मुसलमान माननेको तैयार है तो मै अपने लिए फख्र-की बात समझूगा । लेकिन जब तलवारके जोरसे कोई कलमा पढवाने आवेगा तब कभी भी कलमा न पढूगा । अपनी जान देकर मै स्वरक्षा करूगा । इस बहादुरीको सिद्ध करनेके लिए मै जिदा रहना चाहता हू । इसके अलावा और तरीकेसे मै जीना नही चाहता । (प्रा० प्र०, १६. ६ ४७)

: ६७ :

काउंट लियो टाल्स्टाय

टाल्स्टायके लेख तो इतने सरस और इतने सरल है कि चाहे जो धर्म-प्रेमी उन्हे पढकर उनसे लाभ उठा सकता है। उसकी पुस्तक पढकर साधारणत यह विश्वास अधिक होता है कि वह मनुष्य जैसा कहता था वैसा ही करता भी रहा होगा। ('मेरे जेलके अनुभव'—महात्मा गाधी)

... . .

सवाल—काउंट टाल्स्टायको आप किस दृष्टिसे देखते हैं ?

जवाब—मै उनको अत्यत आदरकी दृष्टिसे देखता हू। अपने जीवनकी कितनी ही बातोके लिए मै उनका ऋणी हू। (य० इ०, पृष्ठ २०६)

.. . ...

मेरी वर्त्तमान मानसिक दशा ऐसी नही है कि मै एक भी पर्व पुण्य-तिथि या एक भी उत्सव मनाने के योग्य रहा होऊ। कुछ दिनो पहले 'नव-जीवन' या 'यग इडिया' के किसी पाठकने मुझसे प्रश्न पूछा था, "आप श्राद्धके विषयमें लिखते हुए कह चुके है कि पुरखोका सच्चा श्राद्ध उनकी पुण्य-तिथिके दिवस उनके गुणोका स्मरण करने से और उन्हे अपने जीवन-मे ओतप्रोत कर लेनेसे हो सकता है। इसीसे मै पूछता हू कि आप खुद अपने पुरखोकी श्राद्धतिथि कैसे मनाते है ?" पुरखोकी श्राद्धतिथि जब मै जवान था तब मनाया करता था। परतु मै अभी तुम्हें यह कहनेमे शर्माता नही हू कि मुझे अपने पूज्य पिताजीकी श्राद्धतिथिका स्मरण तक नही है। कई वर्ष व्यतीत हो चुके। एक भी श्राद्धतिथि मनानेकी मुझे याद नही है, यहा तक कि मेरी कठिन स्थिति या कहिए कि सुदर स्थिति है, अथवा जैसेकि कई एक मित्र मानते है, मोहकी स्थिति है, कि ऐसा मेरा

मतव्य है कि जिस कार्यको सिरपर लिया हो उसीमे चौबीस घटे लगे रहना, उसका मनन करना और जहा तक बन पडे उसे सुव्यवस्थित रूपसे करनेमें ही सबकुछ आ जाता है। उसीमे पुरुखोकी श्राद्धतिथिका मनाना भी आ जाता है। टाल्स्टाय-जैसोके उत्सव भी आ जाते है।... तीन महीने पहले **एल्मर माड** एव **टाल्स्टाय**का साहित्य इकट्ठा करने-वाले दूसरे सज्जनोके पत्र आए थे कि इस शताब्दीके अवसरपर मैं भी कुछ लिख भेजू और इस दिन की याद हिंदुस्तानमे दिलाऊ। **एल्मर माड**के पत्रका साराश या सारा पत्र तुमने मेरे अखबारोमे देखा होगा। उसके बाद मै यह बात बिलकुल भूल गया था। यह प्रसग मेरे लिए एक शुभ अवसर है।

तीन पुरुषोने मेरे जीवनपर बहुत ही बडा प्रभाव डाला है। उसमें पहला स्थान मै राजचन्द्र कविको देता हू, दूसरा टाल्स्टायको और तीसरा रस्किनको। टाल्स्टाय और रस्किनके दरम्यान स्पर्धा खडी हो और दोनोके जीवनके विषयमे मै अधिक बाते जान लू तो नही जानता कि उस हालतमे प्रथम स्थान मै किसे दूगा। परतु अभी तो दूसरा स्थान टाल्स्टायको देता हू। टाल्स्टायके जीवनके विषयमे बहुतेरोने जितना पढा होगा उतना मैने नही पढा है। ऐसा भी कह सकते है कि उनके लिखे हुए ग्रथोका वाचन भी मेरा बहुत कम है। उनकी पुस्तकोमेसे जिस किताबका प्रभाव मुझपर बहुत अधिक पड़ा उसका नाम है 'Kingdom of Heaven is Within You.' उसका अर्थ यह है कि ईश्वरका राज्य तुम्हारे हृदयमे है। उसे बाहर खोजने जाओगे तो वह कही न मिलेगा। इसे मैने चालीस वर्ष पहले पढा था। उस वक्त मेरे विचार कई एक बातोमे शकाशील थे। कई मर्तबा मुझे नास्तिकताके विचार भी आते थे। विलायत जानेके समय तो मै हिंसक था, हिंसापर मेरी श्रद्धा थी और अहिंसापर अश्रद्धा। यह पुस्तक पढनेके बाद मेरी यह अश्रद्धा चली गई। फिर मैने उनके दूसरे कई एक ग्रथ पढे। उनमे से प्रत्येकका

क्या प्रभाव पडा सो मैं नही कह सकता, परतु उनके समग्र जीवनका क्या प्रभाव पडा वह तो कह सकता हू ।

उनके जीवनमेसे मै अपने लिए दो बातें भारी समझता हू । वे जैसा कहते थे वैसा ही करनेवाले पुरुष थे । उनकी सादगी अद्भुत थी, बाह्य सादगी तो थी ही । वे अमीर-वर्गके मनुष्य थे । इस जगतके छप्पन भोग उन्होने भोगे थे । धन-दौलतके विषयमे मनुष्य जितनी इच्छा रख सकता है, उतना उन्हे मिला था । फिर भी उन्होने भरी जवानीमे अपना ध्येय बदला । दुनियाके विविध रग देखनेपर भी, उनके स्वाद चखनेपर भी, जब उन्हें प्रतीत हुआ कि इसमे कुछ नही है तो उससे मुह मोड लिया और अत तक अपने विचारोपर पक्के रहे । इसीसे मैंने एक जगह लिखा है कि टाल्स्टाय इस युगकी सत्यकी मूर्त्ति थे । उन्होने सत्यको जैसा माना वैसा ही पालनेका उग्र प्रयत्न किया । सत्यको छिपाने या कमजोर करनेका प्रयत्न नही किया । लोगोको दुख होगा या अच्छा लगेगा कि नही, इसका विचार किए बिना ही उन्हे जिस माफिक जो वस्तु दिखाई दी उसी माफिक कह सुनाई । टाल्स्टाय अपने युगके लिए अहिंसाके बडे भारी प्रवर्तक थे । अहिसाके विषयमे परिश्रमके लिए जितना साहित्य टाल्स्टायने लिखा है, जहा तक मै जानता हू, उतना हृदयस्पर्शी साहित्य दूसरे किसीने नही लिखा है । उससे भी आगे जाकर कहता हू कि अहिंसाका सूक्ष्म दर्शन जितना टाल्स्टायने किया था और उसका पालन करनेका जितना प्रयत्न टाल्स्टायने किया था, उतना प्रयत्न करनेवाला आज हिंदुस्तानमे कोई नही । ऐसे किसी आदमीको मैं नही जानता ।

मेरे लिए यह दशा दुखदायक है, मुझे यह भाती नही है । हिंदुस्तान कर्मभूमि है । हिंदुस्तानमे ऋषि-मुनियोने अहिंसाके क्षेत्रमे बडी-से-बडी खोजे की है, परतु हम केवल बुजुर्गोंकी ही प्राप्त की हुई पूजीपर नही निभ सकते । उसमे यदि वृद्धि न की जाय तो हम उसे खा जाते है ।

इस विषयमें न्यायमूर्त्ति रानडेने हमे सावधान कर दिया है। वेदादि साहित्यमेंसे या जैन साहित्यमेसे हम बडी-बडी बाते चाहे जितनी करते रहे अथवा सिद्धातोके विषयमे चाहे जितने प्रमाण देते रहे और दुनिया को आश्चर्य-मग्न करते रहे फिर भी दुनिया हमें सच्चा नही मान सकती। इसलिए रानडेने हमारा धर्म यह बताया है कि हम इस पूजीमें वृद्धि करते जाय। दूसरे धर्म-विचारकोने जो लिखा हो, उसके साथ मुकाबिला करे,ऐसा करनेमे कुछ नया मिल जाय या नया प्रकाश मिलना हो तो उसका तिरस्कार न करना चाहिए; किंतु हमने ऐसा नही किया। हमारे धर्माध्यक्षोने एक पक्षका ही विचार किया है। उनके पठन, कथन और बरतनमें समानता भी नही है। प्रजाको अच्छा लगे या नही, जिस समाजमे वे स्वय काम करते थे उस समाजको भला लगे या बुरा, फिर भी टाल्स्टायके समान खरी-खरी सुना देनेवाले हमारे यहा नही मिलते। हमारे इस अहिंसा प्रधान देशकी ऐसी दयाजनक दशा है!

हमारी अहिसाकी निदा ही योग्य है। खटमल, मच्छर, बिच्छू, पक्षी और पशुओको हर किसी तरहसे निभानेमे ही मानो हमारी अहिंसा पूर्ण हो जाती है। वे प्राणी कष्टमे तडपते हो तो उसकी हम परवा नही करते, दु खी होनेमे यदि स्वय हिस्सा देते हो तो उसकी भी हमे चिंता नही। परतु दु खी प्राणीको कोई प्राणमुक्त करे अथवा हम उसमे शरीक हो तो उसमे हम घोर पाप मानते है। ऐसा मै लिख चुका हू कि यह अहिंसा नही है। टाल्स्टायका स्मरण कराते हुए फिर कहता हू कि अहिंसाका यह अर्थ नही है। अहिसाके मानी है प्रेमका समुद्र, अहिंसाके मानी है वैरभावका सर्वथा त्याग। अहिंसामे दीनता, भीरुता न हो, डर-डरके भागना भी न हो। अहिसामें दृढता, वीरता, निश्चलता होनी चाहिए।

यह अहिसा हिंदुस्तानमे शिक्षित समाजमे दिखाई नही देती। उनके लिए टाल्स्टायका जीवन प्रेरक है। उन्होने जो वस्तु मान ली, उसका पालन करनेमे भारी प्रयत्न किया और उससे कभी डिगे तक नही। मैं

यह नही मानता कि उन्हे वह हरी छड़ी (सिद्धि) न मिली हो। 'नही मिली' यह तो उन्होंने स्वय कहा है। ऐसा कहना उनको सुहाता था, परतु यह मैं नही मानता कि उन्हे वह छडी न मिली हो, जैसा कि उनके टीकाकार लिखते है। मैं यह मान सकता हू, यदि कोई कहे कि उन्होने सब तरहसे उस अहिसाका पालन नही किया जिसका उन्हे दर्शन हुआ था। इस जगतमे ऐसा पुरुष कौन है कि जो अपने सिद्धातोपर पूरा अमल कर सका हो ? **मेरा मानना है कि देह-धारीके लिए सपूर्ण अहिसाका पालन अशक्य है।** जबतक शरीर है तबतक कुछ-न-कुछ तो अहभाव रहता ही है। जबतक अहभाव है, शरीरको भी तभीतक धारण करना है ही। इसलिए शरीरके साथ हिसा भी रही हुई है। टाल्स्टायने स्वय कहा है कि जो अपनेको आदर्श तक पहुचा हुआ समझता है, उसे नष्टप्राय ही समझना चाहिए। बस यहीसे उसकी अधोगति शुरू होती है। ज्यो-ज्यो हम आदर्शके समीप पहुचते है, आदर्श दूर भागता जाता है। जैसे-जैसे हम उसकी खोजमे अग्रसर होते है, यह मालूम होता है कि अभी तो एक मजिल और बाकी है। कोई भी जल्दीसे मजिले तय नही कर सकता, ऐसा माननेमे हीनता नही है, निराशा नही है, किंतु नम्रता अवश्य है। इसीसे हमारे ऋषियोने कहा है कि मोक्ष तो शून्यता है। मोक्ष चाहनेवालेको शून्यता प्राप्त करना है। यह ईश्वर-प्रसादके बिना नही मिल सकती। यह शून्यता जबतक शरीर है, आदर्शरूप ही रहती है। इस बातको टाल्स्टायने साफ देख लिया, उसे बुद्धिमे अकित किया, उसकी ओर दो डग आगे बढे और उसी वक्त उन्हे वह हरी छडी मिल गई। उस छडीका वे वर्णन नही कर सकते, सिर्फ मिली इतना ही कह सकते है। फिर भी अगर कहा होता कि मिली तो उनका जीवन समाप्त हो जाता।

टाल्स्टायके जीवनमे जो विरोधाभास दीखता है वह टाल्स्टायका कलक या कमजोरी नही है, किंतु देखनेवालोकी त्रुटि है। एमर्सनने कहा है कि अविरोध तो छोटे-से आदमीका पिशाच है। हमारे जीवनमे कभी विरोध

आनेवाला ही नही, अगर यह हम दिखलाना चाहे तो हमें मरा ही समझें। ऐसा करनेमे अगर कलके कार्यको याद रखकर उसके साथ आजके कार्यका मेल करना पडे तो कृत्रिम मेलमे असत्याचरण हो सकता है। सीधा मार्ग यह है कि जिस वक्त जो सत्य प्रतीत हो उसका आचरण करना चाहिए। यदि हमारी उत्तरोत्तर वृद्धि ही हो जाती हो तो हमारे कार्योंमें दूसरोंको विरोध दीखे भी तो उससे हमे क्या सबध है। सच तो यह है कि वह हमारा विरोध नही है, हमारी उन्नति है। उसीके अनुसार टाल्स्टायके जीवनमें जो विरोध दीखता है वह विरोध नही है, बल्कि हमारे मनका विरोधाभास है। मनुष्य अपने हृदयमे कितने प्रयत्न करता होगा, राम-रावणके युद्धमे कितनी विजये प्राप्त करता होगा, उनका ज्ञान उसे स्वय नही होता, देखनेवालोका तो हो ही नही सकता। यदि वह कुछ फिसला तो वह जगतकी निगाहमे कुछ भी नही है, ऐसा प्रतीत होना अच्छा ही है। उसके लिए दुनिया निंदाकी पात्र नही है। इसीसे तो सतोने कहा है कि जगत जब हमारी निदा करे तब हमे आनद मनाना चाहिए और स्तुति करे तब काप उठना चाहिए। जगत दूसरा नही करता। उसे तो जहा मैल दीखा कि वह उसकी निदा ही करेगा। परतु महापुरुषके जीवनको देखने बैठे तो मेरी कही हुई बात याद रखनी चाहिए। उसने हृदयमें कितने युद्ध किए होगे और कितनी जीते प्राप्त की होगी, इसका गवाह तो प्रभु ही है। यही निष्फलता और सफलताके चिह्न है।

इतना कहकर मै यह समझाना नही चाहता कि तुम अपने दोषोंको छिपाओ या पहाडसे दोषोको तनिकसे गिनो। यह तो मैने दूसरोके विषयमें कहा है। दूसरोके हिमालय-से बडे दोषोको राईके समान समझना चाहिए और अपने राई-से दोषोको हिमालयके समान बडा समझना चाहिए। अपनेमे अगर जरा-सा भी दोष मालूम हो, जाने-अनजाने असत्य हो गया हो तो हमे ऐसा होना चाहिए कि अब जलमे डूब मरें। दिलमें आग सुलग जानी चाहिए। सर्प या बिच्छूका डक तो कुछ नही है, उनका

जहर उतारनेवाले बहुत मिल सकते हैं, परतु असत्य और हिंसाके दशसे बचानेवाला कौन हैं ? ईश्वर हमे उससे मुक्ति दे सकता है और हममे अगर पुरुषार्थ हो तभी वह मिल सकती है। इसलिए अपने दोषोंके बारेमें हम सचेत रहे। वे जितने बड़े देखे जा सके उन्हे हम देखे और अगर जगत हमे दोषित ठहरावे तो हम ऐसा न मानें कि जगत कितना कजूस है कि छोटे-से दोषको बडा बतलाता हैं। टाल्स्टायको कोई उनका दोष बतलाता तो वे उसे बडा भयकर रूप दे देते थे। उनका दोष बतानेका प्रसग दूसरेको शायद ही उपस्थित हुआ हो, क्योंकि वे बहुत आत्मनिरीक्षण किया करते थे। दूसरोके बतानेके पहले ही वे अपने दोष देख लेते थे और उसके लिए जिस प्रायश्चितकी कल्पना उन्होंने स्वय की हो वह भी वे कर डाले हुए होते थे। यह साधुताकी निशानी है। इसीसे मैं मानता हू कि उन्हें वह छडी मिली थी।

दूसरी एक अद्भुत वस्तुका खयाल टाल्स्टायने लिखकर और उसे अपने जीवनमे ओत-प्रोत करके कराया है। वह वस्तु है 'ब्रेड लेबर'। यह उनकी स्वय की हुई खोज न थी। किसी दूसरे लेखकने यह वस्तु रूसके सर्व-सग्रहमें लिखी थी। इस लेखकको टाल्स्टायने जगतके सामने ला रक्खा और उसकी बातको भी वे प्रकाशमे ले आये। जगतमे जो असमानता दिखाई पडती है, दौलत व कगालियत नजर आती है उसका कारण यह है कि हम अपने जीवनका कानून भूल गये है। यह कानून 'ब्रेड लेबर' है। गीताके तीसर अध्यायके आधारपर मैं उसे यज्ञ कहता हू। गीताने कहा है कि बिना यज्ञ किए जो खाता है वह चोर है, पापी है। वही चीज टाल्स्टायने बतलाई है। 'ब्रेड लेबर' का उलटा-सुलटा भावार्थ करके हमें उसे उडा नही देना चाहिए। उसका सीधा अर्थ यह है कि जो शरीर खपाकर मजदूरी नही करता उसे खानेका अधिकार नही है। हम भोजनके मूल्यके बराबर मेहनत कर डाले तो जो गरीबी जगतमे दिखाई देती है वह दूर हो जाय। एक आलसी दो भूखोको मारता है, क्योंकि

उसका काम दूसरेको करना पडता है । टाल्स्टायने कहा कि लोग परोपकार करनेके लिए प्रयत्न करते है, उसके लिए पैसे खरचते हैं और इलकाब लेते है, परतु ऐसा न करके थोडा-सा ही काम करे अर्थात् दूसरोंके कधोपरसे नीचे उतर जाय तो बस यही काफी है। और यही सच्ची बात है। यह नम्रताका वचन है। करे तो परोपकार, किंतु अपने ऐशोआराममेंसे लेशमात्रभी न छोडे तो यह वैसा ही हुआ जैसा कि अखा भक्तने कहा है: 'निहायकी चोरी और सुईका दान।' ऐसे क्या विमान आ सकता है ?

बात ऐसी नही है कि टाल्स्टायने जो कहा वह दूसरोने नही कहा हो; परत् उनकी भाषामे चमत्कार था, क्योकि जो कहा उसका उन्होने पालन किया। गद्दी-तकियोपर बैठनेवाले, मजदूरीमे जुट गये, आठ घटे खेती का या दूसरा मजदूरीका काम उन्होने किया। इससे यह न समझे कि उन्होने साहित्यका कुछ काम ही नही किया था। जबसे उन्होने शरीरकी मेहनतका काम शुरू किया तबसे उनका साहित्य अधिक शोभित हुआ। उन्होने अपने पुस्तकोमे जिसे सर्वोत्तम कहा है, वह है 'कला क्या है', यह उन्होने इस यज्ञकालकी मजदूरीमेसे बचते वक्तमे लिखा था। मजदूरीसे उनका शरीर न घिसा और ऐसा उन्होने स्वय मान लिया था कि उनकी बुद्धि अधिक तेजस्वी हुई और उनके ग्रथोके अभ्यासी कह सकते हैं कि यह बात सच्ची है।

यदि टाल्स्टायके जीवनका उपयोग करना हो तो उनके जीवनसे उल्लिखित तीन बाते जान लेनी चाहिए। युवक-सघके सभ्योको ये वचन कहते हुए मैं उन्हे याद दिलाना चाहता हू कि तुम्हारे सामने दो मार्ग है एक स्वेच्छाचारका और दूसरा सयमका। यदि तुम्हे यह प्रतीत होता हो कि टाल्स्टायने जीना और मरना जाना था तो तुम देख सकते हो कि दुनियामे सबके लिए और विशेषत युवकोके लिए सयमका मार्ग ही सच्चा मार्ग है। हिदुस्तानमे तो खास तौरपर है ही। देशमे पश्चिमसे तरह-तरहकी हवाए, मेरी दृष्टिमे जहरी हवाये, आती है। टाल्स्टायके जीवनके समान

सुदर हवा भी आती है सही; परतु वह प्रत्येक स्टीमरमे थोडे ही आती है। प्रत्येक स्टीमरमे कहो या प्रतिदिन कहो। कारण कि प्रतिदिन कोई-न-कोई स्टीमर बम्बई या कलकत्तेके बदरगाहमे आता ही है। दूसरे परदेशी सामानके समान उसमे परदेशी साहित्य भी आता ह। उनके विचार मनुष्य-को चकनाचूर करनेवाले होते हैं, स्वेच्छाचारकी तरफ लेजानेवाले होते है। ....तिलक महाराज कह गये है कि हमारे यहा 'कान्श्यन्स' का पर्याय-वाची शब्द नही है। हम यह नही मानते कि प्रत्येक व्यक्तिके 'कान्श्यन्स' होता है। पश्चिममे यह बात मानते है। व्यभिचारीके लिए, लपटके लिए, कान्श्यन्स क्या हो सकता है? इसीलिए तिलक महाराजने 'कान्श्यन्स' की जड ही उडा दी। हमारे ऋषि-मुनियोने कहा है कि अतर्नाद सुननेके लिए अतर्कर्ण भी चाहिए, अतर्चक्षु भी चाहिए और उसे प्राप्त करनेके लिए सयमकी अवश्यकता है। इसलिए पातजल योगदर्शनमे योगाभ्यास करनेवालोके लिए, आत्मदर्शनकी इच्छा रखने वालोके लिए, पहला पाठ यम-नियम पालन करनेका बताया है। सिवाय सयमके मेरे, तुम्हारे या अन्य किसीके पास कोई दूसरा मार्ग ही नही है। यही टाल्स्टायने अपने लम्बे जीवनमे सयमी रहकर बताया। मै चाहता हू, प्रभुसे प्रार्थना करता हू कि यह चीज हम उसी तरह साफ देख सके जैसे कि आखोके आगेका दीया स्पष्ट देखते है और आज एकत्र हुए है तो ऐसा निश्चय करके बिखरे कि टाल्स्टायके जीवनमेंसे हम सयमकी साधना करनेवाले है।

निश्चय करलो कि हम सत्यकी आराधना छोड़नेवाले नही है। सत्यके लिए दुनियामे सच्ची अहिंसा ही धर्म है। अहिंसा प्रेमका सागर है। उसका नाम जगतमे कोई ले सका ही नही। उस प्रेमसागरसे हम सराबोर हो जाय तो हममे ऐसी उदारता आ सकती है कि उसमे सारी दुनियाको हम विलीन कर सकते है। यह बात कठिन अवश्य है, कितु है साध्य ही। इसीसे हमने प्रारभमे प्रार्थनामे सुना कि शकर हो या विष्णु; ब्रह्मा हो

या इद्र; बुद्ध हो या सिद्ध; मेरा सिर तो उसीके आगे झुकेगा जो रागद्वेष-रहित हो; जिसने कामको जीता हो; जो अहिंसा, प्रेमकी प्रतिमा हो। यह अहिंसा लूले-लगडे प्राणियोको न मारनेमें समाप्त नही होती। उसमें धर्म हो सकता है, परन्तु प्रेम तो उससे भी बहुत आगे बढा हुआ है। उसके दर्शन जिसको नही हुए वह लूले-लगडे प्राणियोको बचावे तो उससे क्या होना जाना था! ईश्वरके दरबारमे इसकी कीमत बहुत कम कूती जायगी। तीसरी बात है 'ब्रेड लेबर'—यज्ञ। शरीरको कष्ट देकर मेहनत करके ही खानेका हमे अधिकार है। पारमार्थिक दृष्टिसे किया हुआ काम यज्ञ है। मजदूरी करके भी सेवाके हेतु जीना है। लम्पट होनेको या दुनियाके भोगोका उपभोग करनेको जीवित रहना नही कहते है। कोई कसरतबाज नौजवान आठ घटे कसरत करे तो यह 'ब्रेड लेबर' नही है। तुम कसरत करो, शरीरको मजबूत बनाओ तो इसकी मै अवगणना नही करता; परतु जो यज्ञ टाल्स्टायने कहा है, गीताके तीसरे अध्यायमे जो बताया गया है, वह यह नही है। जीवन यज्ञकी खातिर है, सेवाके लिए है। जो ऐसा समझेगा वह भोगोको कम करता जावेगा। इस आदर्श साधनमे ही पुरुषार्थ है। भले ही इस वस्तुको किसीने सर्वांशमें प्राप्त न किया हो, भले ही वह दूर-ही-दूर रहे, किंतु फरहादने जिस तरह शीरीके लिए पत्थर फोडे उसी तरह हम भी पत्थर तोडें। हमारी यह शीरी अहिंसा है। उसमें हमारा छोटा-सा स्वराज्य तो शामिल है ही, बल्कि उसमे तो सभी कुछ समाया है।[1] (हि० न० २० ९.२८)

. . . . . .

रस्किनका Fors Clavigera (फोर्स क्लेविजेरा) बापूने बहुत रसके साथ पढना शुरू किया और आज कहने लगे—"यह पुस्तक तो बार-बार

---

[1]गत १० सितंबरको महर्षि टाल्स्टायकी जन्म-शताब्दीके अवसरपर सत्याग्रहाश्रममें दिए गये व्याख्यानका सारांश।

पढ़ें तो भी थकान नहीं मालूम होती। इसमेसे तो नई-नई बातें सूझती हैं।"

शिक्षाकी बुनियादके बारेमें कुछ विचार बहुत सुन्दर लगनेके कारण इस विषय पर एक छोटा-सा लेख आश्रमको भेजा।[1] मैंने (महादेवभाई) रस्किन

---

[1] जॉन रस्किन एक उत्तम प्रकारका लेखक, अध्यापक और धर्मज्ञ था। उसका देहांत १८८०के आसपास हुआ। उसकी एक पुस्तकका मुझपर बहुत ही गहरा असर पड़ा और उसीके सुझाये हुए रास्तेपर मैंने एक क्षणमें जिंदगीमें महत्वपूर्ण परिवर्तन कर डाला। यह बात ज्यादातर आश्रमवासी तो जानते ही होंगे। उसने सन् १८७१में सिर्फ मजदूर-वर्गको ध्यानमें रखकर एक मासिक पत्र लिखना शुरू किया था। उन पत्रोंकी तारीफ मैंने टॉल्स्टॉयकी किसी रचनामें पढ़ी थी। मगर वे पत्र मैं आजतक जुटा नहीं सका। उसकी प्रवृत्ति और रचनात्मक कार्यके विषयमें एक पुस्तक मेरे साथ आ गयी थी, उसे यहा पढ़ा। उसमें भी उन पत्रोंका उल्लेख था। इस परसे मैंने रस्किनकी एक शिष्याको विलायतमें लिखा। वही इस पुस्तककी लेखिका है। वह बेचारी गरीब, इसलिए ये पुस्तकें कहासे भेज सकती थी? मूर्खतासे या झूठे विनयसे मैंने उसे आश्रमसे रुपया मगा लेनेको नहीं लिखा। इस भली स्त्रीने अपनेसे ज्यादा समर्थ मित्रको मेरा खत भेज दिया। वे 'स्पेक्टेटर'के मालिक है। उनसे मैं विलायतमें मिला भी था। उन्होंने ये पत्र पुस्तकाकार चार भागोंमें छपाये हैं, सो भेज दिये। इनमेंसे पहला भाग मैं पढ़ रहा हूं। इनके विचार उत्तम हैं और हमारे बहुतसे विचारोंसे मिलते-जुलते हैं—यहांतक कि अनजान आदमी तो यही मान लेगा कि मैंने जो कुछ लिखा है और आश्रममें हम जो भी आचरण करते हैं, वह रस्किनकी इन रचनाओंसे चुराया हुआ है। 'चुराया हुआ' शब्दका अर्थ तो समझमें आ ही गया होगा। जो विचार या आचार जिससे लिया हो उसका नाम छिपाकर

और टॉल्स्टॉयके बीच एक समानता सुझाई, "टाल्स्टायने अपना कलानिष्ठ जीवन छोड़कर सेवानिष्ठ जीवनकी शुरुआत की और कलाकी पुस्तकोंका लिखना बिलकुल त्याग कर ऐसी घरेलू पुस्तकें और कहानियां लिखना शुरू किया, जिनसे आम लोगोंकी उन्नति हो। रस्किनके जीवनका पहला हिस्सा भी कलानिष्ठाका था। इस कलानिष्ठाके कालमें उसने मॉडर्न

यह बताया जाय कि यह हमारी अपनी कृति है, तो वह चुराया हुआ माना जाता है।

रस्किनने बहुत लिखा है। उसमेंसे इस बार तो थोड़ा ही देना चाहता हूं। वह कहता है कि इस कथनमें गभीर भूल है कि बिलकुल अक्षरज्ञान न होनेसे कुछ होना अच्छा ही है। रस्किनकी साफ राय यह है कि जो सच्ची है, आत्माका ज्ञान करानेवाली है, वही शिक्षा है और वही लेनी चाहिए। और बादमें वह कहता है कि इस दुनियामें मनुष्यमात्रको तीन चीजोंकी और तीन गुणोंकी आवश्यकता है। जो इन्हें हासिल करना नहीं जानता, वह जीनेका मंत्र ही नहीं जानता। और इसलिए ये छः चीजें शिक्षाका आधार होनी चाहिए। इस तरह मनुष्य-मात्रको बचपनसे—फिर भले वह लड़का हो या लडकी—जानना ही चाहिए कि साफ हवा, साफ पानी और साफ मिट्टी किसे कहते है, इन्हें किस तरह रखा जाय और इनका उपयोग क्या है। इसी तरह तीन गुणोंमें उसने गुणज्ञता, आशा और प्रेमको गिना है। जिनमें सत्यादिकी कद्र नहीं, जो अच्छी चीजको पहचान नहीं सकते, वे अपने घमंडमें फिरते हैं और आत्मानंद नहीं पा सकते। इसी तरह जिनमें आशावाद नहीं यानी जो ईश्वरके न्यायके बारेमें शंका रखते हैं, उनका हृदय कभी प्रफुल्लित नहीं रह सकता, और जिनमें प्रेम नहीं यानी अहिंसा नही, जो जीवमात्रको अपने कटुंबी नहीं मान सकते, वे जीनेका मंत्र कभी नहीं साध सकते।

पेण्टर्स, स्टोन्स ऑव वेनिस आदि पुस्तकें लिखीं। बादमें उसे लगा कि सौन्दर्यकी उपासना चीज तो अच्छी है, मगर आसपास दु:ख, दारिद्र्य और फूट हो, तो सौन्दर्यका आनंद कैसे लूटा जा सकता है ? इसलिए उसने अपनी कलम खून और आंसुओंमें डुबोई और 'अण्टु दिस लास्ट' ('सर्वोदय') लिखा। जो आलोचना टाल्स्टायकी हुई वह रस्किनकी भी हुई।" बापूने कहा—

यह तुलना एक खास हदके बाद नही रहती, क्योंकि टाल्स्टायने तो कला-जीवनकी यानी अपने भूतकालकी निंदा की, उससे इन्कार किया, जबकि रस्किनने Unto this Last (अण्टु दिस लास्ट) और Fors (फोर्स) लिखकर अपने कला-जीवन पर कलश चढा दिया।

इस बातपर रस्किनने अपनी चमत्कारी भाषामें बहुत विस्तारसे लिखा है। यह तो फिर किसी वक्त समाजके समझने लायक ढंगसे दे सकूं तो ठीक ही है। आज तो इतनेसे ही संतोष कर लेता हूं। साथ ही इतना और कह दूं कि जो कुछ हम अपने देहाती शब्दोंमें विचारते रहे हैं और आचरणमें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं, लगभग वही सब रस्किनने अपनी प्रौढ़ और विकसित भाषामें और अंग्रेज जनता समझ सके इस ढंगसे पेश किया है। यहां मैंने तुलना दो अलग भाषाओंकी नहीं की है, बल्कि दो भाषा-शास्त्रियोंकी की है। रस्किनके भाषा-शास्त्रके ज्ञानके साथ मेरे जैसा आदमी मुकाबला नहीं कर सकता। मगर ऐसा समय जरूर आयेगा जब भाषा-मात्रका प्रेम व्यापक होगा। तब भाषाके पीछे धूनी रमानेवाले रस्किन-जैसे शास्त्री निकल आयेंगे और वे उतनी ही प्रभावशाली गुजराती लिखेंगे, जितनी प्रभावशाली अंग्रेजी रस्किनने लिखी है।

२८.३.३२

यरवडा मंदिर

मैंने कहा—'टाल्स्टाय तो क्रान्तिकारी था, इसलिए उसने जीवनमें भी परिवर्तन किया, और रस्किन विचार देकर बैठा रहा।"

बापू बोले—

यह तो बहुत बडा फर्क है न? टाल्स्टायका-सा जीवन-परिवर्तन रस्किनमे नही है।

वल्लभभाईने कहा—"लेकिन आज रस्किनका नाम तो विलायतमें सचमुच कोई नहीं लेता न?"

बापू बोले—

हा, नही लेता, मगर रस्किन भुलाया नही जा सकता। उसका जमाना आ रहा है। ऐसा समय आ रहा है कि जिसने रस्किनको नही सुना और उसके बारेमे लापरवाही दिखाई, वह रस्किनकी तरफ मुडेगा। (म० डा०, २८ ३.३२)

. .

टाल्स्टाय एक बडा योद्धा था, पर जब उसने देखा कि लड़ाई अच्छी चीज नही है तब लडाईको मिटा देनेकी कोशिश करते-करते वह मर गया। उसने कहा है कि दुनियामे सबसे बडी शक्ति लोकमत है और वह सत्य और अहिसासे पैदा हो सकता है। (प्रा० प्र०, १०.६.४७)

: ६८ :

अमृतलाल वि० ठक्कर

ठक्करबापा आगामी २७ नवबरको ७० वर्षके हो जायगे। बापा हरिजनोके पिता है और आदि-वासियो और उन सबके भी, जो लगभग

हरिजनोकी ही कोटिके है और जिनकी गणना अर्द्धसभ्य जातियोमे की जाती है। दिल्लीके हरिजन-निवास-वासियोकी तजवीज इस प्रकार उनकी ७० वी जयती मनानेकी है कि जिससे ठक्करबापाके हृदयको सात्त्विक सतोष प्राप्त हो। ये लोग ठक्करबापाके जन्म-दिवसपर, हरिजन-कार्यके निमित्त, उन्हे ७०००) की एक विनम्र थैली भेट करना चाहते है। इसके लिए उन्होने मेरा आशीर्वाद मागा है। यह भी चाहते है कि उनके इस शुभ प्रयत्नको मै प्रकाशमे ला दू। पर मैने तो उन्हे झिडका है कि उनमे आत्म-श्रद्धाकी कमी है। ठक्करबापा एक विरल लोकसेवक है। वे विनम्र स्वभावके है। वे प्रशसाके भूखे नही। उनका जीवन-कार्य ही उनका एकमात्र सतोष और विश्राम है। वृद्धावस्था उनके उत्साहको मद नही कर सकी है। वे स्वय एक सस्था है। एक बार जब मैने उनसे कहा कि वे थोडा आराम ले ले तो तुरत उनका जवाब आया, "जब इतना तमाम काम करनेको पडा है, तब मै आराम कैसे ले सकता हू ? मेरा काम ही मेरा आराम है।" अपने जीवन-कार्यमे वे जिस प्रकार अपनी शक्ति लगा रहे है, उसे देखकर तो उनके आस-पास रहनेवाले नवयुवक भी लज्जित हो जाते है। इतने महान् कार्यके लिए और उस जन-सेवकके लिए, जो अपने विशाल वृद्ध कधोपर इतना भारी भार वहन कर रहा है, ७०००) की थैली एक प्रकारका अपमान है। कार्यकर्त्ताओका तो यह लक्ष्य होना चाहिए कि सारे हिदुस्तानसे वे ७०,०००) रु० से कम तो किसी हालतमे इकट्ठे नही करेगे। महान् सेवा-प्रवृत्ति और उसके सेवा-रत पिताको देखते हुए, यह ७०,०००) की रकम भी कोई चीज नही है। लेकिन एक महीनेके अदर यह रकम इकट्ठी करनी है, इस दृष्टिसे यह ठीक ही है। (ह० से०, २१ १० ३९)

. . . .

भारत-सेवक-समितिको अपने प्राणोकी तरह प्रिय समझनेवाले एक मित्र श्रीठक्करबापा-कोषके लिए दस रुपयेका चदा भेजते हुए लिखते है:

"श्री ठक्करबापाकी प्रशंसामें लिखे गये आपके एक-एक शब्दका मैं समर्थन करता हूं। इस संबधमें मेरी एक ही सूचना है और वह यह कि बापाके पुण्य कार्योंका सारा श्रेय भारत-सेवक-समितिको महज इसलिए नहीं मिलना चाहिए कि बापा उसके एक सदस्य है। समितिने बिना किसी हिचकिचाहटके उनको अपना सदस्य माना है और बापाके द्वारा मानव-जातिकी जो महान् सेवा हुई है, उसपर उसने हमेशा ही गर्व किया है।"

यह शिकायत बिलकुल ठीक है। दरअसल, बात तो यह है कि बापाकी कई विशेषताओंका उल्लेख करते हुए मै उनकी एक खास विशेषताका उल्लेख करना भूल गया हू, इसका मुझे खयाल ही न रहा। बात यह है कि भारत-सेवक-समितिकी सदस्यता स्वीकार करनेसे पहले बापा म्युनिसिपल कॉरपोरेशन, बबईके रोड-इजीनियरका काम करते थे। हरिजन सेवक-सघको उनकी सेवाए भारत-सेवक-समितिकी ओरसे ही बतौर कर्जके मिली है। मै मानता हू कि मेरी ओरसे समितिको किसी प्रकारके विज्ञापनकी जरूरत नही है और चूकि मै अपने आपको इस समितिका एक स्वत नियुक्त और अनियमित सदस्य समझता हू, इसलिए समितिकी प्रशसामे कुछ लिखना मै अपनी ही प्रशसा करनेके समान समझता हू। लेकिन जरूरत पडनेपर मै ऐसे नाजुक काम भी अच्छी तरह कर सकता हू। समितिके नामका उल्लेख तो अकस्मात् ही छूट गया था। मुझपर कामका काफी बडा बोझ रहता है। मैने सोचा तो था कि मै बापाका जिक्र करते हुए भारत-सेवक-समितिका भी जिक्र करूगा; लेकिन आखिर जैसा कि जाहिर है, बात ध्यानमे न रही। (ह० से०, ४ ११ ३६)

...

बापाकी इकहत्तरवी जयती मनानेमे मुझे हाजिर होना चाहिए। लेकिन मै इस लायक नही रहा हू। मेरी तो हार्दिक आशा है कि बापा सौ वर्ष पूरे करे। बापाका जन्म ही दलितोकी सेवाके लिए है, वे भले ही अस्पृश्य हो या भिल्ल या सताल या खासी इत्यादि। उनकी कदर करनेमें

भी हम दलितोंकी कुछ-न-कुछ सेवा करते है । बापाकी सेवाने हिंदुस्तानको बढ़ाया है । (ह० से० ६ १२ ३६)

: ६६ :

एस० वी० ठकार

श्री एस० वी० ठकार एक मूक परतु कुशल सेवक है । हरिजनोकी सेवाके उपरात उन्होने और भी कई क्षेत्रोमे काफी काम किया है । उन्होने मुझे एक सविस्तर रिपोर्ट भेजी है । उसमे उन्होने वर्णन दिया है कि कैसे एक जगह भिल्लोके दो पक्षोम सख्त झगडा पैदा हो गया था, परतु सरकार की मदद लेकर वह बीचमे पडे, उससे फसाद होते-होते रुक गया। भिल्लोके एक अत्यत प्रभावशाली सुधारक स्वर्गस्थ श्रीगुले महाराज थे, वह खुद भिल्ल थे । उनकी सरलता और हृदयकी सच्ची लगनके कारण उनकी गहरी छाप भिल्ल जनतापर पडी थी । उससे प्रेरित होकर उन्होने हजारो-की सख्यामे शराब पीना और दूसरी कई बुराइयोको छोड दिया था । साल पहले उनका देहात होनेपर एक और आदमीने उनकी जगह ली । सुधारक पक्षने, जिन लोगोने बुराइयोको नही छोडा था उनका बहिष्कार किया, इससे काफी वैमनस्य उनमे पैदा हो गया है । एक समय तो ऐसा लगने लगा था कि अभी मारपीट शुरू होगी । श्रीठकारके ठीक समयपर प्रयत्नसे वह तो रुक गई; परतु उसके साथ सुधारकी प्रवृत्तिको भी धक्का पहुचा है । अभी सुधारकोके विरोधियोका पक्ष प्रबल है और अगर पहलेकी तरह आदोलनमे शुद्ध धार्मिक प्रेरणा फिरसे पैदा न हो सकी तो अदेशा है कि आदोलन बिल्कुल बैठ जायगा । इसमेसे जैसे कि श्री-ठकार लिखते है हमे पाठ तो यह मिलता है कि हमारा हेतु चाहे कितना नेक हो अगर उसमे हिंसाका मिश्रण हो तो सब काम बिगड जाता है ।

किसी भी सुधारक प्रवृत्तिकी सफलताके लिए यह आवश्यक है कि स्वेच्छा और ज्ञानपूर्वक उसे जनताका सहकार मिले। बलात्कारसे हम लोगोकी आदतें सुधार नही सकते। (ह० से०, १८ १.४२)

: ७० :

द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर

रवीद्रनाथ ठाकुरके बडे भाई द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर जो 'बडे दादा' के नामसे पहचाने जाते है उनका, पिताका जैसा पुत्रके प्रति प्रेम होता है वैसा ही, मुझपर प्रेम है। वे मेरे दोष देखनेके लिए साफ इन्कार करते है। उनके खयालसे तो मैने कोई गलती ही नही की। मेरा असहयोग, मेरा चरखा, मेरा सनातनीपन, हिंदू-मुसलमान ऐक्यकी मेरी कल्पना, अस्पृश्यताका मेरा विरोध सब यथायोग्य है और इसीमें स्वराज्य है, यह मेरी मान्यता उनकी भी मान्यता है। पुत्रपर मोहित पिता उसके दोष नही देखता है, उसी प्रकार बडे दादा भी मेरे दोष देखना नही चाहते है। उनके मोह और प्रेमका तो भला मै यहापर उल्लेख ही कर सकता हू उसका वर्णन मुझसे हो ही नही सकता। उस प्रेमके योग्य बननेका मै प्रयत्न कर रहा हू। उनकी उम्र ८० से भी ज्यादा है। लेकिन छोटी-से-छोटी बातकी वे खबर रखते है। उन्हे यह भी खबर है कि हिंदुस्तानमे आज क्या चल रहा है। वे दूसरोसे पढाकर सुनते है और यह सब खबर प्राप्त करते है। दोनो भाइयोको वेदादिका गहरा अभ्यास है। दोनों सस्कृत जानते है। दोनोकी बातचीतमें उपनिषद और गीताके मत्र और श्लोक बराबर सुनाई देते है। (हि० न०, ११ ६ २५)

... .

इस बातपर विश्वास लाना कि द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर अब नही रहे, बडा ही कठिन है। शातिनिकेतनके तारसे यह शोकजनक समाचार मिला है कि बडे दादाको चिरशाति प्राप्ति हुई है। उनकी उम्र ९० वर्षके लगभग थी, फिर भी उनमे जो आनद और उत्साह दिखाई देता था उसके कारण उनके पास जानेवालेको कभी यह मालूम ही नही होता था कि उनके भौतिक अस्तित्वके अब थोडे ही दिन बाकी है। प्रतिभासपन्न पुरुषोके उस कुटुबमे बड़े दादाका स्थान महत्वका था। वे विद्वान थे, सस्कृत और अग्रेजी दोनो अच्छी तरह जानते थे, लेकिन इसके अलावा वे बडे धार्मिक मनुष्य थे और उनका हृदय भी विशाल था। वे श्रद्धासे उपनिषदोको ही मानते थे, फिर भी ससारकी दूसरी धर्म-पुस्तकोसे प्रकाश पानेके लिए भी वे स्वतत्र थे। उन्हें अपने देशसे बडा प्रेम था, फिर भी उनकी देशभक्ति दूसरे गुणोकी विरोधिनी न थी। वे अहिंसात्मक असहयोगके आध्यात्मिक रहस्यको समझते थे, लेकिन इसके साथ यह नही कि वे उसके राजनैतिक महत्वको भी न समझते हो। वे चरखेमे दिलसे विश्वास रखते थे और अपनी वृद्धावस्थामे भी उन्होने खादी धारण की थी। एक युवकमे जितना उत्साह होता है उतने ही उत्साहके साथ वे वर्तमान बातोको जाननेके लिए प्रयत्न करते थे। बडे दादाकी मृत्युसे हम लोगोमेसे एक साधु, तत्वज्ञानी और स्वदेशभक्त उठ गया है। मै कवि और शाति-निकेतनवासियोंके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करता हू। (हि० न०, २१ १ २६)

: ७१ :

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

लार्ड हार्डिजने डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुरको एशियाके महाकविकी पदवी दी थी, पर अब रवीन्द्रबाबू न सिर्फ एशियाके बल्कि ससार भरके महाकवि गिने जा रहे हैं। यदि अभी नही तो कम-से-कम बहुत जल्द उनका नाम ससारभरके महाकवियोमे गिना जाने लगेगा। दिन-पर दिन उनकी प्रतिष्ठा और प्रभाव बढ रहा है, जिससे उनकी जिम्मेदारी भी दिन-पर-दिन बढती जा रही है। उनके हाथसे भारतवर्षकी सबसे बडी सेवा यह हुई है कि उन्होने अपनी कविता द्वारा भारतवर्षका सदेश ससारको सुनाया है। इसीसे रवीन्द्रबाबूको सच्चे हृदयसे इस बातकी चिंता है है कि भारतवासी भारत-माताके नामसे कोई झूठा या सारहीन सदेशा ससारको न सुनावे। हमारे देशका नाम न डूबने पावे, इस बातकी चिंता करना रवीन्द्रबाबूके लिए स्वाभाविक ही है। उन्होने लिखा है कि मैंने इस आदोलनकी तानके साथ अपनी तान मिलानेकी भरसक कोशिश की, पर मुझे निराश होना पडा। उन्होने यह भी लिखा है कि असहयोग आदोलन-के शोरगुलमे मुझे अपनी हृदय-वीणाके लिए कोई उचित स्वर नही मिल सका। तीन जोरदार पत्रोमे उन्होने इस आदोलनके सबधमे अपना सदेह प्रकट किया है। अतमे वह इस नतीजेपर पहुचे है कि असहयोगका आदो-लन ऐसा गभीर और गौरवपूर्ण नही है कि वह उस भारतवर्षके योग्य हो सके, जिसे वह अपनी कल्पनाका आदर्श समझे हुए हैं। उनका मत है कि असहयोगका सिद्धात खडन और निराशाका सिद्धात है। रवीन्द्रबाबूकी समझमे वह सिद्धात भेदभाव और अनुदारतासे भरा हुआ है।

रवीन्द्रबाबूके हृदयमे भारतवर्षकी प्रतिष्ठाके लिए जो चिंता है उसके लिए हर हिंदुस्तानीको अभिमान होना चाहिए। यह बहुत अच्छी

बात हुई है कि उन्होने अपना संदेह ऐसी सुदर और सरल भाषामें प्रकट कर दिया ।

मै रवीन्द्रबाबूके सदेहोंका उत्तर बडी नम्रताके साथ देनेका प्रयत्न करूगा । मै रवीन्द्रबाबू या उन लोगोको जिनके हृदयपर रवीन्द्रबाबूकी कवितापूर्ण भाषाका प्रभाव पडा है शायद विश्वास न दिला सकू, पर मै उनको और कुल भारतवर्षको यह विश्वास दिलाना चहता हू कि असहयोगके उद्देश्यके सबधमे उनका जो कुछ सदेह है वह बिल्कुल निर्मूल है । मै उन्हे यह विश्वास दिलाना चाहता हू कि यदि उनके देशने असहयोगके सिद्धातको स्वीकार किया है तो इसमे उनके शर्मानेकी कोई बात नही है। अगर यह सिद्धात अमली तौरपर काममे आनेमे असफल हो तो सिद्धातका दोष न कहा जायगा, क्योकि अगर सच्चाईको अमली तौरपर काममे लानेवाले आदमी सफल होते हुए न दिखाई पडे तो इसमे सच्चाईका कोई दोष नही है । हा, यह सभव है कि असहयोग-आदोलन शायद अपने समयके पहले ही शुरू हो गया हो । तब हिंदुस्तान और ससार दोनोको उस उचित समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिए । पर हिदुस्तानके सामने तलवार और असहयोग इन दोनोको छोडकर और कोई उपाय नही था । अपनी सहायताके लिए कोई उपाय चुनना है तो वह इन्ही दोनोमेसे चुन सकता है ।

रवीन्द्रबाबू को इस बातसे भी न डरना चाहिए कि असहयोग-आदोलन भारतवर्ष तथा यूरोपके बीचमे एक बडी भारी दीवार खडी करना चाहता है । इसके विरुद्ध असहयोग आन्दोलन का मशा यह है कि आपसके आदर और विश्वासकी बुनियादपर बिना किसी दबावके सच्चे तथा प्रतिष्ठित सहयोगके लिए पक्का रास्ता तैयार किया जाय । यह आदोलन इसलिए चलाया गया है कि जिसमे हमसे कोई जबरदस्ती सहयोग न करा सके । हमारे विरुद्ध दल बाधकर हमे कोई नुकसान न पहुचा सके और सभ्यताके नामसे तथा तलवारके जोरसे आजकल जो तरीके हमारा खून चूसनेके लिए काममें लाये जा रहे है वे न लाये जा सके । असहयोग-आदोलन

इस बातके विरोधमें किया गया है कि हमारी इच्छा बिना और हमारे जाने बिना हमसे बुराईमें सहयोग कराया जा रहा है।

रवीन्द्रबाबूको अधिकतर चिंता विद्यार्थियोके बारेमें है। उनका मत यह है कि जबतक दूसरे स्कूल न खुल जाय तबतक उनसे सरकारी स्कूल छोडनेको न कहा जाय। इस बातमे मेरा उनसे पूरा मतभेद है। मैंने कोरी साहित्यकी शिक्षाको कभी परम आवश्यक नही समझा है। अनुभवसे मुझे यह मालूम हो गया है कि अकेली साहित्यकी शिक्षासे मनुष्यके चरित्रकी उन्नति रत्तीभर भी नही होती। मेरा यह भी विश्वास है कि चरित्रनिर्माणसे साहित्यकी शिक्षाका कोई सबध नही है। मेरा यह पक्का विश्वास है कि सरकारी स्कूलोने हमे बुजदिल, लाचार और अविश्वासी बना दिया है। उनके सबबसे हमारे हृदयमें असतोष तो उत्पन्न हो गया है, पर उस असतोषको दूर करनेके लिए कोई दवा हमे नही बतलाई गई है, जिससे हमारे हृदयोमे निराशाने घर कर लिया है। सरकारी स्कूलोका उद्देश्य हमे क्लर्क और दुभाषिया बनाना था। वह पूरा हो गया है। किसी सरकारकी धाक तभी कायम रहती है जब प्रजा स्वय अपनी इच्छासे उस सरकारसे सहयोग करती है। अगर सरकार हमे गुलाम बनाये हुए है और ऐसी सरकारके साथ सहयोग करना और उसे सहायता देना अनुचित है, तो हमारे लिए यह जरूरी है कि हम उन सस्थाओसे अपना नाता तोड दे जिनमे हम स्वय अपनी इच्छासे अबतक सहयोग दे रहे है। जातिकी आशा उसके नौजवानोपर निर्भर होती है। मेरा यह मत है कि अगर हमे इस बातका पता लग जाय कि यह सरकार पूरी तरहसे मरी हुई है तो अपने लडकोको उसके स्कूलो और कालेजोमे भेजना हमारे लिए पापका काम होगा।

मैंने जो प्रस्ताव राष्ट्रके सामने रखा है उसका खडन इस बातसे नहीं हो सकता कि अधिकतर विद्यार्थी पहली बारका जोश ठडा होते ही अपने स्कूलोमे फिरसे वापस चले गये। उनका अपनी बातोसे टल जाना इस

बातका सबूत नही है कि हमारा यह प्रस्ताव गलत है, बल्कि इस बातका सबूत है कि हम किस कदर नीचे गिर गये है। अनुभवसे यह पता लगा है कि राष्ट्रीय स्कूलोके खुलनेसे बहुत ज्यादा विद्यार्थी उनमे भरती नही हुए। जो विद्यार्थी सच्चे और अपने विश्वासके पक्के थे वे बिना कोई राष्ट्रीय स्कूल खुले हुए भी सरकारी स्कूलोसे बाहर निकल आये। मेरा पक्का निश्चय है कि जिन विद्यार्थियोने पहले-पहल स्कूल-कालेज छोडा है उन्होने देशकी बहुत बडी सेवा की है।

वास्तवमे रवीन्द्रबाबू जडसे ही असहयोग सिद्धातके विरुद्ध है। ऐसी हालतमे अगर उन्होने स्कूल और कालेजोसे विद्यार्थियोके निकलनेका विरोध किया तो कोई बडी बात नही है। उनका ऐसा करना तो स्वाभाविक ही था। रवीन्द्रबाबूके हृदयमे ऐसी हरएक वस्तुसे धक्का पहुचता है जिसका उद्देश्य खडन करना है। उनकी आत्मा धर्मकी उन आज्ञाओंके विरोधमे उठ खडी होती है जो हमे किसी वस्तुका खडन करनेके लिए कहती है। मै उनका मत उन्हीके शब्दोमे आपके सामने रख देता हू—"एक महाशयने इस वर्तमान आदोलनके पक्षमे मुझसे अक्सर यह कहा है कि प्रारभमे किसी उद्देश्यको स्वीकार करनेकी अपेक्षा उसे अस्वीकार करनेका भाव प्रबल रहता है। यद्यपि मै यह मानता हू कि वास्तवमे बात ऐसी ही है, पर मै इस बातको सच्ची नही मान सकता। भारतवर्षमे ब्रह्मविद्याका उद्देश्य मुक्ति या मोक्ष है, पर बौद्ध धर्मका उद्देश्य निर्वाण प्राप्त करना है। मुक्ति हमारा ध्यान सत्यके मडनात्मक पक्षकी ओर और निर्वाण उसके खडनात्मक पक्षकी ओर खीचता है। इसीलिए बुद्ध भगवानने इस बात पर जोर दिया कि ससार दु खमय है तथा उससे छुटकारा पाना हमारा धर्म है और ब्रह्मविद्याने इस बातपर जोर दिया कि ससार आनदमय है और उस आनदको प्राप्त करना हमारा परम कर्तव्य है।" इन वाक्यो और इसी तरहके दूसरे वाक्योसे पाठकगण रवीन्द्रबाबूकी मानसिक वृत्तिका पता लगा सकते है। मेरी नम्र रायमे किसी बातका खडन या अस्वीकार करना

वैसा ही आदर्श है जैसा किसी बातका स्वीकार करना या मडन करना। असत्यका अस्वीकार करना उतना ही जरूरी है जितना सत्यका स्वीकार करना। सब धर्म हमे यही शिक्षा देते है कि दो विरोधी शक्तिया हमपर अपना प्रभाव डाल रही है, और मनुष्य जीवनका प्रयत्न इसी बातमें रहता है कि वह लगातार स्वीकार करने योग्य वस्तुको स्वीकार और अस्वीकार करने योग्यको अस्वीकार करता रहे। बुराईके साथ असहयोग करना हमारा उतना ही कर्तव्य है जितना भलाईके साथ सहयोग करना। मै साहससे कह सकता हू कि रवीन्द्रबाबूने निर्वाणको केवल एक खडनात्मक या अभाव-सूचक दिशा बतलाकर बौद्ध धर्मके साथ बडा अन्याय किया है। हा, मै मानता हू कि उन्होने यह अन्याय जान-बूझकर नही किया। मै साहसके साथ यह भी कह सकता हू कि जिस तरह निर्वाण एक अभावात्मक दशा है, उसी तरहसे मुक्ति भी अभावको सूचित करनेवाली एक अवस्था है। शरीरके बधनसे छुटकारा पाना या उस बधनका बिलकुल नाश हो जाना, आनद प्राप्त करना है। मै अपनी दलीलके इस हिस्सेको खतम करते हुए इस बातकी ओर ध्यान खीचना चाहता हू कि उपनिषदोके रचयिताओने ब्रह्मका सबसे अच्छा वर्णन 'नेति' किया है।

इसलिए मेरी समझमे रवीन्द्रबाबूको असहयोग-आदोलनके अभावात्मक या खडनात्मक रूपपर चौकनेकी कोई जरूरत न थी। हम लोगोने 'नही' कहनेकी शक्ति बिलकुल गवा दी है। सरकारके किसी काममें 'नही' कहना पाप और अराजकता गिना जाने लगा था। जिस तरहसे कि बोनेके पहले निराई करना बहुत जरूरी है उसी तरहसे सहयोग करनेके पहले जान-बूझकर पक्के इरादेके साथ असहयोग करना हम लोगोने जरूरी समझा है। खेतीके लिए जितनी बुआई जरूरी है, उतनी ही निराई जरूरी है। वास्तवमे उस समय भी हर रोज निराई जरूरी है जबकि फसलें उगती रहती है। इस असहयोग-आदोलनके रूपमें जातिकी ओरसे सरकारको इस बातका निमत्रण दिया है कि जिस

तरहसे हरएक जातिका हक और हरएक अच्छी सरकारका धर्म है, उसी तरहसे इस सरकारको भी चाहिए कि वह जातिके साथ सहयोग करे। असहयोग-आदोलन जातिकी ओरसे इस बातका नोटिस है कि वह अब और ज्यादा दिनोतक दूसरोकी सरक्षकतामे रहकर सतोष न करेगी। हिंदुस्तानने तलवार या मारकाटके अस्वाभाविक और अधार्मिक सिद्धातके स्थानपर असहयोगके निर्दोष प्राकृतिक और धार्मिक सिद्धातको ग्रहण किया है। अगर हिंदुस्तान कभी उस स्वराज्यको प्राप्त करेगा जिसका स्वप्न रवीन्द्रबाबू देख रहे है तो वह सिर्फ शातिपूर्ण असहयोग आदोलनके द्वारा प्राप्त करेगा। वे चाहें तो ससारको अपना शातिपूर्ण सदेशा सुनावे और इस बातका भरोसा रखे कि हिंदुस्तान अगर अपनी बातका धनी बना रहेगा तो अपने असहयोग द्वारा उनके सदेशको अवश्य सच्चा साबित करेगा। रवीन्द्रबाबू जिस देशभक्तिके लिए उत्सुक हो रहे है, उसे असली तौरपर पैदा करनेको ही यह आदोलन किया गया है। हिदुस्तान जो यूरोपके पैरोके नीचे पडा हुआ है, ससारको कोई आशा नही दिला सकता। स्वतत्र और जाग्रत भारत ही दुखी ससारको शाति और सुखका सदेशा सुना सकता है। असहयोग-आदोलन इसीलिए चलाया गया है कि जिससे भारतवर्ष एक ऊचे स्थानसे अपना सदेशा ससारको सुना सके। (यं० इ०, १६२१)

. . .

..टैगोरकी क्या बात! उन्होने क्या नही साधा? साहित्यका एक भी क्षेत्र उन्होने छोडा है? और सबमे कमाल .एसी अलौकिक शक्ति-वाला आदमी हमारे यहा तो है ही नही, लेकिन दुनियामें भी होगा या नही, इसमें मुझे शक है।

वल्लभभाई बोले—"मगर उनका शातिनिकेतन चलेगा? वे तो बूढे हो गये और उनकी जगह लेनेवाला कोई रहा नहीं।" बापूने कहा—

....बात तो जरूर मुश्किल है। मगर यह तो कैसे कहा जा सकता

है। भगवानने इतनी असाधारण प्रतिभावाला आदमी पैदा किया तो उसे यह तो मजूर नही होगा कि उसका काम योही बद हो जाय।

वल्लभभाई कहने लगे—यह तो ठीक है। मगर उनकी जो असाधारणताए है उन सबको कौन किस क्षेत्रमें ला सकेगा? मैंने (महादेवभाई) कहा—नंदलाल बोस, असित हलदार-जैसे उत्तम चित्रकार वहां मौजूद हैं। विधुशेखर शास्त्री भी है। वल्लभभाई बोले—चित्रकला तो ठीक है। मगर उसकी पाठशालाए कितनी चल सकती है? हमारा तो खादी और चरखा है। उसके लिए बापू थोड़े ही चाहिए! ये तो बापू न होंगे तो दूधाभाई भी आकर चलाते रहेंगे। उन्होने कोई ऐसी चीज नहीं दी, जिसे लोग अपने हाथोमें ले सकें और जो अखड रूपमें चलती ही रहे।

मैंने तुरत कहा—टैगोरके बारेमें यह कहा जा सकता है कि आज तक उनके यहां असाधारण प्रतिभावाले लोग खिचकर न आये हों तो शायद अब उनके कामको जारी रखनेके लिए वे आ जाय। शांतिनिकेतनको उनके आदर्शके अनुसार ही जारी रखनेके लिए नये आदमी क्यो न शरीक होंगे? बापूने कहा—

आज उनकी प्रचड शक्तिसे ज्यादा लोग आकर्षित न हो तो भविष्यमे आकर्षित हो सकते है। आज भी रामानद चटर्जी-जैसे लोग तो है ही और ईश्वर कृपा हो तो और लोग भी आ सकते है। और उनका श्रीनिकेतनका काम तो जारी ही रहेगा। एमहर्स्ट-जैसा आदमी विलायत छोड़कर इसे चलानेके लिए चला आए तो मुझे आश्चर्य नही होगा। (म० डा०)

• • • • • • • •

आप (डा० कागावा) शांतिनिकेतन देखे बगैर चले जाये, यह कैसे हो सकता है

कागावा—मैंने कविके काव्योंको पढ़ा है। मुझे वे बहुत प्रिय है।

गांधीजी—किंतु कवि आपको प्रिय है न?

कागावा—मैं रोज 'गीतांजली' पढ़ा करता हूं तो क्या रोज कविका

साम्निध्य अनुभव नहीं करता ? हो सकता है कि कवि अपने काव्योंसे महान् हो ।

गाधीजी—कभी-कभी इसका उल्टा सत्य होता है, पर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके विषयमे यह कहूगा कि अपने महाकाव्योसे भी वे महान् है । अब एक दूसरा प्रश्न पूछता हू । आपके प्रवासक्रममें पाडिचेरी है या नही ? आप अगर अर्वाचीन भारतवर्षका अध्ययन करना चाहते है, तो शातिनिकेतन और अरविंद-आश्रम आपको देखने ही चाहिए । **(ह० से०, २८.१.३९)**

• •

शातिनिकेतनमे आगमन मेरे लिए एक तीर्थ-यात्राके समान था । बहुत दिनोमे मेरी इच्छा वहा जानेकी थी, लेकिन यह अवसर मलिकन्दा जाते समय ही मुझे मिल सका । मेरे लिए शातिनिकेतन नया नही है । १९१५ में जब इसकी रूपरेखा बन रही थी तब मै वही था । इसका मतलब यह नही कि अब इसका निर्माण-क्रम रुक गया है । गुरुदेव खुद विकसित हो रहे है । वृद्धावस्थाके कारण उनके मनके लचीलेपनमें कोई अतर नही पडा है । इसलिए जबतक गुरुदेवकी भावनाकी छाया उसके ऊपर है तबतक शातिनिकेतनकी वृद्धि रुक नही सकती । वहा प्रत्येक मनुष्यकी उनके प्रति जो श्रद्धा है वह ऊपर उठानेवाली है, क्योकि वह सहज है । मुझे तो इसने अवश्य ही ऊचा उठाया । कृतज्ञ छात्रो और अध्यापकोने उनको जो उपाधि 'गुरुदेव' की दे रखी है उससे शातिनिकेतनमे उनकी स्थिति ठीक-ठीक व्यक्त होती है । यह स्थिति उनकी इसलिए है कि वह उस स्थान और वहाके समूहमे निमग्न हो गये है, अपनेको भूल गये है । मैने देखा कि वह अपनी प्रियतम कृति 'विश्व-भारती' के लिए जी रहे है । वह चाहते है कि यह फूले-फले और [illegible] भविष्यके विषयमें निश्चिन्त हो जाये । इसके बारेमें उन्[illegible] देरतक बातचीत की । लेकिन इतना भी उनके लिए काफी नही था [illegible] जब हम विदा हो रहे थे तब उन्होने मुझे नीचे लिखा बहुमूल्य पत्र दिया ।

प्रिय महात्माजी,

आपने आज सुबह ही हमारे कार्यके 'विश्व-भारती'-केंद्रका विहंगावलोकन किया है। मैं नहीं जानता कि आपने इसकी मर्यादाका क्या अंदाज लगाया है। आप जानते हैं कि यद्यपि अपने वर्तमान रूपमें यह संस्था राष्ट्रीय है, तथापि अन्त भावनाको दृष्टि से यह एक सार्वदेशिक—अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है और अपने साधनोंके अनुसार भरसक शेष जगतको भारतकी संस्कृतिका आतिथ्य प्रदान करती है।

एक बड़े गाढ़े अवसरपर आपने बिल्कुल टूटनेसे इसे बचाया और अपने पांवपर खड़े होनेमें इसकी सहायता की; आपके इस मित्रतापूर्ण कार्यके लिए हम आपके निकट सदा आभारी हैं।

और अब शांतिनिकेतनसे आपके विदा होनेके पहले मैं आपसे जोरदार अपील करता हूं कि यदि आप इसे एक राष्ट्रीय सपत्ति समझते हैं तो इस संस्थाको अपने संरक्षणमें लेकर इसे स्थायित्व प्रदान करें। 'विश्वभारती' उस नौकाके समान है जो मेरे जीवनके सर्वोत्तम रत्नोंसे भरी हुई है और मुझे आशा है कि अपनी रक्षाके लिए अपने देशवासियोंसे यह विशेष देखरेख पानेका दावा कर सकती है।

प्रेमपूर्वक

रवींद्रनाथ ठाकुर

इस सस्थाको अपने सरक्षणमे लेनेवाला मै कौन होता हू ? चूकि यह एक ईमानदार आत्माकी कृति है, इसलिए ईश्वरका सरक्षण इसके साथ है। वह कोई दिखावेकी चीज नही है। गुरुदेव स्वय सार्वदेशिक—अतर्राष्ट्रीय है, क्योकि वह सच्चे रूपमे राष्ट्रीय है। इसलिए उनकी सपूर्ण कृतिया सार्वदेशिक है और विश्वभारती' उन सबमे श्रेष्ठ है। मुझे इसमे किसी तरहका सदेह नही कि जहातक आर्थिक बोझका सबध है इसके भविष्यके बारेमे गुरुदेवको सपूर्ण चितासे मुक्त कर देना चाहिए।

उनकी हृदयग्राही अपीलके जवाबमें जो कुछ सहायता करने लायक मै हू, करनेका मैंने उनको वचन दिया है। (ह० से०, २-३-४०)

... .

"मै यहा आप लोगोके लिए कोई अतिथि या महमान बनकर नही आया हू। शातिनिकेतन तो मेरे लिए घरसे भी अधिक है। जब १९१४ में मै इगलैडसे लौटनेवाला था तब यही तो मेरे दक्षिण अफ्रिकावाले कुटुब-का प्रेमपूर्वक आतिथ्य हुआ था और यहा मुझे भी करीब एक महीनेतक आश्रय मिला था। जब मै आप सब लोगोको अपने सामने एकत्रित देखता हू तो उन दिनोकी याद मेरे हृदयपर छा जाती है। मै कितना चाहता हू कि यहा ज्यादा दिन ठहरू, पर अफसोस कि यह सभव नही। यहा कर्तव्यका प्रश्न है। उस दिन एक मित्रको एक पत्रमे मैने लिखा था कि शातिनिकेतन और मलिकदा की यह यात्रा मेरे लिए तीर्थ-यात्रा है। सचमुच इस बार शातिनिकेतन मेरे लिए 'शाति' का 'निकेतन' सिद्ध हुआ। मै यहा राजनीतिकी सब चिंता और झझट छोडकर मात्र गुरुदेवके दर्शन और आशीर्वाद लेने आया हू। मैने अक्सर एक कुशल भिक्षुक होनेका दावा किया है। लेकिन आज गुरुदेवका मुझे जो आशीर्वाद मिला है उससे बढकर दान मेरी झोलीमे कभी किसीने नही डाला। मै जानता हू कि उनका आशीर्वाद तो मुझे हमेशा ही है। मगर आज मेरा खास सौभाग्य है कि उन्हीके हाथो रूबरू मुझे आशीर्वाद मिला और इस कारण मेरे हर्ष-का पार नही। (ह० से०, ३०-३-४०)

.. . .

डा० रवीन्द्रनाथ टैगोरके निधनमें हमने न केवल अपने युगके सबसे बडे कविको ही, बल्कि एक उत्कट राष्ट्रवादीको, जो कि मानवताका पुजारी भी था, खो दिया है। शायद ही कोई ऐसी सार्वजनिक प्रवृत्ति होगी, जिसपर उनके शक्तिशाली व्यक्तित्वकी छाप न पड़ी हो। शाति-निकेतन और श्रीनिकेतनके रूपमे उन्होने समस्त राष्ट्रके लिए ही नही,

अपितु समस्त ससारके लिए विरासत छोडी है। प्रभु उस महान् आत्माको शाति दे और शातिनिकेतनके जिन सचालकोपर इसका उत्तरदायित्व आ पडा है, वे उसके योग्य सिद्ध हो (७-८-४१)

. . . .

१७ तारीख गुरुदेवका श्राद्ध-दिवस है। जो लोग श्राद्धको धार्मिक महत्व देते है, वे निसदेह उस दिन निर्जल उपवास करेगे या केवल फलोंपर रहेगे और अपना समय प्रार्थनामे बितायेगे। प्रार्थना व्यक्तिगत रूपमें की जा सकती है अथवा सामूहिक रूपमे। प्रत्येक नगर और प्रत्येक ग्रामके निवासी, जिन्होने उनके उस ऊचा उठानेवाले सदेशको सुना है, जो उन्होने अपनी कृतियोद्वारा दिया तथा जिसे उन्होने अपने जीवनमे जिया, सुविधानुसार किसी समय एकत्र होगे और उस दिव्यजीवनके बारेमे चितन करेगे और अपने आपको देश-सेवाके लिए समर्पित कर देगे।

गुरुदेवका ध्येय शाति और सद्भावना था। वे साम्प्रदायिक बधनो-से अपरचित थे। इसलिए मै आशा करता हू कि सब वर्ग एक स्वरसे इस पवित्र दिनको मनायेगे और साम्प्रदायिक ऐक्यको बढावा देगे।

मै लोगोको यह भी याद दिलाना चाहूगा कि दीनबधु-स्मारक-कोष-का अधिकाश अभी इकट्ठा किया जाना है। यह कहने दुख होता है कि यह कोष अब गुरुदेव-स्मारक-कोष भी बन गया है, कारण कि स्मारक-के लिए इकट्ठा किया जानेवाला सब धन केवल शातिनिकेतनके, जिसमें विश्वभारती और श्रीनिकेतन भी सम्मिलित है, सचालन और सवर्द्धन-के लिए व्यय किया जायगा। इससे गुरुदेवके लिए अलग और विशेष स्मारककी आवश्यकता समाप्त नही हो जाती। लेकिन इसपर विचार करना उस समयतक बिडम्बनामात्र होगी जबतक कि वह स्मारक पूरा न हो जाय, जिसका बीजारोपण स्वय गुरुदेवने किया था। (१२-८-४१)

. . . .

दीनबधु एंड्रयूज-स्मारक और गुरुदेव-स्मारक दोनो पर्यायवाची शब्द हैं। गुरुदेवने दीनबधु-स्मारकका आरभ किया था, लेकिन उसकी पूर्त्तिके पहले ही वे दीनबधुके अनुगामी बन गये। इसलिए दीनबधुका स्मारक अब गुरुदेवका भी स्मारक बन गया है। स्मारकका हेतु इन दो महान आत्माओके अनुरूप ही है। शातिनिकेतन, विश्वभारती और श्रीनिकेतनकी समृद्धि और रक्षा ही वह हेतु है। ये तीनो सस्थाए वास्तवमे एक ही है। यह बड़े दुःख और शर्मकी बात है कि पाच लाखकी यह छोटी-सी रकम धनिको, विद्यार्थियों या मजदूरोकी ओरसे अभी तक इकट्ठा नही हो पाई है। हर कोई यह मानता है कि गुरुदेवके और उनकी सस्थाके कारण हिदुस्तानको वह यश और प्रतिष्ठा प्राप्ति हुई है जो किसी व्यक्ति या सस्थाके कारण उसे कभी प्राप्त नही हुई। शातिनिकेतनका ही यह प्रभाव था कि जिससे प्रभावित होकर चीनके सेनाध्यक्ष चागकाई शेक और श्रीमती चागकाई शेकने उसे इतनी बडी रकम भेट की थी। शातिनिकेतनमे जो काम हो रहा है, उसको देखते हुए उसका खर्च न कुछ-सा है। कारण यह है कि जो लोग शुद्ध अवैतनिक काम नही करते, वे भी अपेक्षाकृत कम वेतन लेकर काम कर रहे है। अबतक स्मारक निधिमे कुल करीब एक लाख रुपए इकट्ठे हुए है। मुझे आशा है कि स्मारककी बाकी रकम जल्दी ही जमा हो जायगी और मुझको धन-सग्रहके लिए दौरा करनेकी कोई जरूरत न रह जायगी। स्मारककी रकमको पूरी करनेके लिए मैं वचनबद्ध हू। जब गुरुदेव मृत्यु-शय्यापर थे, मैंने उन्हे अपने आखिरी पत्रमे लिखा था कि अगर ईश्वरकी मर्जी हुई तो मैं दीनबधु-स्मारककी पूरी रकम वसूल कर लूगा। दीनबधुको शातिनिकेतनकी आर्थिक स्थितिकी चिंता दिन-रात बनी रहती थी। वे इस चिताको मेरे पास बतौर धरोहरके छोड गये है। हिदुस्तानके और मानवताके इन दो सेवकोकी इस पुकारकी मैं जरा भी उपेक्षा नही कर सकता। जिनके मनमे इन दोनो महापुरुषोकी स्मृतिके लिए आदर है और जो गुरुदेवकी सजीव कृतिके मूल्यको समझते है, उनमे निवेदन

है कि वे स्वेच्छासे लिये हुए इस दायित्वको निबाहनेमे मेरी मदद करें।
(ह० से०, २६-४-४२)

. . . .

गुरुदेवकी देह खाकमे मिल चुकी है, लेकिन उनके अदर जो जोत थी, जो उजेला था, वह तो सूरजकी तरह था, जो तबतक बना रहेगा जबतक धरतीपर जानदार रहेगे। गुरुदेवने जो रोशनी फैलाई वह आत्मा-के लिए थी। सूरजकी रोशनी जैसे हमारे शरीरको फायदा पहुचाती है, वैसे गुरुदेवकी फैलाई रोशनीने हमारी आत्माको ऊपर उठाया है। वे एक कवि थे और प्रथम श्रेणीके साहित्यिक थे। उन्होने अपनी मातृ-भाषामे लिखा और सारा बगाल उनको कविताके झरनेसे काव्यरसका गहरा पान कर सका। उनकी रचनाओके अनुवाद बहुत-सी भाषाओंमे हो चुके है। वे अग्रेजीके भी बहुत बडे लेखक थे और शायद बिना अग्रेजी जाने ही वे उस जबानके इतने बडे लेखक बन गये थे। मदरसेकी पढाई तो उन्होने की थी, लेकिन युनिवर्सिटीकी कोई डिग्री उन्होने नही ली थी। वे तो बस गुरुदेव ही थे। हमारे एक वाइसरायने उनको एशियाका कवि कहा था। उससे पहले किसीको ऐसी पदवो नही मिली थी। वे समूची दुनियाके भी कवि थे। यही क्यो, वे तो ऋषि थे। हमारे लिए वे अपनी 'गीताजलि' छोड गये है, जिसने उनको सारी दुनियामे मशहूर कर दिया। तुलसीदासजी हमारे लिए अपनी अमर रामायण छोड गये है। वेदव्यासजीने महाभारतके रूपमे हमारे लिए मानव-जातिका इतिहास छोडा है। ये सब निरे कवि नही थे। ये तो गुरु थे। गुरुदेवने भी सिर्फ कविके नाते ही नही, ऋषिकी हैसियतसे भी लिखा है। लेकिन सिर्फ लिखना ही उनकी अकेली खासियत नही थी। वे एक कलाकार थे, नृत्यकार थे और गायक थे। बढिया-से-बढिया कलाम जो मिठास और पवित्रता होनी चाहिए, वह सब उनमे और उनकी चीजोमे थी। नई-नई चीजे पैदा करनेकी उनकी ताकतने हमको शातिनिकेतन,

श्रीनिकेतन और विश्वभारती जैसी संस्थाएं दी हैं। अपनी इन संस्थाओंमें वे भावरूपसे विराजमान हैं, और ये अकेले बंगालको ही नहीं, बल्कि समूचे हिंदुस्तानको उनकी विरासतके रूपमें मिली हैं। शांतिनिकेतन तो हम सबके लिए असलमें यात्राका एक धाम ही बन गया है। गुरुदेव अपने जीतेजी इन संस्थाओंको वह रूप नहीं दे पाये जो वे देना चाहते थे, जिसका वे सपना देखते थे। कौन है, जो ऐसा कर पाया हो? आदमीके मनोरथको पूरा करना तो भगवानके हाथमें है। फिर भी ये संस्थाएं हमें उनकी कोशिशोंकी याद दिलायेंगी और हमेशा हमको यह बताती रहेंगी कि गुरुदेवके मनमें अपने देशके लिए कितनी गहरी प्रीति थी और उन्होंने उसकी कितनी-कितनी सेवाएं की हैं। उनके रचे कौमी गीतको आप अभी-अभी सुन चुके हैं। हमारे देशके जीवनमें इस गीतकी अपनी एक जगह बन गई है। हजारों-लाखों लोग एकसाथ इसकी प्रेरणा पहुंचानेवाली कड़ियोंको अक्सर गाते रहते हैं। यह सिर्फ गीत ही नहीं है, बल्कि भक्ति-भावसे भरा भजन भी है। (ह० से०, १९-५-४६)

: ७२ :

जनरल डायर

आर्मी कौंसिलने जनरल डायरको समझकी भूलका दोषी ठहराया और परामर्श दिया कि उसे सरकारी सेनामें कहीं नौकरी न मिले। मि० माटेगूने भी जनरल डायरके आचरणकी कड़ी आलोचना करनेमें कोई बात उठा नहीं रखी। इसपर भी किसी कारणवश मुझसे यह कहे बिना रहा नहीं जाता कि जनरल डायर ही सबसे बड़ा अपराधी नहीं है। उसकी बर्बरता स्पष्ट है। आर्मी कौंसिलके सामने जनरल डायरने अपने बचावकी

जो बाते कही है, उनमेंसे हरएकमें उसकी महा नीच तथा असैनिक कायरता-के चिह्न पाये जाते है। निहत्थे स्त्री, पुरुष और बच्चोंको जो खेल-तमाशा तथा छुट्टी मनानेका ही काम जानते थे, उसने बागी सेना बताया है। जनरल डायरने इसलिए अपनेको पजाबका रक्षक बताया है कि उसने घिरे हुए आदमियोको खरहोंकी तरह गोलियोंसे मार डाला। ऐसा मनुष्य योद्धा कहलानेके योग्य नही है। उसके कार्यमे कोई वीरता नही पाई जाती। उसने कोई जोखिम नही उठाई। बिना छेड-छाडके और बिना सूचना दिये ही उसने गोलिया चलाई, यह समझकी भूल नही है। कल्पित विपदके सामने यह उसकी थरथराहट है। इससे बहुत बुरी अयोग्यता तथा कठोर हृदयता ही प्रकट होती है। किंतु जनरल डायर पर जो खर्च किया गया है वह बहुत करके बे-मार्ग हुआ है। इसमे सदेह नही कि जनरल डायरकी गोलीबारी भयकर थी। उसकी करतूतसे जितने निर्दोष आदमी मरे, वह घटना भी बडी शोकजनक थी। किंतु पीछे धीरे-धीरे जो अत्याचार, जो बेइज्जती और जो धरपकड हुई वह बहुत बुरी और आत्माका नाश करनेवाली थी और जिन अफसरोने यह कार्य किया उन्हे जलियावाला बागमे हत्याए करनेवाले जनरल डायरकी अपेक्षा अधिक दोषी समझना चाहिए। जनरल डायरने तो थोड़ेसे आदमियोको ही मार डाला, पर इसके बाद अत्याचार करने-वाले अफसरोने राष्ट्रके प्राण हर लिये। कर्नल फ्रैंक जानसन बडा भारी अपराधी है; पर कौन आदमी इसका नाम लेता है ? इसने निर्दोष लाहौरमें आतक फैला दिया और अपनी निष्ठुर आज्ञासे फौजी कानूनके समस्त अफसरोको कडी कार्रवाई करनेको बाध्य किया। किंतु मुझे इस जान-सनपर भी उतना कहना नही है। पजाब तथा भारतके समस्त मनुष्योंका पहला कर्तव्य है कि वे कर्नल ओब्रायन, मि० बास्वर्थ स्मिथ, राय श्रीराम तथा मि० मलिक खाको नौकरीसे निकाल बाहर करावे। ये अभी तक सरकारी नौकरीमें बने हैं। इनका दोष वैसा ही सिद्ध हुआ है जैसा जनरल डायरपर

सिद्ध किया गया है। यदि हम संतुष्ट होकर पंजाबके शासनको अन्य अत्याचारियोंसे परिष्कृत करना भूल जाय तो हम अपने कर्तव्यमें चूक जायेंगे। यह केवल मंच परसे व्याख्यान देने या प्रस्ताव पास करनेसे नहीं होगा। यदि हम सरकारी कर्मचारियोंपर प्रभाव डालकर उन्हें यह दिखाना चाहे कि वे प्रजाके मालिक नहीं, बल्कि रक्षक और नौकर है जो बुरा आचरण करनेपर अपने पदपर रह नहीं सकते तो हमें खूब कड़े उपायका अवलंबन करना चाहिए। (म० गा०—रामचंद्र वर्मा पृष्ठ ४०२)

: ७३ :

मिस डिक

टाइप-राइटरोंके एजेंटसे मेरा कुछ परिचय था। मै उससे मिला और कहा कि यदि कोई टाइपिस्ट (भाई या बहन) ऐसा हो जिसे 'काले' आदमीके यहा काम करनेमे कोई उज्र न हो तो मेरे लिए तलाश कर दें। दक्षिण अफ्रिकामें लघु-लेखन (शॉर्टहैंड) अथवा टाईपिंगका काम करने-वाली अधिकांश स्त्रियां ही होती हैं। पूर्वोक्त एजेंटने मुझे आश्वासन दिया कि मैं एक शोर्टहैंड-टाइपिस्ट आपको खोज दूंगा। मिस डिक नामक एक स्कॉच कुमारी उसके हाथ लगी। वह हाल ही स्काटलैंडसे आई थी। जहा भी कही प्रामाणिक नौकरी मिल जाय वहा करनेमें उसे कोई आपत्ति न थी। उसे काममे लगनेकी भी जल्दी थी। उस एजेंटने उस कुमा-रिकाको मेरे पास भेजा। उसे देखते ही मेरी नजर उसपर ठहर गई। मैंने उससे पूछा—

"तुमको एक हिंदुस्तानीके यहा काम करनेमें आपत्ति तो नहीं है ?"

उसने दृढताके साथ उत्तर दिया—"बिलकुल नही।"

"क्या वेतन लोगी ?"

"साढे सत्रह पौंड अधिक तो न होगे ?"

"तुमसे मै जिस कामकी आशा रखता हू वह ठीक-ठीक कर दोगी तो इतनी रकम बिलकुल ज्यादा नही है। तुम कब कामपर आ सकोगी ?"

"आप चाहें तो अभी।"

इस बहनको पाकर मै बडा प्रसन्न हुआ और उसी समय उसे अपने सामने बैठकर चिट्ठिया लिखवाने लगा। इस कुमारीने अकेले मेरे कारकुनका ही नही, बल्कि सगी लडकी या बहनका भी स्थान मेरे नजदीक सहज ही प्राप्त कर लिया। मुझे उसे कभी किसी बातपर डाटना-डपटना नही पडा। शायद ही कभी उसके काममे गलती निकालनी पडी हो। हजारो पौंडके देन-लेनका काम एक बार उसके हाथमे था और उसका हिसाब-किताब भी वह रखती थी। वह हर तरहसे मेरे विश्वासका पात्र हो गई थी। यह तो ठीक, पर मै उसकी गुह्यतम भावनाओंको जानने योग्य उसका विश्वास प्राप्त कर सका था और यह मेरे नजदीक एक बडी बात थी। अपना जीवन-साथी पसद करनेमे उसने मेरी सलाह ली थी। कन्या-दान करनेका सौभाग्य भी मुझीको प्राप्त हुआ था। मिस डिक जब मिसेज मैकडॉनल्ड हो गई तब उन्हे मुझसे अलग होना आवश्यक था। फिर भी विवाहके बाद भी, जब-जब जरूरत होती मुझे उनसे सहायता मिलती थी। (आ० क०, १९२७)

: ७४ :

रेवरेंड डुड नीडु

एक तीसरे ख्यातनामा पादरी भी थे। उन्होने पादरीपन छोडकर पत्रका सपादन ग्रहण किया था। आप ब्लुमफोटीनमे प्रकाशित होनेवाले 'फ्रैण्ड' नामक दैनिकके सपादक रेवरेड डुडनीडु हैं। उन्होने गोरोके द्वारा अपमानित होकर भी अपने पत्रमे भारतीयोका पक्ष किया था। दक्षिण अफ्रीकाके प्रसिद्ध वक्ताओमे उनकी गणना होती थी। (द० अ० स० १६२४)

: ७५ :

श्री जोसेफ डोक

जोसेफ डोक बैप्टिस्ट सप्रदायके पादरी थे। दक्षिण अफ्रीकामे आनेसे पहले वे न्यूजीलैडमे थे। इस घटना[1]के छ महीने पहले की बात है, एक दिन वह मेरे दफ्तरमे आये और अपना कार्ड भेजा। उसमे 'रेवरेण्ड' विशेषणका उपयोग किया गया था। इसपरसे मैने झूठमूठ ही यह कल्पना कर ली कि जिस प्रकार अन्य कितने ही पादरी मुझे ईसाई बननेका उपदेश करने या आदोलन बद करनेको कहनेके लिए आते है, उसी प्रकार अथवा बुजुर्ग बनकर मेरे साथ सहानुभूति दिखानेके लिए वह आय होगे। पर ज्योही मि० डोक अदर आये और बातचीत करने लगे त्योही कुछ

---

[1] दक्षिण अफ्रीकाके पहले समझौतेके अवसर पर मीर आलम द्वारा पिटनेकी घटना।

मिनटोमे ही मैंने अपनी भूलको समझ लिया और दिल हीमे मैंने उनसे क्षमा माग ली। उस दिनसे हम बडे मित्र बन गए। युद्ध-संबधी तमाम समाचारोसे उन्होने अपनेको परिचित बताया और कहा "इस युद्धमे आप मुझे अपना मित्र समझिए। मुझसे जो कुछ सेवा बनेगी, वह सब मै अपना धर्म समझकर करनेकी इच्छा रखता हू। ईसाके जीवनादर्शका चितन-मनन करके मैंने तो यही सीखा है कि आपत्कालमे दीन-दुखियोका साथ देना चाहिए।" यह हमारा पहला परिचय था। इसके बाद दिनोदिन हमारा स्नेह-सबध बढता ही गया।. . .पर डोक-कुटुबने मेरी जो सेवा की, उसका वर्णन करनेसे पहले उनका थोड़ा-बहुत परिचय दे देना भी आवश्यक था। रात हो या दिन, कोई-न-कोई मेरे पास जरूर बैठा रहता था। जबतक मै उनके घरमे रहा तबतक उनका मकान केवल एक धर्मशाला ही बन गया था। भारतीयोमे फेरीवाले लोग भी थे। उनके कपडे मजदूरोके-जैसे और मैले भी रहते। उनके साथमे एक गठरी या टोकरी भी अवश्य रहती। जूतोपर सेर भर धूल भी। मि० डोकके मकानपर ऐसे लोगोसे लगाकर अध्यक्ष तकके सभी दरजेके लोगोंकी एक भीड लगी रहती। सब मेरा हाल पूछने और डाक्टरकी आज्ञा मिलनेपर मुझसे मिलनेके लिए चले आते। सभीको वे समान भावसे और सम्मानपूर्वक अपने दीवानखानेमे बैठाते और जबतक मै उनके यहा रहा, तबतक उनका सारा समय मेरी शुश्रूषामे और मुझसे मिलनेके लिए आनेवाले सैकडो सज्जनोके आदर-सत्कार हीमे जाता। रातको भी दो-तीन बार मि० डोक चुपचाप मेरे कमरेमें आकर जरूर देख जाते। उनके घरपर मुझे एक दिन भी ऐसा खयाल नही हुआ कि यह मेरा घर नही, या मेरे सबधी होते तो इससे अच्छी सेवा करते। पाठक यह भी खयाल न कर ले कि इतने जाहिरा तौरपर भारतीय आदोलनका पक्ष ग्रहण करने तथा मुझे अपने घरमे स्थान देनेके कारण उन्हें कुछ सहना न पड़ा होगा। वे अपने पथके गोरोके लिए एक गिरजाघर चला रहे थे।

उनकी आजीविका इन पथवालोके हाथोमें थी। सभी लोग तो उदार दिल-के होते नही हैं। उन लोगोके दिलमे भी भारतीयोके खिलाफ कुछ भाव थे ही। पर डोकने इसकी कोई परवा नही की। हमारे परिचय-के आरभहीमे एक दिन मैंने इस नाजुक विषयपर चर्चा छेडी थी। उनका उत्तर यहा लिख देने योग्य है। उन्होने कहा—

"मेरे प्यारे दोस्त, ईसाके धर्मको आपने क्या समझ रखा है? मैं उस पुरुषका अनुयायी हूँ जो अपने धर्मके लिए फांसी पर लटक गया और जिसका प्रेम विश्वव्यापी था। जिन गोरोंके मुझे छोड देनेका आपको डर है, उनकी आंखोंमें ईसाके अनुयायीकी हैसियतमें जरा भी मै शोभा पाना च हूँ तो मुझे जाहिरा तौरसे अवश्य ही इस युद्ध-में भाग लेना चाहिए और इसके फलस्वरूप यदि वे मेरा त्याग भी कर दें तो मुझे इसमें जरा भी बुरा न मानना चाहिए। इसमें शक नहीं कि मेरी आजीविकाका आधार उनपर है; पर आप यह कदापि न समझ बैठें कि आजीविकाके लिए मैंने उनसे यह सबध किया है या वे ही मेरी रोजी देनेवाले है। मेरी रोजीका देनेवाला तो परमात्मा है। ये हैं केवल निमित्तमात्र। मेरा उनका सम्बन्ध होते समय हमारा उनका यह ठहराव हो चुका है कि मेरी धार्मिक स्वतन्त्रतामें कोई हस्तक्षेप न करेगा। इसलिए आप मेरी ओरसे निश्चिन्त रहें। मैं भारतीयो पर अहसान करनेके लिए इस युद्धमें सम्मिलित नहीं हो रहा हूँ। मै तो इसे अपना धर्म समझ-कर ही इसमें भाग ले रहा हूँ। पर असल बात यह है कि मैंने हमारे गिरजाके डीनके साथ बातचीत करके भी इस बातका खुलासा कर लिया है। मैंने उन्हें यह स्पष्ट कह दिया है कि अगर मेरा भारतीयों-से सम्बन्ध रखना आपको पसन्द न हो तो आप खुशीसे मुझे रुखसत दे सकते है और दूसरा पादरी तलाश कर सकते है। पर उन्होने इस विषयमें मुझे बिल्कुल निश्चिन्त कर दिया है, बल्कि और उत्साहित

किया है। आपको यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिए कि सभी गोरे आपकी तरफ एकसी तिरस्कारकी नजरसे ही देखते हैं। आप नहीं जानते कि अप्रत्यक्ष रूपसे आपके विषयमें वे कितना सद्भाव रखते हैं। इसे तो मैं ही जान सकता हूं और आपको भी यह कुबूल करना होगा।"

इतनी स्पष्ट बातचीत होनेपर फिर मैंने इस नाजुक विषयपर कभी बातचीत नही छेड़ी। इसके कुछ साल बाद डोक रोडेशियामें अपने धर्म-की सेवा करते हुए स्वर्गवासी हो गये। तब हमारा युद्ध समाप्त नहीं हुआ था। उनकी मृत्युके समाचार प्राप्त होनेपर उनके पथवालोने अपने गिरजा-घरमे एक सभा निमंत्रित की थी। उसमें काछलिया तथा अन्य भार-तीयोंके साथ-साथ मुझे भी बुलाया गया था। मुझे वहा भाषण देना पड़ा था।

अच्छी तरह चलने-फिरने लायक होनेमें मुझे करीब दस-ग्यारह दिन लगे होंगे। ऐसी स्थिति होते ही मैंने इस प्रेमी कुटुंबसे बिदा मागी। वह वियोग हम दोनोके लिए बड़ा दु खदाई था। (द० अ० स०, १९२५)

: ७६ :

श्रीमती ताराबहन

मिस मेरी चेस्ले नामकी एक अंग्रेज बहन सन् १९३४में हिंदुस्तानमें थी। उन दिनो बंबईमें कांग्रेसका अधिवेशन हो रहा था। जहाजसे उतरते ही वह कांग्रेस-केम्पमें पहुची और मेरे झोपड़ेमें आकर उसने मुझसे कहा, "मै मीरा बहनको जानती हू और मीरा बहनके साथ ही मैं

यहां आनेवाली थी, पर किसी कारणवश उनके एकाध हफ्ते पहले ही मै विलायतसे रवाना हो गई ।" गावोमे रहकर भारतकी सेवा करनेकी उसकी इच्छा थी । उसकी बातचीतसे मैं कुछ खास प्रभावित नही हुआ और मुझे लगा कि वह हिंदुस्तानमे कुछ ज्यादा महीने ठहरनेकी नही । पर मेरी यह भूल थी । मिस मेरी बार को, जिन्होंने बेतूल (मध्यप्रदेश) से कुछ मील दूर खेडी गावमे पहलेसे ही काम करना शुरू कर दिया था, वह बहन जानती थी । मेरी बार मिस चेस्लेको अपने साथ वर्धा ले आई और कुछ दिन हम सब वहा एक साथ रहे । मिस चेस्लेका निश्चय देखकर तो मैं चकित रह गया । मेरी बारके साथ उसने खेडीमे ग्राम-सेवाका कार्य आरभ कर दिया । भारतीय पोशाक पहन ली और अपना नाम ताराबहन रख लिया। खेडीमे उसने इस कदर सख्त परिश्रम-से काम किया कि बेचारी मेरी बार तो देखकर हकबका गईं । वह मिट्टी खोदती और सिरपर टोकरी रखकर ढोती । अपना भोजन उसने इतना सादा बना लिया था कि उसका स्वास्थ्यतक खराब हो गया । कनाडासे काफी पैसा आता था, पर उसमेसे वह सिर्फ दस रुपयेके लगभग ही अपने लिए रखती और बाकी सब ग्राम-उद्योग-सघको या हिंदुस्तानके उन भाई-बहनोको दे देती थी, जिनके सपर्कमे वह आती थी और जो उसे मालूम होते थे कि आगे चलकर वे अच्छे ग्राम-सेवक बन सकते है और जिन्हें रुपये-पैसेकी कुछ जरूरत होती थी । मैंने उसे बहुत ही निकटसे देखा । उसकी उदरताकी कोई सीमा नही थी । मानव-प्रकृतिकी अच्छाईमें उसकी बहुत श्रद्धा थी । अपराधको वह भूल जाती थी । वह सच्ची ईसाई थी । क्वेकर सप्रदायकी, पर उसमे कोई सकीर्णता नही थी । दूसरोंको अपने धर्ममे मिलानेमे उसका विश्वास नही था । 'लदन-स्कूल आव इकनामिक्स' की वह ग्रेजुएट थी और एक अच्छी शिक्षिका थी । लदनमें कई सालतक उसने एक स्कूल चलाया था । उसने फौरन यह महसूस कर लिया कि हिंदी उसे जरूर सीख लेनी चाहिए और नियमित

रीतिसे वह हिंदीका अभ्यास करने लगी। बोलचालकी हिंदी सीखनेके लिए वह कुछ महीने वर्धाके महिला-आश्रममे आकर रही और वही उसने दो बहनोके साथ गरमियोमे बद्री-केदार जानेका विचार किया। मैने उसे इस खतरनाक यात्रासे आगाह कर दिया था। लेकिन जब वह एक बार निश्चय कर लेती थी तो ऐसे-ऐसे साहसिक कामोंसे उसका मन फेरना मुश्किल होता था। बद्री-केदारकी भयानक यात्रा उसे करनी ही थी। अत अपने मित्रोंके साथ उस दिन वह रवाना हो गई। १५ मई को कनखलसे मुझे यह सक्षिप्त तार मिला—"ताराबहनका शरीरात हो गया।"

हिंदुस्तानके गावोके लिए उसके हृदयमें जो प्रेम था उसमे कोई उससे बाजी नही मार सकता था। हिंदुस्तानकी आजादीके लिए हममेसे अच्छे-से-अच्छे लोगोमे जितना उत्साह है, उससे कम ताराबहनमे नही था। दरजेकी छुटाई जहा भी देखती, अधीर हो जाती थी। गरीब स्त्रियो और बच्चोसे वह इतनी आजादीके साथ मिलतो थी कि देखते ही बनता था। सेवा करके वह किसीका उपकार कर रही है, यह भावना तो उसमें थी ही नही। किसीसे उसने अपनी सेवा नही कराई, किंतु कोई भी हो, उसकी सेवा वह अत्यत उत्साहके साथ करती थी। उसने अपना अहकार धो डाला था। ऐसी मूक सेविका थी वह कि उसके बाए हाथ-को पता नही लगता था कि दाहिने हाथने क्या काम किया है। ईश्वर उसकी दिवगत आत्माको चिरशाति दे। (ह० से०, २३.५.३६)

. . . .

प्राय. हर विलायती डाकमे मेरे पास स्व० ताराबहन (मेरी चेस्ली) के सगे-सबधियो और मित्रोके पत्र आते रहते है। इनमें उनके अनेक गुणोका वर्णन रहता है। कई सज्जन उनके अनेक प्रकारके उपकारोंका वर्णन करते हैं, जो स्व० ताराबहनने उनपर किये। कुछ लिखते है कि उन्होने हमे फला-फला सहायता देनेका वचन दिया था और कुछ ताराबहन द्वारा

छोड़े गये एक या अनेक विरासतनामोंका भी उल्लेख करते हैं। हालांकि महादेव देसाई इन सब पत्र भेजनेवालोको अपने थोडे समयमें जितना उनसे बन पड़ता है ब्योरेवार जानकारी देनेकी कोशिश करते हैं, फिर भी तमाम संबंधित लोगोंके लाभके लिए यह जाहिर कर देना जरूरी है कि अपनी शोचनीय मृत्युके कुछ ही समय पहले उन्होंने मेरे नामपर जो विरासतनामा लिख दिया था, वह कानूनदा मित्रोंकी रायमें भारतीय विरासतके कानूनके अनुसार वैध नही मालूम होता। पर अगर यह साबित भी हो जाय कि वह वैध है तो भी उनके सगे-सबधियो और मित्रोंकी अनुमतिके बिना उनकी संपत्तिका उपयोग हिंदुस्तानी ग्रामोद्योगोंके लिए करनेकी मुझे जरा भी इच्छा नही है, यद्यपि यह काम इवर उन्हें अत्यत प्रिय था और इसके लिए वे एक गुलामकी तरह काम करते-करते वीरोचित मृत्युकी गोदमें सदाके लिए सो गईं। इस बातकी बहुत ही कम संभावना है कि स्व० ताराबहनकी वह सब सपत्ति मेरे हाथ आ जायगी, जिसका कि वे अपने जीवनकालमे किसी प्रकारका विनियोग नही कर गई हैं; पर अगर ऐसा हुआ तो उसे हाथ लगानेसे पहले मैं उन तमाम वचनो या वादोंकी जाच करूंगा जो उन्होंने पश्चिममे किये और उन्हे पूरा करनेकी कोशिश भी करूंगा।

बैंकसे उनके नामपर आये हुए कई चेक मेरे पास पड़े हुए हैं जिनका भुगतान भी नही हुआ है। उनके परिवारके बहन-भाइयोंसे, जिनकी सख्या मैं देखता हू, बहुत बडी है, मेरी यह सलाह है कि उनमें जो सबसे नजदीकी हो, राज्यसे इस सबधका एक कानूनी अधिकार-पत्र लेकर वह मेरे पास भेजें ताकि मैं और कुमारी मेरी बार हमारे पास रखी हुई, ताराबहनकी चीजे उन्हे सौप सके। मेरे पास तो अनभुने चेक पडे हुए हैं और मेरी बारके पास उनके कुछ छोटे-मोटे जेवर हैं। हिंदुस्तानमें आनेपर अपनी जरूरतें उन्होंने इतनी कम कर दी थी कि शायद ही ऐसी कोई चीज बची हो, जिसकी कोई कीमत आ सके। अपने जीवन-कालमें

उन्हे जो कुछ मिला उन्होने ग्राम-सेवाके लिए मुझे दे डाला। उस स्वर्गीय उपकारशीला देवीसे संबध रखनेवाली बातोंके विषयमें मेरे पास तो इतनी ही जानकारी है। आशा है, यह उनके तमाम सबधित लोगोके लिए काफी होगी। (ह० से०, २६.९.३६)

: ७७ :

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

लोकमान्य बाल गगाधर तिलक अब ससारमें नही है। यह विश्वास करना कठिन मालूम होता है कि वे ससारसे उठ गये। हम लोगोके समयमे ऐसा दूसरा कोई नही जिसका जनता पर लोकमान्यके-जैसा प्रभाव हो। हजारो देशवासियोकी उनपर जो भक्ति और श्रद्धा थी वह अपूर्व थी। यह अक्षरश. सत्य है कि वे जनताके आराध्यदेव थे, प्रतिमा थे, उनके वचन हजारो आदमियोके लिए नियम और कानून-से थे। पुरुषोमें पुरुष-सिह ससारसे उठ गया। केशरीकी घोर गर्जना विलीन हो गई।

देशवासियोपर उनका इतना प्रभाव होनेका क्या कारण था? मै समझता हू, इस प्रश्नका उत्तर बडा ही सहज है। उनकी स्वदेशभक्ति ही उनकी इद्रियवृत्ति थी। वे स्वदेशप्रेमके सिवा दूसरा धर्म नही जानते थे।

जन्मसे ही वे प्रजासत्तावादी थे। बहुमतकी आज्ञापर इतना अधिक विश्वास करते थे कि मुझे उससे भयभीत होना पडता था। पर यही वह बात है जिससे जनता पर उनका इतना अधिक प्रभाव था। स्वदेशके लिए वे जिस इच्छा-शक्तिसे काम लेते थे वह बड़ी ही प्रबल थी। उनका

जीवन वह ग्रथ है जिसे खोलनेकी भी जरूरत नही, वह खुला हुआ ग्रथ है। उनका खाना-पीना और पहनावा बिल्कुल साधारण था। उनका व्यक्तिगत जीवन बडा ही निर्मल और बेदाग है। उन्होने अपनी आश्चर्य-जनक बुद्धि-शक्तिको स्वदेशको अर्पण कर दिया था। जितनी स्थिरता और दृढताके साथ लोकमान्यने स्वराज्यकी शुभवार्ताका उपदेश किया उतना और किसीने नही किया। इसी कारण स्वदेशवासी उनपर अटूट विश्वास रखते थे। साहसने कभी उनका साथ नही छोडा। उनकी आशावादिता अदम्य थी। उनको आशा थी कि जीवनकालमे मै ही सपूर्ण रूपसे स्वराज्य स्थापित हुआ देख सकूगा। यदि वे इसे नही देख सके तो उनका दोष नही है। उन्होने निस्सदेह स्वराज्य-प्राप्तिकी अवधि बहुत कम कर दी है। यह अब हम लोगोके लिए है, जो अभीतक जी रहे है, कि अपने द्विगुणित उद्योगसे उसको जहातक हो शीघ्र सत्य कर दिखावें।

मै अग्रेजोको ऐसी धारणा बनानेसे मना करता हू कि लोकमान्य अग्रेजोंके शत्रु थे। या अधिकारी वर्ग या अग्रेजी राज्यसे घृणा करते थे।

कलकत्ता-काग्रेसके समय हिंदीके राष्ट्रभाषा होनेके सबधमे उन्होने जो कहा था, उसे सुननेका अवसर मुझे भी प्राप्त हुआ था। वे काग्रेस पडालसे तुरत ही लौटे थे। हिंदीके सबधमे उन्होने अपने शात भाषणमे जो कहा उससे बड़ी तृप्ति हुई। भाषणमें आपने देशी भाषाओपर खयाल रखनेके कारण अग्रेजोकी बडी प्रशसा की थी। विलायत जानेपर, यद्यपि उन्हे अग्रेज जूररोके विषयमें बुरा ही अनुभव हुआ तथापि उनका ब्रिटिश प्रजासत्तामे बडा ही दृढ विश्वास हो गया। उन्होने यहा तक कहा था कि पजाबके अत्याचारोका चित्र 'सिनेमेटोग्राफ' यत्र द्वारा ब्रिटिश प्रजासत्तावादियोको दिखाना चाहिए। मैने यहा इस बातका उल्लेख इसलिए नही किया कि मै भी ब्रिटिश प्रजासत्तापर विश्वास रखता हूं

(जो कि मै नही रखता), पर यह दिखानेके लिए कि वे अंग्रेज-जातिके प्रति घृणाका भाव नही रखते थे। पर वे भारत और साम्राज्यकी अवस्थाको इस पिछडी अवस्थामे न तो रखना ही चाहते थे और न रख सकते थे।

वे चाहते थे कि शीघ्र ही भारतसे समानताका भाव रक्खा जाय और इसे वे देशका जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। भारतकी स्वतन्त्रताके लिए उन्होने जो लडाई की उसमे सरकारको छोड नही दिया। स्वतन्त्रताके इस युद्धमे उन्होने न तो किसीकी मुरव्वतकी और न किसीकी प्रतीक्षा ही की। मुझे आशा है, अंग्रेज लोग उस महापुरुषको पहचानेगे जिनकी भारत पूजा करता था।

भारतकी भावी सततिके हृदयमे भी यही भाव बना रहेगा कि लोकमान्य नवीन भारतके बनानेवाले थे। वे तिलक महाराजका स्मरण यह कहकर करेगे कि एक पुरुष था जो हमारे लिए ही जन्मा और हमारे लिए ही मरा। ऐसे महापुरुषको मरना कहना ईश्वरकी निंदा करना है। उनका स्थायी तत्व सदाके लिए हम लोगोमे व्याप्त हो गया। आओ, हम भारतके एकमात्र लोकमान्यका अविनाशी स्मारक अपने जीवनमे उनके साहस, उनकी सरलता, उनके आश्चर्य-जनक उद्योग और उनकी स्वदेश-भक्तिको सीखकर बनावे। ईश्वर उनकी आत्माको शाति प्रदान करे। (य० इ०, ४-८-२०)

. . . . .

लोकमान्य तो एक ही थे। लोगोने तिलक महाराजको जो पदवी, जो उच्च स्थान दिया था वह राजाओके दिये खिताबोसे लाख गुना कीमती था। देशने आज यह बात सिद्ध कर दिखाई है। यह कहें तो अत्युक्ति नही होगी कि सारी बबई लोकमान्यको पहुचानेके लिए उलट पडी थी।

उनके आखिरी दिनोमे जो दृश्य मैने अपनी आखोंसे देखा वह कभी भुलाया नही जा सकता। लोगोके उस अगाध प्रेमका वर्णन करना असंभव है।

फ़ासमें कहावत है कि 'राजा मर गये, राजा चिरजीव रहें।' यह ब्रिटेन, इंगलैंड आदि सारे देशोमें प्रचलित है और जब राजाकी मृत्यु होती है तब यह कहावत कही जाती है। उसका भावार्थ यह है कि राजा तो मरता ही नही। राजतंत्र एक मिनिट भी बंद नही रहता।

उसी प्रकार तिलक महाराज भी मर नही सकते, न मरे ही। बंबईकी जनताने यह दिखला दिया कि वे जीते है और बहुत समय तक जीयेंगे। उनके सगे-संबंधियोको भले ही दुःख हुआ हो, उन्होने भले ही आंखोंसे मोती टपकाए हो, परंतु दूसरे लोग तो उत्सव मनानेके लिए आये थे। बाजे और भजन लोगोको चेतावनी दे रहे थे कि लोकमान्य मरे नही है। 'लोकमान्य तिलक महाराजकी जय' ध्वनिसे आकाश गूंज उठता था। उस समय लोग इस बातको भूल गए थे कि हम तो तिलक महाराजके देहके दाहकर्मके लिए आये है।

शनिवारकी रातको जब मैने उनके स्वर्गवासकी खबर सुनी तब मेरा चित्त व्याकुल हो रहा था, पर जयघोष सुनकर मेरी बेचैनी जाती रही। मेरी भी यही धारणा हुई कि तिलक महाराज जीवित है। उनका क्षण-भंगुर देह छूट गया है, पर उनकी अमर आत्मा तो लाखों लोगोके हृदयमे विराजमान है।

इस जमानेमे किसी भी लोकनायकको ऐसी मृत्युका सौभाग्य प्राप्त नही हुआ था। दादाभाई गये फिरोजशाह गये, गोखले भी चले गये। सबके साथ हजारो लोग श्मशान तक गये थे, पर तिलक महाराजने तो हद कर दी। उनके पीछे तो सारी दुनिया गई। रविवारको बंबई बावली हो गई थी।

यह कैसा चमत्कार! संसारमे चमत्कार नामकी कोई वस्तु ही नही। अथवा यो कहे कि जगत स्वयं ही एक चमत्कृति है। बिना कारणके कोई काम नही होता। इस सिद्धांतमे कोई अपवाद नही हो सकता। लोकमान्यका हिंदुस्तानपर असीम प्रेम था। इसी कारण लोक-

प्रेमकी भी मर्यादा नही रह गई थी। स्वराज्यके मंत्रका जितना जप उन्होंने किया है उतना दूसरा किसीने नही किया। जिस समय दूसरे लोग यह मानते थे कि हा, अब भारत स्वराज्यके योग्य होगा, उस समय लोकमान्य सच्चे दिलसे मानते थे कि भारत आज ही तैयार है। लोकमान्यकी इस धारणाने लोगोके मनको हर लिया था। ऐसा मानकर वे बैठे नही रहे; बल्कि जिंदगीभर उसके अनुसार काम किया। उससे जनतामें नवीन चैतन्य नया जोश पैदा हुआ। उन्होने स्वराज्य प्राप्त करनेकी अपनी अधीरताका स्वाद लोगोको चखाया और ज्यो-ज्यो जनता को उसका स्वाद मालूम होने लगा त्यो-त्यो वह उनकी तरफ खिचती गई।

उनपर अनेक तरहकी आफते आईं, तरह-तरहके कष्ट उन्हे सहने पडे, तो भी उन्होने उस मत्रका अनुष्ठान नही छोडा। इस तरह वे कठिन परीक्षाओमे भी पास हुए। इससे जनताने उन्हे अपने हृदयका सम्राट बनाया और उनका वचन उसके लिए कानूनकी तरह मान्य हो गया।

देहके नष्ट होजानेसे ऐसा महान जीवन नष्ट नही होता, बल्कि देह-पातके बाद से तो वह शुरू होता है।

जिसे हम पूजनीय मानते है उसकी सच्ची पूजा तो उसके सद्गुणोका अनुकरण करना ही है। लोकमान्य अत्यत सादगीके साथ रहते थे। उनके स्मरणके लिए हमे भी अपना जीवन सादा बनाना चाहिए। हमे उस सीमातक वस्तुओका त्याग करना चाहिए जिस तकके लिए हमारा मन गवाही देता हो। अपने निश्चित कार्यको करनेसे कभी पीछे नहीं हटना चाहिए। वे विचारशील थे। हमे भी विचार करके ही बोलना और काम करना चाहिए। वे विद्वान् थे, अपनी मातृभाषा और सस्कृतिपर उनका खूब प्रभुत्व था। हमे भी उनकी तरह विद्वान् होनेका निश्चय करना चाहिए। व्यवहारमे विदेशी भाषाका त्याग करके मातृ-भाषाका काफी ज्ञान प्राप्त करना और उसीके द्वारा अपने विचारोको

प्रकट करनेका अभ्यास करना चाहिए। हमे संस्कृत भाषाका अध्ययन करके अपने धर्म-शास्त्रोमे छिपे धर्म-रहस्योको प्रकट करना चाहिए। वे स्वदेशीके प्रेमी थे। हमें भी स्वदेशीका अर्थ समझकर उसका व्यवहार करना चाहिए। उनके हृदयमे अपने देशके प्रति अथाह प्रेम था। हम भी अपने हृदयमे ऐसा प्रेम उदय करें और दिन-प्रतिदिन देश-सेवामे अधिकाधिक तत्पर हो। इसी रीतिसे उनकी पूजा हो सकती है। जिससे इतना न हो सके वे उनकी यादगारके लिए जितना हो सके धन दे और वह स्वराज्यके कार्यमे खर्च किया जाय।

लोकमान्य वर्त्तमान राज्य-मडलके कट्टर शत्रु थे। पर इससे यह न समझना चाहिए कि वे अग्रेजोसे द्वेष करते थे। जो लोग ऐसा समझते है वे भूल करते है। उन्हीके श्रीमुखसे मैंने कई बार अग्रेजोकी प्रशसा सुनी है। वे अग्रेजी-राज्यके सबधको भी अनिष्ट नही मानते थे। वे तो सिर्फ अपने को अग्रेजोके बराबर मनवाना चाहते थे। किसीका भी गुलाम बनकर रहना उन्हें पसद न था।

ऐसे प्रौढ देशभक्तके स्वर्गवासका उत्सव हम मना रहे है। ऐसे पुरुषका देह चाहे रहे या न रहे, पर देशकी सेवा तो किया ही करता है; देशको आगे बढाया ही करता है। जिसने अपने कार्यकी रूपरेखा बना रक्खी हो, जिसने उसके अनुसार ४५ वर्षोतक काम किया हो, जिसने अपनी देहको देशसेवाके ही अर्पण कर दिया हो, उसके देहका नाश भले ही हो जाय, उसकी स्मृति कभी नष्ट नही होती, उसकी मृत्यु कभी नही होती। अतएव लोकमान्य तिलक मर कर भी हमे जीवनका मत्र सिखा गये है। (हिं० न०, ६-८-२२)

... ...

पहले मैं लोकमान्यसे मिला। उन्होंने कहा—'सब दलोंकी सहायता प्राप्त करनेका आपका विचार बिल्कुल ठीक है। आपके प्रश्नके संबंधमे मत-भेद हो नही सकता; परतु आपके कामके लिए किसी तटस्थ

सभापतिकी आवश्यकता है। आप प्रोफेसर भाडारकरसे मिलिये। यो तो वह आजकल किसी हलचलमें पडते नही है, पर शायद इस कामके लिए 'हा' कर ले। उनसे मिलकर नतीजेकी खबर मुझे कीजिएगा। मैं आपको पूरी-पूरी सहायता देना चाहता हू। आप प्रोफेसर गोखलेसे भी अवश्य मिलिएगा। मुझसे जब कभी मिलनेकी इच्छा हो जरूर आइयेगा।"

लोकमान्यके यह मुझे पहले दर्शन थे। उनकी लोक-प्रियताका कारण मै तुरत समझ गया। (आ० क०, १९२७)

... ...

वह मुझे रिपन कालेज ले गया। वहा बहुतेरे प्रतिनिधि ठहरे हुए थे। सौभाग्यसे जिस विभागमे मै ठहरा था, वही लोकमान्य भी ठहराये गए थे। मुझे ऐसा स्मरण है कि वह एक दिन बाद आये थे। जहा लोकमान्य होते, वहा एक छोटा-सा दरबार लगा ही रहता था। यदि मैं चितेरा होऊ तो जिस चारपाईपर वह बैठते थे उसका चित्र खीचकर दिखा दूं, उस स्थानका और उनकी बैठकका इतना स्पष्ट स्मरण मुझे है। उनसे मिलने आनेवाले असख्य लोगोमे एकका नाम मुझे याद है—'अमृत-बाजार पत्रिका' के स्व० मोतीबाबू। इन दोनोका कहकहा लगाना और राजकर्त्ताओंके अन्याय-सबधी उनकी बाते कभी भुलाई नही जा सकती।

. ...

इस विशेष[1] अधिवेशनके अवसरपर मुझे लोकमान्यकी अनुपस्थिति बहुत ज्यादा खटकी थी। आज भी मेरा यह मत है कि अगर वह जिंदा रहते तो अवश्य ही कलकत्तेके प्रसगका स्वागत करते। लेकिन अगर यह नही होता और वह उसका विरोध करते तो भी वह मुझे अच्छा लगता

[1] कलकत्ता-अधिवेशन, १९२०

और मै उससे बहुत-कुछ शिक्षा ग्रहण करता। मेरा उनके साथ हमेशा मत-भेद रहा करता, लेकिन यह मत-भेद मधुर होता था। उन्होने मुझे सदा यह मानने दिया था कि हमारे बीच निकटका सबध है। ये पक्तिया लिखते हुए उनके अवसान का चित्र मेरी आखोके सामने घूम रहा है। आधी रातके समय मेरे साथी पटवर्धनने टेलीफोन द्वारा मुझे उनकी मृत्युकी खबर दी थी। उसी समय मैने अपने साथियोसे कहा था—"मेरी बडी ढाल मुझसे छिन गई।" इस समय असहयोगका आदोलन पूरे जोर पर था। मुझे उनसे आश्वासन और प्रेरणा पानेकी आशा थी। आखिर जब असहयोग पूरी तरह मूर्तिमान हुआ था तब उनका क्या रुख होता सो तो दैव ही जाने; लेकिन इतना मुझे मालूम है कि देशके इतिहासकी इस नाजुक घड़ीमें उनका न होना सबको खटकता था। (आ० क०, १९२७)

... ...

आपका यही सवाल है न कि लोग "शठ प्रति शाठयम्" को तिलक महाराजका सिद्धात मानते हैं और हमें उनके जीवनमें इस सिद्धातकी प्रतीति कहा तक होती है? हम इस प्रश्नमेसे बहुत अधिक सार ग्रहण नही कर सकते। हा, इस बारेमें तिलक महाराजके साथ मेरा कुछ दिनो तक पत्र-व्यवहार हुआ था। उनके जीवनके नम्र विद्यार्थी और गुणोके एक पुजारीके नाते मै कह सकता हू कि तिलक महाराजमें विनोदकी शक्ति थी। विनोदके लिए अग्रेजीमें 'ह्यूमर' शब्द है। अबतक हम इस अर्थमे विनोदका उपयोग नही करने लगे है। इसीसे अग्रेजी शब्द देकर अर्थ समझाना पड़ता है। अगर लोकमान्यमे यह विनोद-शक्ति न होती तो वह पागल हो जाते—राष्ट्रका इतना बोझ वह उठाते थे। लेकिन अपनी विनोद-प्रियताके कारण वह स्वय अपनी रक्षा तो कर ही लेते थे, दूसरोंको भी विषम स्थितिमेसे बचा लेते थे। दूसरे, मैने यह देखा है कि वाद-विवाद करते समय वह कभी-कभी जान-बूझकर अतिशयोक्तिसे भी काम ले-लेते थे। प्रस्तुत प्रश्नके सबधमे मेरा उनका जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह मुझे ठीक-ठीक याद नही, आप

उसे देख ले। "शठ प्रति शाठ्यम्" तिलक महाराजका जीवन-मत्र नही था। अगर ऐसा होता तो वह इतनी लोकप्रियता प्राप्त न कर सकते। मेरी जानमें ससार-भरमे ऐसा एक भी उदाहरण नही है, जिससे किसी मनुष्यने इस सिद्धातपर अपना जीवन-निर्माण किया हो और फिर भी वह लोकमान्य बन सका हो। यह सच है कि इस बारेमे जितना गहरा मै पैठता हू, वह नही पैठते थे। हम शठके प्रति शाठ्यका कदापि उपयोग कर ही नही सकते। 'गीता-रहस्य'मे एक-दो स्थानोमे, सिर्फ एक-ही दो स्थानोमे, इस बातका थोड़ा समर्थन जरूर मिलता है। लोकमान्य मानते थे कि राष्ट्रहितके लिए अगर कभी शाठ्यसे, दूसरे शब्दोमे 'जैसे को तैसा' सिद्धातसे, काम लेना पडे तो ले सकते है। साथ ही वह यह भी मानते तो थे ही कि शठके सामने भी सत्यका प्रयोग करना अच्छा है, यही सत्य सिद्धात है। मगर इस सबधमे वह कहा करते थे कि साधु लोग ही इस सिद्धातपर अमल कर सकते है। तिलक महाराजकी व्याख्याके मुताबिक साधु लोगोसे अर्थ वैरागियोका नही, बल्कि उन लोगोसे होता है जो दुनियासे अलिप्त रहते है, दुनियादारी-के कामोमे भाग नही लेते। इससे यह अर्थ नही निकलता कि अगर कोई दुनियामे रहकर इस सिद्धातका पालन करे तो अनुचित होगा—हा, वह न कर सके यह दूसरी बात है—वह मानते थे कि शाठ्यका उपयोग करनेका उसे अधिकार है।

लेकिन ऐसे महान् पुरुषके जीवनका मूल्य ठहरानेका हमे कोई अधिकार हो तो हम विवादास्पद बातोसे उसका मूल्य न ठहरावे। लोकमान्यका जीवन भारतके लिए, समस्त विश्वके लिए, एक बहुमूल्य विरासत है। उसकी पूरी कीमत तो भविष्यमे निश्चित होगी। इतिहास ही उसकी कीमतका अनुमान लगावेगा, वही लगा सकता है। जीवित मनुष्यका ठीक-ठीक मूल्य, उसका सच्चा महत्व, उसके समकालीन कभी ठहरा ही नही सकते। उनसे कुछ-न-कुछ पक्षपात तो हो ही जाता है, क्योकि रागद्वेष-पूर्ण लोग ही इस कामके कर्ता भी होते है। सच पूछा जाय तो इतिहासकार भी राग-

द्वेष-रहित नही पाये जाते । गिबन प्रामाणिक इतिहासकार माना जाता है, मगर मै तो उसकी पुस्तकके पृष्ठ-पृष्ठमे पक्षपात अनुभव कर सकता हूं । मनुष्य-विशेष या संस्था-विशेषके प्रति राग अथवा द्वेषसे प्रेरित होकर उसने बहुतेरी बाते लिखी होगी । समकालीन व्यक्तिमे विशेष पक्षपात होनेकी सभावना रहती है । लोकमान्यके महान् जीवनका उपयोग तो यह है कि हम उनके जीवनके शाश्वत सिद्धातोका सदा स्मरण और अनुकरण करे ।

तिलक महाराजका देशप्रेम अटल था । साथ ही उनमे तीक्ष्ण न्याय-वृत्ति भी थी । इस गुणका परिचय मुझे अनायास मिला था । १९१७ की कलकत्ता-महासभाके दिनोमे, हिंदी साहित्य सम्मेलनकी सभामे, भी वह आये थे । महासभाके कामसे उन्हे फुर्सत तो कैसे हो सकती थी ? फिर भी वह आये और भाषण करके चले गये । मैने वही देखा कि राष्ट्रभाषा हिंदीके प्रति उनमे कितना प्रेम था । मगर इनसे भी बढकर जो बात मैने उनमे देखी, वह थी अग्रेजोके प्रतिकी उनकी न्याय-वृत्ति । उन्होने अपना भाषण ही यो शुरू किया था---"मै अग्रेजी शासनकी खूब निंदा करता हू, फिर भी अग्रेज विद्वानोने हमारी भाषाकी जो सेवा की है, उसे हम भुला नही सकते" । उनका आधा भाषण इन्ही बातोमे भरा था । आखिर उन्होने कहा था कि अगर हमे राष्ट्रभाषाके क्षेत्रको जीतना और उसकी वृद्धि करना हो तो हमे भी अग्रेज विद्वानोकी भाति ही परिश्रम और अभ्यास करना चाहिए । अपनी लिपिकी रक्षा और व्याकरणकी व्यवस्था-के लिए हम एक बडी हद तक अग्रेज विद्वानोके आभारी है । जो पादरी आरभमे आये थे, उनमे पर-भाषाके लिए प्रेम था । गुजरातीमे टेलर-कृत व्याकरण कोई साधारण वस्तु नही है । लोकमान्यने इस बातका विचार भी नही किया कि अग्रेजोकी स्तुति करनेसे मेरी लोकप्रियता घटेगी । लोगोका तो यही विश्वास था कि वह अंग्रेजोंकी निंदा ही कर सकते है ।

तिलक महाराजमे जो त्याग-वृत्ति थी, उसका सौवा या हजारवा भाग भी हम अपनेमे नही बता सकते । और उनकी सादगी ? उनके कमरेमे

न तो किसी तरहका फर्नीचर होता था, न कोई खास सजावट। अपरिचित आदमी तो खयाल भी नही कर सकता था कि वह किसी महान् पुरुषका निवास-स्थान है। रगरगमे भिदी हुई उनकी इस सादगीका हम अनुकरण करे तो कैसा हो? उनका धैर्य तो अद्भुत था ही। अपने कर्तव्यमें वह सदा अटल रहते और उसे कभी भूलते ही न थे। धर्मपत्नीकी मृत्युका सवाद पानेपर भी उनकी कलम चलती ही रही।... क्या हम तिलक महाराजके जीवनका एक भी ऐसा क्षण बतला सकते है जो भोग-विलासमे बीता हो? उनमे जबर्दस्त सहिष्णुता थी। यानी वह चाहे जैसे उद्दड-से-उद्दड आदमीसे भी काम करवा लेते थे। लोकनायकमे यह शक्ति होनी चाहिए। इसमे कोई हानि नही होती। अगर हम सकुचित हृदय बन जाय और सोच ले कि फला आदमीसे काम लेगे ही नही तो या तो हमे जगलमे जाकर बस जाना चाहिए, या घर बैठे-बैठे गृहस्थका जीवन बिताना चाहिए। इसमे शर्त यही है कि स्वयं अलिप्त रह सके।

मुहसे तिलक महाराजका बखान करके ही हम चुप न हो बैठे। काम, काम और काम ही हमारा जीवन-सूत्र होना चाहिए। जब कि हम स्वराज्य-यज्ञको चालू रखना चाहते है, हमे चाहिए कि हम निकम्मे साहित्यका पढना बद कर दे, निरर्थक बाते करना छोड दे और अपने जीवन-का एक-एक क्षण स्वराज्यके काममे बिताने लगे। आप पूछेगे कि क्या पढाई छोडकर यह काम करे? १९२१ मे भी विद्यार्थियोके साथ मेरा यही झगडा था कि तिलक महाराजने क्या किया था? उन्होने जो बडे-बड़े ग्रथ लिखे, वे बाहर रहकर नही, जेलमे रहकर लिखे थे। 'गीता रहस्य' और 'आर्किटक होम' वह जेलमे ही लिख सके थे। बडे-बडे मौलिक ग्रथ लिखनेकी शक्ति होते हुए भी उन्होने देशके लिए उसका बलिदान किया था। उन्होने सोचा, "घरके चारो ओर आग भभक उठी है। इसे जितनी बुझा सकू, उतनी तो बुझाऊ।" उन्होने अगर हजार घडे पानीसे वह बुझाई

हो, तो हम एक ही घडा डाले, मगर डाले तो सही। पढाई आदि आवश्यक होते हुए भी गौण बाते है। अगर स्वराज्यके लिए इनका उपयोग होता हो तो करना चाहिए, अन्यथा इन्हे तिलाजलि देनी चाहिए। इससे न हमारा नुकसान है और न ससारका।

तिलक महाराज अपने जीवन द्वारा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण छोड गये है। जिनके जीवनमेसे इतनी सारी बाते ग्रहण करने योग्य हो, जिनकी विरासत इतनी जबर्दस्त हो, उनके सबधमे उक्त प्रश्नके लिए गुजाइश ही नही रहती है। हमारा धर्म तो गुणग्राही बननेका है।

आज हमे जो काम करना है, वह मुर्दार आदमियोके करनेसे तो हो नही सकता। स्वराज्यका काम कठिन है। भारतमे आज एक लहर बह रही है। उसमे खिचकर हम भाषण करते है, धीगाधीगी मचाते है, तूफान खडे करते है, मनमाने तौरपर सस्थाओमे घुस जाते है और फिर उन्हे नष्ट करते एव धारासभाओमे जाकर भाषण करते है। तिलक महाराजके जीवनमे ये बाते हमारे देखनेमे भी नही आती। उनके जीवनके जो गुण अनुकरणीय है, सो तो मै ऊपर कह ही चुका हू।[1]

• • • •

आप लोगोने तिलक महाराजकी प्रसिद्ध पुस्तक 'गीता-रहस्य' का नाम सुना होगा। उसमे इतना ज्ञान भरा है कि उसके अनेक पारायण करने चाहिए। मैने वह यरवदा जेलमे पढी थी। यह बात सही है कि मै उनकी सभी बातोसे सहमत नही हूं, पर इसमें कोई सदेह नही कि तिलक महाराज बहुत बडे विद्वान थे और उन्होने सस्कृत साहित्यका बहुत गहरा अध्ययन किया था। उनकी वह गीता पढे मुझे बहुत समय हो गया, इसलिए उनके ठीक शब्द मुझे याद नही है, पर उनके लिखनेका भावार्थ मै बताऊगा। वह बात मुझे बहुत ठीक लगती है।

---

[1]लोकमान्यकी पुण्य तिथिपर गुजरात विद्यापीठमें दिया गया भाषण।

उन्होने एक जगह कहा है कि अंग्रेजी भाषामें अंतरात्माके लिए 'कान्शस' शब्द अच्छा है ; पर जब यह कहा जाता है कि हम अपने 'कान्शस'के मुताबिक चलते है तब इसका सही अर्थ यह नही होता कि हम अंतरात्माके कहनेपर चलते है । हमारे वैदिक धर्मके मुताबिक 'कान्शस' सभीमें (जड-चेतनमे) होता है । पर बहुतोका 'कान्शस' सोया हुआ रहता है, अर्थात् उनकी अंतरात्मा मूढ अवस्थामे होती है । तो उस अवस्थामे उसे 'कान्शस' कैसे कहा जाय ? हमारे धर्मके अनुसार मनुष्यकी अंतरात्मा तब जाग्रत होती है जब यम-नियमादिका पालन और दूसरी भी बहुत-सी चेष्टा आदि करें । तिलक महाराजकी इस बातको मैंने पचा लिया है । शास्त्रकी जो चीज हम पचा सके वही सार्थक है । जैसे वही आहार हमारे लिए सार्थक बनता है जिसका हम रक्त बनाए । तो तिलक महाराजकी इस बातको मैंने पचा लिया है, जिसके जरिये कौन-सी आवाज अंतरात्माकी है और कौन-सी नहीं, उसकी परख मैं कर लेता हू । (प्रा. प्र., १.६.४७)

: ७८ :

अब्बास तैयबजी

सबसे पहले सन् १९१५ मे मै अब्बास तैयबजीसे मिला था । जहां कही मै गया, तैयबजी-परिवारका कोई-न-कोई स्त्री-पुरुष मुझसे आकर जरूर मिला । ऐसा मालूम पडता है, मानो इस महान और चारो तरफ फैले हुए परिवारने यह नियम ही बना लिया था । हमारे बीच इस अटूट सबधका खास कारण क्या था, यह सिवा इसके मुझे और कुछ मालूम नही कि जिस सुप्रतिष्ठित न्यायाधीशके कारण यह वश प्रसिद्ध है उससे सन् १८९० मे मेरी मित्रता हो गई थी, जब कि मै दक्षिण अफ्रीकासे हिंदुस्तान

वापस आया था और बिल्कुल अनजान व्यक्ति था। कुछ लोगोंके विचार-में तो मैं सभवतः एक दुःसाहसी आदमी था, लेकिन बदरुद्दीन तैयबजी और कुछ अन्य व्यक्ति ऐसे भी थे जिनका यह खयाल नही था।

मगर मुझे तो बडौदाके अब्बास मियाके विषयपर ही आना चाहिए। जब हम एक-दूसरेसे मिलते और मैं उनके मुंहकी ओर देखता तो मुझे स्व० जस्टिस बदरुद्दीन तैयबजीका स्मरण हो आता था। हमारी उस मुलाकातसे हमारे बीच जन्मभरके लिए मित्रताकी गाठ बध गई। मैंने उन्हे हरिजनोका मित्र ही नही; बल्कि उन्हीमे का एक पाया। बहुत दिन पहले गोधरामें, शामको हरिजनोकी बस्तीमे होनेवाले एक अस्पृश्यता-विरोधी सम्मेलनमें जब मैंने उन्हे बुलाया तो दर्शकोको बडा आश्चर्य हुआ; लेकिन अब्बास मियानें हरिजनोके काममे उसी उत्साहसे भाग लिया, जैसे कोई कट्टर हिंदू ले सकता है। इतनेपर भी वह कोई साधारण मुसलमान नही थे। इस्लामके लिए उन्होने मुक्तहस्तसे दान दिया और कई मुस्लिम सस्थाओको वह सहायता देते रहते थे। मगर हरिजनोको मुसलमान बनाने जैसा कोई विचार उनके मनमे नही था। उनके इस्लाममे भूमडलके तमाम महान् धर्मोके लिए गुजाइश थी। इसीलिए अस्पृश्यता-विरोधी-आदोलन-मे वह हिंदुओकी ही तरह उत्साह-पूर्वक भाग लेते थे, और मै जानता हूं कि जबतक वह जिदा रहे तब तक उनका यह उत्साह बराबर वैसा ही बना रहा।

असल बात यह है कि उन्होने आधे मन से कभी कोई काम नही किया। अब्बास तैयबजी अपने मनमें कोई बात छिपाकर नही रखते थे। पजाब-की पुकारका उन्होने तत्क्षण जवाब दिया। उनकी आयुके और ऐसे व्यक्तिके लिए, जिसने जीवनमे कभी कोई मुसीबत नही झेली, जेलोकी सख्तिया बर्दाश्त करना कोई मजाक नही था। लेकिन उनकी श्रद्धाने हरएक कठिनाईको विजय कर लिया। हँसते-हँसाते खेडाके किसानोकी तरह ही सादा जीवन व्यतीत करते, उन्हीका-सा खाना खाते और सब

मौसमोंमे उन्हीकी रद्दी-सद्दी गाडियोंमे सफर करनेकी क्षमतासे अनेक नौजवनोको उनके सामने शर्मिन्दा होना पडा । ऐसी असुविधाओके बारेमे, जिन्हे कि बचाया जा सकता हो, मैंने उनको कभी शिकायत करते हुए नहीं सुना । 'क्यो ?' का प्रश्न करना उनका काम नही था, वह तो काम करने और अपनेको झोक देनेकी बात जानते थे । हालाकि एक समय चीफ जज-की हैसियतसे उन्हे किसीको मृत्यु-दण्ड देने और अपनी आज्ञा-पालन करानेकी सत्ता प्राप्त थी, फिर भी बिना किसी उज्रके अनुशासन पालन करनेकी आश्चर्यजनक क्षमता उन्होने प्रदर्शित की । वह मनुष्य-जातिके विरले सेवकोमेसे थे । भारत-सेवक भी वह इसीलिए थे कि वह मनुष्य-जातिके सेवक थे । ईश्वरको वह दरिद्रनारायणके रूपमे मानते थे । उनका विश्वास था कि परमेश्वर दीन-दुखियोके बीच ही रहता है । अब्बास मियाका शरीर यद्यपि इस समय कब्रमे विश्राम कर रहा है, पर वह मरे नही है। उनका जीवन हम सबके लिए एक स्फूर्ति है, एक प्रेरणा है । (ह० से०, २०-८-३६)

: ७६ :

बदरुद्दीन तैयबजी

मै श्री मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास, मनमोहन घोष, बदरुद्दीन तैयबजी इत्यादिकी याद आपको दिला दूगा जिन्होने अपनी कानूनी लियाकत बिल्कुल मुफ्त बाटी और अपने देशकी बडी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की । आप शायद मुझे ताना देगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसायमे बडी लबी-लबी फीस लेते थे । मै इस तर्कको इस कारण नहीं मान सकता कि मनमोहन घोषके सिवा मेरा

और सबसे परिचय रहा है। अधिक रुपया होनेकी वजहसे इन लोगोंने भारतको आवश्यकता पडनेपर अपनी योग्यता उदारता-पूर्वक दी हो, ऐसा नही कहा जा सकता। उसका उनकी आराम तथा विलाससे रहनेकी योग्यतासे कोई सबध नही है। मैंने उनको बडे सतोषसे दीनता-पूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। (हिं० न०, १२-११-३१)

: ८० :

डॉक्टर दत्त

फोरमन क्रिश्चियन कालेजके प्रिंसिपल डॉक्टर दत्तके देहातसे देशका एक कट्टर राष्ट्रवादी क्रिश्चयन उठ गया है। दक्षिण अफ्रीकासे लौटनेके बाद तुरत ही उनको निकटसे जाननेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। वे स्वर्गीय दीनबधु एण्ड्रूजके एक अतरग मित्र थे। उन्होंने अपने हरएक मित्रसे मेरा परिचय करा दिया था और तभी उन्हे सतोष हो पाया था। सन् १९२४ मे एकता परिषद्के उन चिंताजनक दिनोमे, जब मै दिल्लीमे २१ दिनका उपवास कर रहा था, उन्होने रात-दिन लगकर काम किया था। दूसरी गोलमेज परिषदके समय भी मैने उन्हे उतनी ही लगनके साथ काम करते देखा था। देशके इतिहासके इस नाजुक अवसरपर उनका देहात दुगुना कष्टदायक होगा। मै श्रीमती दत्तके साथ अपनी समवेदना प्रकट करता हू। डॉक्टर दत्तके अनेकानेक मित्र इस शोकमे उनके साथ है। (ह० से०, २८-६-४२)

: ८१ :

गोपबन्धुदास

प० गोपबधुदास, जो पहले एम० एल० सी०, वकील इत्यादि थे, अति त्यागी नेता हैं। उनसे मुझे विदित हुआ है कि ये और उनका दल केवल भात-दालपर गुजारा करते हैं, घी उन्हे शायद ही मिलता है। असहयोग करनेके अनतर कार्यकर्ताओने अपनी आवश्यकताए एकबारगी कम कर दी हैं, यहातक कि दस रुपये जैसी छोटी रकमपर ये अपना निर्वाह कर लेते है। मुझे तनिक भी सदेह नही कि ऐसे अदम्य उत्साही कार्यकर्ताओके द्वारा स्वराज्य इसी वर्षमे प्राप्त हो सकता है। पडित गोपबधुदासकी एक पाठशाला साखी-गोपालमे पुरीसे १२ मील पर है। यह एक कुज पाठशाला है। यह देखने योग्य है। मैंने उसके छात्रो और शिक्षकोके बीच एक दिन बड़े आनदसे काटा। यह खुले मैदानमे शिक्षापद्धतिकी बडी अच्छी परीक्षा है। वहाके कुछ छात्र जबर्दस्त कुश्तीबाज है। (य० इ० ३ ४ २१)

: ८२ :

देशबन्धु चित्तरंजन दास

फरीदपुरसे लौटकर सोमवारको ये सस्मरण मै लिख रहा हू। देशबधुदासके पुराने महलकी छतपर बैठा हुआ हू। बगालमे आये आज मुझे चार रोज हुए है, परतु इस महलमे मेरे दिलपर पहलेपहल जो चोट लगी है वह अभीतक मुझे छोड नही रही है। मैं

जानता था कि यह मकान देशबधुने सार्वजनिक कामके लिए दे दिया है। मुझे पता था कि उनके सिरपर कर्ज था; पर उसके साथ ही मुझे इस बातका भी ज्ञान था कि वे यदि वकालत करे तो थोडे समयमे यह कर्ज अदा करके अपने महलपर कब्जा कर सकते है। पर उन्हे वकालत तो करनी थी नही, या यो कहे कि वे तो बिना फीस लिये देशकी वकालत करना चाहते थे। इसलिए महलके सदृश मकानको दे डालनेका ही निश्चय उन्होने किया और उसका कब्जा ट्रस्टियोको दे दिया। उनकी इच्छा थी कि इस यात्रामे मै कलकत्तेमे तो उन्हीके इसी पुराने मकानपर ठहरू। इसीसे यहा आ कर रहा हू।

परतु जानना एक बात है और देखना दूसरी। घरमे प्रवेश करते समय मेरा हृदय रो उठा। आखे छलछला उठी। इस महलके मालिकके बिना और उनकी मालिकीके बिना वह मुझे जेलखाना मालूम हुआ। उसमें रहना मुश्किल हो गया और अभी तक इस भावका प्रभाव मुझपर बना हुआ है।

मै जानता हू कि यह मोह है। मकानका कब्जा देकर देशबन्धुने अपने सिरसे एक बोझ कम किया है। उस मकानसे, जिसमें ये दपतो न जाने कहा खो जाय, उन्हे क्या लाभ? यदि वे मनमे लावे तो झोपडीको राजमहल बना सकते है। दोनोने स्वेच्छासे उसे त्यागा है। इसपर खेद किसलिए? यह तो हुई ज्ञानकी बात। यह ज्ञान यदि मुझे न हो तो मुझे आजसे ही महल बनानेका उद्यम शुरू करना पडे।

परतु देहाध्यास कही जाता है? ससार कही दासकी तरह करता है? दुनिया तो यदि महल हो तो उसे चाहती है। पर इस पुरुषने उसका त्याग कर दिया। धन्य है उसे! मेरे आसू प्रेमके है। चोट भी यह प्रेम ही लगाता है। और स्वार्थ क्यो न हो? यदि देशबधुके साथ मेरा कुछ भी सबध न होता तो यह आघात न पहुचता। बहुतेरे महल देखे है, जिनके मालिक उन्हे छोड़कर दुनियासे ही चले गये है। परतु उनमे प्रवेश करते

हुए आखोसे आसू नही गिरे। इसलिए यह रोना स्वार्थ-मूलक भी है। चित्तरजन दासने महलका परित्याग भले ही किया हो, पर उनकी सेवाकी कीमत बढ गई है।

परिषद्में देशबधुका शरीर बहुत ही दुर्बल दिखाई दिया। आवाज बैठ गई है। कमजोरी खूब है। सच कहे तो अभी तबीयत ऐसे कामोके योग्य नही हो पाई है। अभी तो डाक्टरोने उन्हे सलाह दी है कि वे शक्ति प्राप्त करनेके लिए या तो यूरोप या दार्जिलिग जावे, पर वहा तो वे मजबूरीकी अवस्थामे ही जाना चाहते हैं।

देशबधुका भाषण सक्षिप्त और दिलचस्प था। प्रत्येक वाक्यमे अहिसाकी ध्वनि थी। उन्होने उस भाषणमे साफ तौरपर बताया कि हिदुस्तानका उद्धार अहिसामय सग्रामसे ही हो सकता है। इस भाषणके नीचे यदि कोई मुझसे सही करनेके लिए कहे तो मुझे शायद ही कोई वाक्य या शब्द बदलनेकी जरूरत हो।

उनके भाषणके अनुसार ही प्रस्तावोका होना स्वाभाविक था। इसमे विषय-समितिमे खासा झगडा भी हुआ। अतमे देशबधुको त्याग-पत्र देना कहने तककी नौबत आगई थी। लेकिन आखिर उनके प्रभावकी जय हुई और परिषद्के महत्वपूर्ण प्रस्ताव निर्विघ्न पास हुए।

. . . .

जब हृदय चोटसे व्यथित होता है तब कलमकी गति कुठित हो जाती है। मै यहा इस तरह शोकमय वायुमडलमें हू कि तार द्वारा पाठकोके के लिए अधिक कुछ भेजनेमे असमर्थ हू। अभी दार्जिलिगमें उस महान् देशभक्तके साथ ५ रोज तक मेरा समागम रहा। उसने हम एक दूसरेको पहलेसे अधिक एक-दूसरेके नजदीक कर दिया। मैंने केवल यही अनुभव नही किया कि देशबन्धु कितने महान् थे, बल्कि यह भी अनुभव किया कि वे कितने भले थे। भारतका एक लाल चला गया। हमे चाहिए कि हम स्वराज्य प्राप्त करके उसे पुन प्राप्त करे। (हि० न०, १८.६.२५)

. . . .

आप लोगोने आचार्य रायसे सुन लिया कि हम लोगोपर कैसा भीषण प्रहार हुआ है। परतु मै जानता हू कि अगर हम सच्चे देशसेवक है तो कितना ही बड़ा वज्र-प्रहार हो, हमारे दिलको नही तोड़ सकता। आज सबेरे यह शोकसमाचार सुना तो मेरे सामने दो परस्पर विरुद्ध कर्तव्य आ खड़े हुए। मेरा कर्तव्य था कि पहले जो गाड़ी मिले उसीसे मै कलकत्ते चला जाता; पर मेरा यह भी कर्त्तव्य था कि आपके निर्द्धारित कार्यक्रमको पूरा करूं। मेरी सेवावृत्तिने यही प्रेरणा की कि यहाका कार्य पूरा किया जाय। यद्यपि मैं दूर-दूरसे आये हुए लोगोसे मिलनेके लिए ठहर गया हू तथापि उनके सामने महासभाके कार्यकी विवेचना न करके स्वर्गीय देशबधुका ही स्मरण करूगा। मुझे विश्वास है कि कलकत्ता दौड़ जानेकी अपेक्षा यहाका काम पूरा करनेसे उनकी आत्मा अधिक प्रसन्न होगी।

देशबन्धु दास एक महान् पुरुष थे।[1] मै गत छः वर्षोसे उन्हे जानता हू। कुछ ही दिन पहले जब मै दार्जिलिगसे उनसे विदा हुआ था तब मैंने एक मित्रसे कहा था कि जितनी ही घनिष्टता उनसे बढ़ती है उतना ही उनके प्रति मेरा प्रेम बढता जाता है। मैने दार्जिलिगमे देखा कि उनके मनमे भारतकी भलाईके सिवा और कोई विचार न था। वे भारतकी स्वाधीनताका ही सपना देखते थे, उसीका विचार करते थे और उसीकी बातचीत करने थे, और कुछ नही। दार्जिलिगसे विदा होते समय भी उन्होने मुझसे कहा था कि आप बिछुड़े हुए दलोको एक करनेके लिए बगालमे अधिक समय तक ठहरिए, ताकि सब लोगोकी शक्ति एक कार्यके लिए युक्त हो जाय। मेरी बंगाल-यात्रामे उनसे मतभेद रखनेवालोने भी बिना हिचकिचाहटके इस बातको स्वीकार किया है कि बगालमे ऐसा कोई मनुष्य नही है जो उनका स्थान ले सके।

---

[1] इतना कहते-कहते गाधीजीकी आंखोमें आसू आगये और एक-दो मिनट तक कुछ बोल न सके।

वे निर्भीक थे, वीर थे । बगालमे नवयुवकोके प्रति उनका निस्सीम स्नेह था । किसी नवयुवकने मुझे ऐसा नही कहा कि देशबधुसे सहायता मागने पर कभी किसीकी प्रार्थना खाली गई । उन्होने लाखो रुपया पैदा किया और लाखो रुपया बगालके नवयुवकोमे बाट दिया । उनका त्याग अनुपम था, और उनकी महान् बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञताकी बात मैं क्या कह सकता हू ! दार्जिलिगमे उन्होने मुझसे अनेक बार कहा कि भारतकी स्वाधीनता अहिंसा और सत्यपर निर्भर है ।

भारतके हिंदुओ और मुसलमानोको जानना चाहिए कि उनका हृदय हिंदू और मुसलमानका भेद नही जानता था । मै भारतके सब अग्रेजोसे कहता हू कि उनके प्रति उनके मनमे बुरा भाव न था । उनकी अपनी मातृभूमिके प्रति यही प्रतिज्ञा थी—"मै जीऊगा तो स्वराज्यके लिए और मरूगा तो स्वराज्यके लिए ।" हम उनकी स्मृतिको कायम रखनेके लिए क्या करे ? आसू बहाना सहज है, परतु आसू हमारी या उनके स्वजनों-परिजनोकी सहायता नही कर सकता । अगर हममेसे हर कोई हिंदू, मुसलमान, पारसी और ईसाई उस कामको करनेकी प्रतिज्ञा करे जिसमे वे रहते थे तो समझा जायगा कि हमने कुछ किया । हम सब ईश्वरको मानते है । हमे जानना चाहिए कि शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य है । देशबधुका शरीर नष्ट हो गया, परतु उनकी आत्मा कभी नष्ट न होगी । न केवल उनकी आत्मा, बल्कि उनका नाम भी—जिन्होने इतनी बडी सेवा और त्याग किया है—अमर रहेगा और जो कोई जवान या बूढा उनके आदर्शपर जरा भी चलेगा वह उनकी यादगार बनाये रखनेमे मदद देगा । हम सबमे उनके जैसी बुद्धिमत्ता नही है, पर हम उस भावको अपनेमे ला सकते है जिससे वे देशकी सेवा करते थे ।

देशबधुने पटना और दार्जिलिगमे चरखा कातनेकी कोशिश की थी । मैने उनको चरखाका पाठ पढाया था और उन्होने मुझसे वादा किया था कि मै कातना सीखनेकी कोशिश करूगा और जबतक शरीर रहेगा तबतक

कातूंगा। उन्होंने अपने दार्जिलिगके निवास-स्थानको 'चरखाक्लब' बना दिया था। उनकी नेक पत्नीने वायदा किया कि बीमारीकी हालत छोड़कर मैं रोज आध घंटे तक स्वय चरखा चलाऊंगी और उनकी लड़की, बहन और बहनकी लडकी तो बराबर ही चरखा कातती थी।

देशबधु मुझसे अक्सर कहा करते—"मैं समझता हू कि धारासभामें जाना जरूरी है मगर चरखा कातना भी उतना ही जरूरी है। न सिर्फ जरूरी है, बल्कि बिना चरखेके धारासभाके कामको कारगर बनाना असंभव है।" उन्होंने जबसे खादीकी पोशाक पहनना शुरू किया तबसे मरनेके दिनतक पहनते आए।

मेरे लिए यह कहनेकी बात नही है कि उन्होंने हिंदू-मुसलमानोंमे मेल करनेके लिए कितना बडा काम किया था। अछूतोंसे वे कितना प्रेम रखते थे। इसके विषयमें सिर्फ वही एक बात कहूगा जो मैंने बारीसालमे कल रातको एक नाम-शूद्र नेतासे सुनी थी। उस नेताने कहा—"मुझे पहली आर्थिक सहायता देशबधुने दी और पीछे डाक्टर रायने।" आप सब लोग धारासभाओमे नही जा सकते। परतु उन तीन कामोको कर सकते है जो उनको प्रिय थे। मै अपनेको भारतका भक्तिपूर्वक सेवा करनेवाला मानता हू। मै घोषणा करता हू कि मै अपने सिद्धातपर अटल रहकर, आगेसे संभव हुआ तो, देशबधु दासके अनुयायियोको उनके धारासभाके कार्यमे पहलेसे अधिक सहायता दूगा। मै ईश्वरसे प्रार्थना करता हू कि वह उनके कामको हानि पहुचानेवाला काम करनेसे मुझे बचाये रक्खे। हमारा धारासभा-सबधी मतभेद बना हुआ था और है। फिर भी हमारा हृदय एक हो गया था। राजनैतिक साधनोंमें सदा मतभेद बना रहेगा। परतु उसके कारण हम लोगोको एक-दूसरेसे अलग न हो जाना चाहिए, या परस्पर शत्रु न बन जाना चाहिए। जो स्वदेश-प्रेम मुझे एक कामके लिए प्रेरित करता था वही उनको कुछ दूसरा काम करनेको उत्साहित करता था। और ऐसा पवित्र मत-भेद देशके काममें बाधक

नही हो सकता। साधन-सबधी मतभेद नही, बल्कि हृदयकी मलिनता ही अनर्थकारी है। दार्जिलिगमे रहते समय मै देखता था कि देशबधुके दिलमे अपने राजनैतिक विरोधियोके प्रति नम्रता प्रतिदिन बढती जाती थी। मै उन पवित्र बातोका वर्णन यहा न करूगा। देशबधु देश-सेवकोमें एक रत्न थे। उनकी सेवा और त्याग बेजोड था। ईश्वर करे, उनकी याद हमे सदा बनी रहे और उनका आदर्श हमारे सदुद्योगमे सार्थक हो। हमारा मार्ग लबा और दुर्गम है। हमको उसमे आत्मनिर्भरताके सिवा और कोई सहारा नही देगा। स्वावलबन ही देशबधुका मुख्य सूत्र था। वह हमे सदा अनुप्राणित करता रहे। ईश्वर उनकी आत्माको शाति दें[1]! (हि० न०, २५.६.२५)

.. ..

मनुष्योमे से एक दिग्गज पुरुष उठ गया। बगाल आज एक विधवाकी तरह हो गया है। कुछ सप्ताह पहले देशबधुकी समालोचना करनेवाले एक सज्जनने कहा था, "यद्यपि मै उनके दोष बताता हू, फिर भी यह सच है, मै आपके सामने मानता हू कि उनकी जगह पर बैठने लायक दूसरा कोई व्यक्ति नही है।" जबकि मैने खुलनाकी सभामे, जहा कि मैने पहले-पहल यह दिल दहलानेवाली दुर्वाता सुनी, इस प्रसगका जिक्र किया—आचार्य रायने छूटते ही कहा—"यह बिलकुल सच है। यदि मै यह कह सकू कि रवीन्द्रनाथके बाद कविका स्थान कौन लेगा तो यह भी कह सकूगा कि देशबधुके बाद नेता का स्थान कौन ले सकता है। बगालमे कोई आदमी ऐसा नही है जो देशबधुके समीप भी कही पहुच पाता हो।" वे कई लडाइयोके विजयी वीर थे। उनकी उदारता एक दोषकी सीमातक बढी हुई थी। वकालतमे उन्होने लाखो रुपये पैदा किये, पर उन्हे जोडकर वे कभी

---

[1]देशबधुके अवसानका शोक-समाचार मिलनेके बाद खुलनामें दिया गया भाषण।

धनी नही बने, यहा तक कि उन्होंने अपना पैतृक महल भी दे डाला।

१९१९ में, पंजाब महासभा जाच समितिके सिलसिलेमें, उनसे पहले-पहल मेरा प्रत्यक्ष परिचय हुआ। मैं उनके प्रति सशय और भयके भाव लेकर उनसे मिलने गया था। दूरसे ही मैंने उनकी धुआधार वकालत और उससे भी अधिक धुआधार वक्तृत्वका हाल सुना था। वे अपनी मोटर-कार लेकर सपत्नीक, सपरिवार आये थे और एक राजाकी शान-बान-के साथ रहते थे। मेरा पहला अनुभव तो कुछ अच्छा न रहा। हम हटर-कमिटीकी तहकीकातमें गवाहिया दिलानेके प्रश्न पर विचार करनेके लिए बैठे थे। मैंने उनके अदर तमाम कानूनी बारीकियोको तथा गवाहको जिरहमें तोड़कर फौजी कानूनके राज्यकी, बहुतेरी शरारतोकी कलई खोलनेकी, वकीलोचित तीव्र इच्छा देखी। मेरा प्रयोजन कुछ भिन्न था। मैंने अपना कथन उन्हे सुनाया। दूसरी मुलाकातमे मेरे दिलको तसल्ली हुई और मेरा तमाम डर दूर हो गया। उनको मैंने जो कुछ कहा उसको उन्होने उत्सुकताके साथ सुना। भारतवर्षमे पहली ही बार बहुतेरे देश-सेवकोके घनिष्ठ समागममे आनेका अवसर मुझे मिला था। तबतक मैंने महासभाके किसी काममें वैसे कोई हिस्सा न लिया था। वे मुझे जानते थे—एक दक्षिण अफ्रीकाका योद्धा है। पर मेरे तमाम साथियोंने मुझे अपने घरका-सा बना लिया, और देशके इस विख्यात सेवकका नबर इसमें सबसे आगे था। मैं उस समितिका अध्यक्ष माना जाता था। "जिन बातोमे हमारा मतभेद होगा उनमे मैं अपना कथन आपके सामने उपस्थित कर दूगा। फिर जो फैसला आप करेगे उसे मैं मान लूगा। इसका यकीन मैं आपको दिलाता हू।" उनके इस स्वयस्फूर्त आश्वासनके पहले ही हममे इतनी घनिष्ठता हो गई थी कि मुझे अपने मनका सशय उनपर प्रकट करनेका साहस हो गया। फिर जब उनकी ओरसे यह आश्वासन मिल गया तब मुझे ऐसे मित्रनिष्ठ साथीपर अभिमान तो

हुआ, किंतु साथ ही कुछ सकोच भी मालूम हुआ; क्योकि मै जानता था कि मै तो भारतकी राजनीतिमे एक नौसिखिया था और शायद ही ऐसे पूर्ण विश्वासका अधिकारी था। परतु तत्रनिष्ठा छोटे-बडेके भेदको नही जानती। वह राजा जो कि तत्र-निष्ठाके मूल्यको जानता है, अपने सेवक की भी बात, उस मामलेमे मानता है, जिसका पूरा भार उसपर छोड देता है। इस जगह मेरा स्थान एक सेवकके जैसा था। और मै इस बातका उल्लेख कृतज्ञता और अभिमानके साथ करता हू कि मुझे जितने मित्र-निष्ठ साथी वहा मिले थे, उनमे कोई इतना मित्रनिष्ठ न था जितना चित्तरजन दास थे।

अमृतसर-धारासभामे तत्रनिष्ठका अधिकार मुझे नही मिल सकता था। वहा हम परस्पर योद्धा थे, हर शख्सको अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार राष्ट्रहित-सबधी, अपने ट्रस्टकी रक्षा करनी थी। जहा तर्क अथवा अपने पक्षकी आवश्यकताके अलावा किसीकी बात मान लेनेका सवाल न था। महासभाके मचपर पहली लडाई लडना मेरे लिए एक पूरे आनद और तृप्ति-का विषय था। बडे सभ्य, उसी तरह न झुकनेवाले महान् मालवीयजी बलाबलको सामने रखनेकी कोशिश कर रहे थे। कभी एकके पास जाते थे, कभी दूसरेके पास। महासभाके अध्यक्ष पडित मोतीलालजीने सोचा कि खेल खतम हो गया। मेरी तो लोकमान्य और देशबधुसे खासी जम रही थी। सुधार-सबधी प्रस्तावका एक ही सूत्र उन दोनोने बना रक्खा था। हम एक-दूसरेको समझा देना चाहते थे, पर कोई किसीका कायल न होता था। बहुतोने तो सोचा था कि अब कोई चारा नही था और इसका अत बुरा रहेगा। अलीभाई, जिन्हे मै जानता था और चाहता था, पर आजकी तरह जिनसे मेरा परिचय न था, देशबधुके प्रस्तावके पक्षमे मुझे समझाने लगे। मुहम्मद अलीने अपनी लुभावनी नम्रतासे कहा, "जाच-समितिमे आपने जो महान् कार्य किया है, उसे नष्ट न कीजिए।" पर वह मुझे न पटा सके। तब जयरामदास, वह ठडे दिमागवाला सिंधी

आया, और उसने एक चिटमे समझौतेकी सूचना और उसकी हिमायत लिखकर मुझे पहुचाई। मै शायद ही उन्हे जानता था। पर उनकी आखो और चेहरेमे कोई ऐसी बात थी जिसने मुझे लुभा लिया। मैने उस सूचनाको पढा। वह अच्छी थी। मैने उसे देशबधुको दिया। उन्होने जवाब दिया,—"ठीक है, बशर्ते कि हमारे पक्षके लोग उसे मान ले।" यहा ध्यान दीजिए उनकी घनिष्ठतापर। अपने पक्षके लोगोका समाधान किये बिना वे नही रहना चाहते थे। यही एक रहस्य है लोगोके हृदयपर उनके आश्चर्यजनक अधिकारका। वह सब लोगोको पसद हुई। लोकमान्य अपनी गरुडके सदृश तीखी आखोसे वहा जो कुछ हो रहा था सब देख रहे थे। व्याख्यान-मचसे पडित मालवीयजीकी गगाके सदृश वाग्धारा बह रही थी। उनकी एक आख सभामचकी ओर देख रही थी जहा कि हम साधारण लोग बैठकर राष्ट्रके भाग्यका निर्णय कर रहे थे। लोकमान्यने कहा—"मेरे देखनेकी जरूरत नही। यदि दासने उसे पसद कर लिया है तो मेरे लिए वह काफी है।" मालवीयजीने उसे बहासे सुना, कागज मेरे हाथमे छीन लिया और घोर करतलध्वनिमे घोषित कर दिया कि समझौता हो गया। मैने इस घटनाका सविस्तर वर्णन इस लिए किया है कि उसमे देशबधुकी महत्ता और निर्विवाद नेतृत्व, कार्य-विषयक दृढता, निर्णय-सबधी समझदारी और पक्षनिष्ठाके कारणोका सग्रह आ जाता है।

अब और आगे बढिए। हम जुहू, अहमदाबाद, दिल्ली और दार्जिलिग पहुचते है। जूहूमे वे और पडित मोतीलालजी मुझे अपने पक्षमे मिलानेके लिए आये। वे दोनो जोडवा भाई हो गये थे। हमारे दृष्टिबिदु अलग-अलग थे। पर उन्हे यह गवारा न होना था कि मेरे साथ मतभेद रहे। यदि उनके बसका होता तो वे ५० मील चले जाते जहा मै सिर्फ २५ मील चाहता, परन्तु वे अपने एक अत्यन्त प्रिय मित्रके सामने भी एक इच न झुकना चाहते थे, जहा कि देशहित सकटमे था। हमने एक प्रकारका समझौता कर लिया। हमारा मन तो न भरा, पर हम निराश

न हुए। हम एक-दूसरेपर विजय प्राप्त करनेके लिए तुले हुए थे। फिर हम अहमदाबादमे मिले। देशबधु अपने पूरे रगमे थे और एक चतुर खिलाडीकी तरह सब रग-ढग देखते थे। उन्होने मुझे एक शानकी शिकस्त दी। उनके जैसे मित्रके हाथो ऐसी कितनी शिकस्त मै न खाऊगा! पर अफसोस! वह शरीर अब दुनियामे नही रहा! कोई यह खयाल न करे कि साहावाले प्रस्तावके कारण हम एक-दूसरेके शत्रु हो गये थे। हम एक-दूसरेको गलतीपर समझ रहे थे, पर वह मतभेद स्नेहियोका मतभेद था। वफादार पति और पत्नी अपने पवित्र मतभेदोके दृश्योको याद करे—किस तरह वे अपने मतभेदोके कारण कष्ट सहते है, जिससे कि उनके पुनर्मिलनका सुख अति बढ जाय। यही हमारी हालत थी। सो हमे फिर दिल्लीमे उस भीषण जबडेवाले शिष्ट पडित और नम्र दाससे, जिनका कि बाहरी स्वरूप किसी सरसरी तौरपर देखनेवालेको अशिष्ट मालूम हो सकता है, मिलना होगा। मेरे उनके प्रस्तावका ढाचा वहा तैयार हुआ और पसद हुआ। वह एक अटूट प्रेम-बधन था जिसपर कि अब एक दलने उनकी मृत्युकी मुहर लगा दी है।

. . वे अक्सर आध्यात्मिकताकी बाते करते थे और कहते थे कि धर्मके विषयमे आपका मेरा कोई मतभेद नही है। पर यद्यपि उन्होने कहा नही तथापि हो सकता है कि उनका भाव यह रहा हो कि मै इतना काव्यहीन हू कि मुझे हमारे विश्वासोकी एकात्मता नही दिखाई देती। मै मानता हू कि उनका खयाल ठीक था। उन बहुमूल्य पाच दिनोमे मैने उनका हर कार्य धर्म-मय देखा और न केवल वे महान् थे, बल्कि नेक भी थे, उनकी नेकी बढती जा रही थी। पर इन पाच दिनोके बहुमूल्य अनुभवोको मुझे किसी अगले दिनके लिए रख छोडना चाहिए। जबकि क्रूर दैवने लोकमान्यको हमसे छीन लिया तब मै अकेला असहाय रह गया। अभीतक मेरी वह चोट गई नही है, क्योकि अबतक मुझे उनके प्रिय शिष्योंकी आराधना करनी पड़ती है।

पर देशबधुके वियोगने तो मुझे और भी बुरी हालतमे छोड दिया है। जब लोकमान्य हमसे जुदा हुए थे, देश आशा और उमगसे भरा हुआ था, हिंदू-मुसलमान हमेशाके लिए एक होते हुए दिखाई दिये थे, हम युद्धका शख फूकनेकी तैयारीमे थे। पर अब ? (हि० न० २५.६. २५)

... .

कलकत्तेने कल दिखला दिया कि देशबधुदासका बगालपर, नही सारे भारतवर्षके हृदयपर, कितना अधिकार था। कलकत्ता, बबईकी तरह पचरगी प्रजाका नगर है। इसमे हर प्रातके लोग बसते हे और इन तमाम प्रातोके लोग, बगालियोकी तरह ही अपने दिलसे उस जुलूसमे योग दे रहे थे। देशके कोने-कोनेसे तारोकी जो झडी लग रही है उससे भी यही बात और जोरके साथ प्रकट होती है कि सारे देशभरमे वे कितने लोकप्रिय थे।

जिन लोगोंका हृदय कृतज्ञतासे भर रहा है, उनके सबधमे इससे भिन्न अनुभव नही हो सकता था। और देशबधु इस सारे कृतज्ञताज्ञापनके पात्र भी थे। उनका त्याग महान था। उनकी उदारताकी सीमा नही थी। उनकी मुट्ठी सदा सबके लिए खुली रहती थी। दान देनेमे वे कभी आगा-पीछा न सोचते थे। उस दिन जबकि मैंने बडे मीठे भावसे कहा, "अच्छा होता, आप दान देनेमे अधिक विचारसे काम लेते।" उन्होने तुरत उत्तर दिया, "पर मै नही समझता कि अपने अविचारके कारण मेरी कुछ हानि हुई है।" अमीर और गरीब सबके लिए उनका रसोईघर खुला था। उनका हृदय हरएककी मुसीबतके समय उसके पास दौड़ जाता था। सारे बगालमे ऐसा कौन नवयुवक है जो किसी-न-किसी रूपमे देशबधुका कृतज्ञ नही है ? उनकी बेजोड कानूनी प्रतिभा भी सदा गरीबोकी सेवाके लिए हाजिर रहती थी। मुझे मालूम हुआ है कि उन्होने यदि सबकी नही तो, बहुतेरे राजनैतिक कैदियोकी पैरवी बिना एक कौडी लिये की है। पजाबकी जाचके समय जब वे पजाब गये थे तो अपना सारा खर्च अपनी जेबसे किया था। उन दिनो अपने साथ वे एक राजाकी तरह लवाजमा

ले गये थे। उन्होंने मुझसे कहा था कि पजाबकी उस यात्रामे उनके ५०,००० रुपये खर्च हुए थे। जो उनके द्वारपर आता था उसीके लिए उनकी उदारताका हाथ आगे बढ जाता था। उनके इसी गुणने उन्हें हजारो नवयुवकोंके दिलका राजा बना दिया था।

जैसे ही वे उदार थे वैसे ही निर्भीक भी थे। अमृतसरमें उनकी धुआधार वक्तृताओने मेरा दम खुश्क कर दिया था। वे अपने देशकी मुक्ति तुरत चाहते थे। वे एक विशेषणको हटाने या बदलनेके लिए तैयार न थे। इसलिए नही कि वे जिद्दी थे, बल्कि इसलिए कि वे अपने देशको बहुत चाहते थे। उन्होने विशाल शक्तियोको अपने कब्जेमे रक्खा। अपने अदम्य उत्साह और अध्यवसायके द्वारा उन्होने अपने दलको प्रबल बनाया। परतु यह भीषण शक्तिप्रवाह उनकी जान ले बैठा। उनका यह बलिदान स्वेच्छापूर्वक था। वह उच्च था। उदात्त था।

फरीदपुरमे तो उनकी विजय हुई। उनके वहाके उद्गार उनकी अत्यन्त समझदारी और राजनीतिज्ञताके नमूना थे। वे विचार-पूर्ण और असदिग्ध थे और (जैसा कि मुझे उन्होने कहा था) उनके अपने लिए तो उन्होने अहिंसाको एकमात्र नीति और इसलिए भारतवर्षका राजनैतिक धर्म (Creed) स्वीकार किया था।

प० मोतीलाल नेहरू तथा महाराष्ट्रके तत्रनिष्ठ सैनिकोसे मेल करके उन्होने शून्य-से स्वराज्य-दलको एक महान् और वर्धमान् दल बना लिया और ऐसा करके उन्होने अपने निश्चयबल, मौलिकता साधन-बहुलता और किसी वस्तुको अच्छा मान लेनेके बाद फिर परिणामकी चिंता न करनेके, गुणोका परिचय दिया। और आज हम स्वराज्य-दलको एक एकत्र और सुतत्रनिष्ठ सगठनके रूपमे देखते है। धारासभा-प्रवेशके सबधमे मेरा मतभेद था और है। पर मैने सरकारको तग करने और लगातार उसकी स्थितिको विषम बनानेके सबधमे धारासभाकी उपयोगितासे कभी इन्कार नही किया। धारासभामे इस दलने जो काम किया उसकी महत्तासे

कोई इन्कार नही कर सकता और उसका श्रेय मुख्यत देशबधुको ही है। मैंने अपनी आखे खुली रखकर उनके साथ प्रस्ताव किया था। तबसे मैंने जो कुछ हो सकी उस दलकी सहायता की है। अब उनके स्वर्गवासके कारण, उसके नेताके चले जानेके बाद, मेरा यह दुहरा कर्त्तव्य हो गया है कि उस दलके साथ रहू। यदि मै उसकी सहायता न कर पाया तो मै उसकी प्रगतिमे तो किसी तरह बाधक न होऊगा।

मै फिर उनके फरीदपुरवाले भाषणपर आता हू। स्थानापन्न बड़े लाट साहबने श्रीमती वासती देवी दासके नाम जो शोक-सदेश भेजा है उसके गुणको राष्ट्र मानेगा। एग्लो-इडियन पत्रोने स्वर्गीय देशबधुकी स्मृतिमे जो उनका यशोगान किया है उसका उल्लेख मै कृतज्ञतापूर्वक करता हू। मालूम होता है कि फरीदपुरवाले भाषणकी पारदर्शिनी निर्मल-हृदयताने अग्रेजोके दिलपर अच्छा असर किया है। मुझे इस बातकी चिता लग रही है कि कही उनके स्वर्गवासके कारण इस शिष्टाचार प्रदर्शनके साथ ही उसका अत न हो जाय। फरीदपुरवाले भाषणके मूलमे एक महान् उद्देश्य था। एग्लो-इडियन मित्रोने चाहा था कि देशबधु अपनी स्थितिको स्पष्ट कर दे और अपनी तरफसे आगे कदम बढावे। इसीके उत्तरमे उस महान् देशभक्तने वह भाषण किया था और अपनी स्थिति स्पष्ट की थी। पर क्रूर कालने उस उद्गारके कर्ताको हमसे छीन लिया। परन्तु उन अग्रेजोको, जो अब भी देशबधुकी नीयतपर शक करते हो, मै यकीन दिलाना चाहता हू कि जबतक मै दार्जिलिगमे रहा, मेरे दिल पर जो बात सबसे अधिक जोरके साथ अकित हुई वह थी, देशबन्धुके उन वचनोके निर्मल भाव। क्या इस गौरवमय अन्तका सदुपयोग हमारे घावोको भरने और अविश्वासको मिटानेमे किया जा सकता है? मै एक मामूली बात सुझाता हू। सरकार देशबन्धु चित्तरजन दासकी स्मृतिमें, जो कि अब हमारे साथ अपने पक्षकी पैरवी करनेके लिए दुनियामें नही है, उन तमाम राजनैतिक कैदियोको छोड दे, जिनके संबधमें

उनका कहना था कि वे निर्दोष है। मै निरपराधताकी बिना पर उन्हे छोडनेको नही कहता। हो सकता है कि सरकारके पास उनके अपराधके लिए अच्छे-से-अच्छे सबूत हो। मै तो सिर्फ उस मृत-आत्माके गुणकी स्मृतिमे और बिना पहलेसे कोई बुरा खयाल बनाये, उन्हें छोड देनेके लिए कहता हू। यदि सरकार भारतीय लोक-मतके अनुरजनके लिए कुछ भी करना चाहती है तो इससे बढकर अनुकूल अवसर न मिलेगा और राजनैतिक कैदियोके छुटकारेसे बढकर अनुकूल वायुमडल बनानेका अच्छा मगलाचरण न होगा। मै प्राय. सारे बगालका दौरा कर चुका हू। मैने देखा कि इस बातसे लोगोके दिलमे चोट पहुची है—इनमे सभी लोग आवश्यक रूपसे स्वराजी नही है। परमात्मा करे वह आग जिसने कि कल देशबन्धु-के नश्वर शरीरको भस्म कर डाला, हमारे नश्वर अविश्वास, सदेह और डरको भस्मसात् कर डाले। फिर यदि सरकार चाहे तो वह भारतवासियोकी मागकी पूर्तिके सर्वोत्तम उपायोपर विचार करनेके लिए एक सम्मेलन कर सकती है।

यदि सरकार अपने जिम्मेका काम करेगी तो हमे भी अपनी तरफका काम करना होगा। हमे यह दिखा देना होगा कि हमारी नौका एक आदमीके भरोसे पर नही चल रही है। श्री विन्सेट चर्चिलके शब्दोमे, जो कि उन्होने युद्धके समयमे कहे—"हमे यह कहनेमे समर्थ होना चाहिए, सब काम ज्यो-का-त्यो चलता रहे।" स्वराज्य-दलकी पुनर्रचना तुरत होनी चाहिए। पजाबके हिंदू और मुसलमान भी इस दैवी कोप-प्रहारको देखकर अपने लडाई-झगडे भूलते हुए दिखाई देते है। क्या दोनो पक्षके लोग इतनी दृढता और समझदारीका परिचय देगे कि अपने लडाई-झगडोका अत कर ले? देशबधु हिंदू-मुस्लिम-एकताके प्रेमी थे। उसपर उनका विश्वास भी था। उन्होने अत्यन्त विकट परिस्थितिमे हिंदू और मुसलमानोको एक बनाए रक्खा। क्या

उनकी चिताग्नि हमारे अनैक्यको न जला सकेगी ? शायद इसके पहले-तमाम दलोंके एक सस्थाके अतर्गत होनेकी आवश्यकता हो। देशबधु इसके लिए उत्सुक थे। वे अपने प्रतिपक्षियोके लिए बहुत बुरा-भला कहा करते थे। परंतु दार्जिलिगमे मैने देशबधुके मुहसे उनके किसी भी राज-नैतिक प्रतिपक्षीके प्रति एक भी कठोर शब्द निकलते न देखा। उन्होने मुझसे कहा कि सब दलोंके एक करनेमे आप भरसक सहायता दीजिए। सो अब हम शिक्षित भारतवासियोका कर्तव्य है कि देशबधुके इस विचारको कार्यरूपमे परिणत करें और उनके जीवनकी इस एक महाकाक्षाको पूर्ण करे। यदि हम फिलहाल स्वराज्यकी सीढीपर ठेठ ऊपरतक न पहुच सके तो तुरत उसकी कुछ सीढिया तो चढे सही। तभी हम अपने हृदय-स्तलसे पुकार सकते है—"देशबधु स्वर्गवासी हुए, देशबधु चिरायु रहें।" (हिं० न०, २५.६.२५)

इस अकमे लिखनेके लिए और क्या बात लिखना सूझेगी ?

पहाड-जैसे देशबधु उठ गये, सो अखबार उन्हीकी बातोसे भरे हुए है। देशबधुकी छोटी-से-छोटी बात अखबारवाले बडी उत्सुकताके साथ छाप रहे है। 'सर्वेंट' ने विशेष अक निकाला है। 'वसुमती 'बगालका सबसे बडा समाचारपत्र है। यह विशेष अकको तैयारी कर रहा है। हजारसे ज्यादा शोक-सूचक तार श्रीमती वासतीदेवी दासके पास आये है और सुदूर देशोसे आ ही रहे है। जगह-जगह सभाएं हुई है। कोई भी गाव, जहा महासभाका झडा फहराता हो, शायद ही खाली होगा, जहा सभा न हुई हो।

कलकत्ता १८ ता० को पागल हो गया था। अक-शास्त्री कहते हैं कि २ लाखसे कम आदमी इकट्ठे न हुए थे। रास्तोपर खडे, तारके खभो-पर चढे, ट्रामकी छतपर खड़े, झरोखोंमें राह देखते हुए बैठे स्त्री-पुरुष इससे जुदा है।]

साथ भजन-कीर्तन तो था ही। पुष्पोकी वृष्टि हो रही थी। शव

खुला हुआ था, परतु उसपर फूलोके हार का पहाड बिछ गया था।

रथीके जुलूसके आगे स्वयसेवक फुलवाडी लेकर चल रहे थे। उसमें फूलोसे सुसज्जित चरखा था। जुलूस स्टेशनसे ७-३० पर चलकर श्मशानमे ३ बजे पहुचा। ३-३० बजे अग्नि-सस्कार शुरू हुआ।

श्मशान-घाटपर भीड उमडी थी। पीछेसे जो भीड उमडती थी उसे रोकना अति कठिन था और मैं समझता हू कि यदि मुझे हट्टे-कट्टे लोगोने अपने कधेपर बिठाकर इस उमडती हुई भीडके सामने न उठा रक्खा होता तो भयकर दुर्घटना हो जाती। दो सशक्त आदमियोने मुझे अपने कधेपर बिठा रक्खा और उस हालतमे मैं लोगोको रोक रहा था और उनसे बैठ जानेकी प्रार्थना कर रहा था। लोग जबतक मुझे देखते थे तबतक तो मानते थे, पर मै जहा अशातिकी आशका होती उस ओर गया कि मेरी पीठ फिरते ही लोग तुरत उठ खडे हो जाते थे। सब लोग दीवाने हो गये थे। हजारो आखे रथीकी ओर लगी हुई थी। जब दाहकर्म शुरू हुआ तब लोग धीरज खो बैठे। सब बरबस खडे हो गये और चिताकी ओर खिच पडे। यदि एक भी क्षणका विलब होता तो सबके चितापर गिर पडनेका अदेशा था। अब क्या करे? मैंने लोगोसे कहा, "अब काम पूरा हुआ। सब अपने-अपने घर जावे।" और मुझे उठानेवाले भाइयोसे कहा, "अब मुझे इस भीडसे हटा ले चलो।" लोगोको मै पुकार पुकारकर और इशारेसे कहता चला कि मेरे पीछे आओ। इसका असर बहुत अच्छा हुआ, वह हजारोकी भीड वापस लौटी और दुर्घटना होते-होते बची।

चिता चदनकी लकडीकी बनाई गई थी।

लोग ऐसे मालूम होते थे मानो वन-भोजन को आये हो। गंभीरता तो सबके चेहरे पर थी, पर ऐसा नही मालूम होता था कि वे शोक-भारसे दब गये है। कुटुम्बियोका और मेरा शोक स्वार्थ-पूर्ण मालूम होता था। हमारे तत्त्व-ज्ञानका अन्त आ गया, लोगोका कायम रहा;

क्योकि वे तटस्थ थे। उनके अन्दर सम्मानका भाव तो पूरा-पूरा था। उनकी पूजा नि स्वार्थ थी। वे तो भारत-पुत्रको, अपने बन्धुको, प्रमाण-पत्र देनेके लिए आये थे। वे अपनी आखोमे और चेष्टासे ऐसा कहते हुए दिखाई देते थे, "तुमने बडा काम किया, तुम्हारे जैसे हजारो हों।"

देशबधु जैसे भव्य थे वैसे ही भले थे। दार्जिलिगमे इसका बडा अनुभव मुझे हुआ। उन्होने धर्म-सबधी बाते की। जिनकी छाप उनके दिलपर गहरी बैठी, उनकी बाते की। वे धर्मका अनुभव-ज्ञान प्राप्त करनेके लिए उत्सुक थे। "दूसरे देशमे जो कुछ हो, पर इस देशका उद्धार तो शातिमार्गसे ही हो सकता है। मै यहाके नवयुवकोको दिखला दूगा कि हम शातिके रास्ते स्वराज्य प्राप्त कर सकते है।" "यदि हम भले हो जायगे तो अग्रेजोको भला बना लेगे।" "इस अधकार और दभमे मुझे सत्य के सिवा दूसरा कोई रास्ता नही दिखाई देता। दूसरे की हमे आवश्यकता भी नही।" 'मै तमाम दलोंमे मेल कराना चाहता हू। बाधा सिर्फ इतनी ही है कि हमारे लोग भीरु है। उनको एकत्र करनेके प्रयत्नमे होता क्या है कि हमे भीरु बनना पडता है। तुम जरूर सबको मिलानेकी कोशिश करना और मिलना, पत्र-सपादकोको समझाना कि मेरी और स्वराज्य-दलकी ख्वाहमख्वाह निंदा करनेसे क्या लाभ ? मैने यदि भूल की हो तो मुझे बतावे। मै यदि उन्हे सतुष्ट न करू तो फिर शौकसे पेट भरके मेरी निदा करे।" "तुम्हारे चरखेका रहस्य मै दिन-दिन अधिक समझता जाता हू। मेरा कधा यदि दर्द न करता हो और इसमे मेरी गति कुठित न हो तो मै तुरत सीख लू। एक बार सीखनेपर नियम-पूर्वक कातनेमे मेरा जी न ऊबेगा। पर सीखते हुए जी उकता उठता है। देखो न, तार टूटते ही जाते है।" "पर आप ऐसा किस तरह कह सकते है ? स्वराज्यके लिए आप क्या नही कर सकते।" "हा, हा, यह तो ठीक ही है। मै कहा सीखने-से नाही करता हू ? मै तो अपनी कठिनाई बताता हू। पूछो तो बासती-देवीसे कि ऐसे काममे मै कितना मदबुद्धि हू ?" बासतीदेवीने उनकी मदद

की, "ये सच कहते है। अपना कलमदान खोलना हो तो ताला लगाने मुझे आना पडता है।" मैने कहा, "यह तो आपकी चालाकी है। इस तरह आपने देशबंधुको अपग बना रक्खा जिसमे उन्हे सदा आपकी खुशामद करनी पडे और आपपर सहारा रखना पडे।" हँसीसे कमरा गूज उठा। देशबधु मध्यस्थ हुए। "एक महीने बाद मेरी परीक्षा लेना। उस समय मै रस्सिया निकालना न भिलूगा।" मैने कहा "ठीक है आपके लिए सतीशबाबू शिक्षक भी भेज देगे। आप जब पास हो जायगे तो समझिएगा कि स्वराज्य नजदीक आ गया।" ऐसे सब विनोदोका वर्णन करने लगू तो खात्मा नही हो सकता।

कितने ही सस्मरण तो ऐसे है जिनका वर्णन मै कर ही नही सकता।

मै जिस प्रेमका अनुभव वहा कर रहा था उसकी कुछ झलक यदि यहा न दिखाऊ तो मै कृतघ्न माना जाऊगा। वे छोटी-छोटी-सी बातकी सभाल रखते थे। मेवे खुद कलकत्तेसे मगवाते। दार्जिलिगमे बकरी या बकरीका दूध मिलना मुश्किल पडता है। इसलिए ठेठ तलहटीसे पाच बकरिया मगवाकर रक्खी। मेरी जरूरतकी एक-एक चीजका इतजाम किये बगैर न रहते थे। हमारे कमरेके दरम्यान सिर्फ एक दीवार थी। सुबह होते ही, काम-काजसे निबटकर, मेरी राह देखते बैठते। चारपाई पर बैठते थे, चारपाई अभी नही छूटी थी। पल्थी मारकर बैठनेकी मेरी आदतसे परिचित थे। सो कुरसीपर नही बैठने देते थे। खटियापर ही अपने सामने मुझे बैठाते। गद्देपर भी कुछ खास तौरपर बिछवाते और तकिया भी लगवाते। मुझसे दिल्लगी किये बिना न रहा गया, 'यह दृश्य तो मुझे चालीस बरस पहलेकी याद दिलाता है। जब मेरी शादी हुई थी तब हम दुलहे-दुलहिन इस तरह बैठे थे। अब यहा पाणिग्रहणकी ही कसर है।" मेरे कहनेकी देर थी कि देशबधुके कहकहेसे सारा घर गूज उठा। देशबधु जब हँसते तो उनकी आवाज दूर तक पहुचे बिना न रहती।

देशबंधुका हृदय दिन-पर-दिन कोमल होता जाता था। रूढ़िके अनु-सार मांस-मछली खानेमें उन्हें कोई विधि-निषेध न था। फिर भी जब असहयोग शुरू हुआ तब मासाहार, मद्यपान और चुरट तीनो चीजें उन्होंने छोड़ दी थी। पीछे जाकर फिर उन्होने अपना जोर जमाया था; परतु उनका झुकाव इनको छोडनेकी ओर ही रहता था। अभी कुछ दिनोंसे राधास्वामी सप्रदायके एक साधुसे उनका समागम हुआ। तबसे निरा-मिष भोजनकी उत्सुकता बढ़ गई थी। सो जबसे वे दार्जिलिंग गये, निरा-मिष भोजन शुरू किया था। और मेरे रहने तक घरमें मास-मछली न आने दिया। मुझसे अनेक बार कहा, "यदि मुझसे हो सका तो अबमे मै मास मछलीको छुऊगा तक नही। मुझे वे पसद भी नही और मै समझता हू कि इससे हमारी आध्यात्मिक उन्नतिमे बाधा पहुचती है। मेरे गुरुने मुझे खास तौरपर कहा कि साधनाके खातिर तुम्हें मासाहार अवश्य छोड देना चाहिए।" (हिं० न०, २.७.२५)

... .

.. यदि हमे देशबधुकी आत्माको शाति दिलाना हो तो हमारे पास एक ही इलाज है। उनके तमाम सद्गुणोको हम अपने अदर पैदा करे। कितने ही सद्गुण तो अवश्य पैदा कर सकते है। उनके सदृश अग्रेजी चाहे हमे न आ सके, उनकी तरह वकील हम सब न हो सके, धारा-सभामे जानेकी शक्ति उनके सदृश हमारे पास न हो, पर हमारे अदर उनके जैसा देशप्रेम तो हो सकता है। उनके बराबर उदारता हम सीख सकते है। उनके बराबर धन हम चाहे न दे सके, परतु जो यथाशक्ति देते है उन्होने बहुत कुछ दे दिया है। विधवाके एक ताबेके छल्लेकी कीमत महा-राजके करोडोमेसे दिये हजारकी कीमतसे ज्यादा है। देशबधुने खादी पहननेके बाद फिर घरमे या बाहर उसका त्याग नही किया। क्या हम खादी पहनेगे? देशबधुने महीन खादी कभी न चाही। उन्होने तो मोटी खादीको ही पसद किया था। देशबधुने कातनेका प्रयत्न किया। जिन्होने

शुरू नही किया, क्या वे अब करेंगे ? (हिं० न०, ६.७.२५)

... ...

मै श्री मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास, मनमोहन घोष, बदरुद्दीन तैयबजी इत्यादिकी याद आपको दिला दूगा जिन्होने अपनी कानूनी योग्यता बिल्कुल मुफ्त बाटी और अपने देशकी बड़ी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की। आप शायद मुझे ताना देंगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसायमे बड़ी लबी-लबी फीस लेते थे। मै इस तर्कको इस कारण नही मान सकता कि मनमोहन घोषके सिवा मेरा और सबसे परिचय रहा है। अधिक रुपया होनेकी वजहसे इन लोगोने भारतको आवश्यकता पड़नेपर अपनी योग्यता उदारता-पूर्वक दी हो, ऐसा नही कहा जा सकता। उसका उनकी आराम तथा विलाससे रहनेकी योग्यतासे कोई सबध नही है। मैने उनको बडे सतोषसे दीनतापूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। (हिं० न०, १२.११.३१)

: ८३ :

दासप्पा

मैसूरमे कई वकीलोने मैसूर-सत्याग्रहकी हलचलमे हिस्सा लिया था। मैसूरकी चीफ कोर्टने उनके वकालतनामे छीन लिये है। इस सिलसिलेमें कोर्टके सबसे आखिरी शिकार श्री दासप्पा है। श्री दासप्पाकी मैसूरमे खूब प्रतिष्ठा है और वह बीस सालसे वकालत कर रहे है। वकालत-जैसे स्वतत्र पेशेमें किसीकी इस तरह सनद जब्त की जाना बेशक एक गंभीर बात है। पर पहले भी काफी कारणके बिना, या केवल राजनैतिक कारणोसे ऐसी घटनाए घट चुकी है। ऐसे अन्यायोको हमे धीरज और बहादुरीसे

बर्दाश्त करना है। पर श्री दासप्पाके बारेमे चीफ जजके हुक्मनामेकी रिपोर्ट 'हिंदू' मे पढकर बहुत दु ख हुआ है। श्री दासप्पाने मैसूरके एक खास भागमे सभाओमें भाषण न देनेके मजिस्ट्रेट साहबके हुक्मको तोडनेका साहस किया था और साथ ही मेरी सलाहके अनुसार सत्याग्रही कैदियोको, जज श्री नागेश्वर आइरकी महकमाना जाचका बहिष्कार करनेकी सलाह देकर अपनी धृष्टताका सबूत दिया था। इन और अन्य अपराधोके कारण श्री दासप्पाका वकालतनामा हमेशाके लिए जब्त हो गया। अगर जज-साहबकी चले, तो श्री दासप्पाको गरीबीका मुख देखना होगा। अगर उनके फैसलेका असर सरकारी मिसलके आगे जा सके, तो श्री दासप्पा समाजमे अपनी सब प्रतिष्ठा खोकर तिरस्कार और घृणाके पात्र बन जायेंगे। श्री दासप्पाको मै अच्छी तरह जानता हू। वह एक निर्दोष चरित्रके शुद्ध ईमानदार आदमी है। अपनी शक्तिके अनुसार वह अहिसाका पालन करने-का मर्दानगीसे प्रयत्न कर रहे है। जो उन्होने किया है वही कई वकील और दूसरे लोग ब्रिटिश भारतमे कर चुके है। जज ऐसी बातोकी तरफ ध्यानतक नही देते, और जनताने उनको जन-नायकका पद दिया है। श्री भूलाभाई बबईकी हाईकोर्टके एडवोकेट-जनरल रह चुके है। उन्होने कानून तोडे है। इसी तरह श्री मुशीने और श्री चक्रवर्ती राज-गोपालाचार्यने भी कानून तोडे है। मगर उन लोगोके वकालतनामेको किसीने हाथ नही लगाया। इसमेसे पिछले दो तो अपने-अपने सूबेमे मत्री पदपर भी रह चुके है। सार्वजनिक जाचका आजसे पहले बिना किसी निजी हानिके बहिष्कार किया गया है। मगर इससे बहिष्कारके कर्त्ता-धर्त्ताओकी इज्जत या आचरणपर कभी हमला नही किया गया। मेरी रायमे अपना फैसला सुनाते समय मैसूर कोर्टके जज अपने कर्तव्यको भूल गये है। इससे श्री दासप्पाको कोई नुक्सान नही पहुचा। उलटे वह मैसूरकी जनताकी नजरोमे और ऊचे चढ जाएगे। मगर मै यह दावेसे कह सकता हू कि अपने पूर्वाग्रहोके वश होकर जजसाहबने अपने आपको

नुकसान पहुंचाया है। इस तरह न्यायका मजाक पहले भी उड़ाया जा चुका है। (ह० से०, १३ .७.४०)

: ८४ :

मनोहर दीवान

एक परोपकारी पुरुष, मैं तो उनको महात्मा ही कहूंगा, मनोहर दीवान हैं। वे वर्धामें रहते हैं और विनोबा भावेके बड़े शिष्य हैं। विनोबाजी तो बहुत बड़े आदमी हैं। तो मनोहरके दिलमें हुआ कि चलो, कुछ-न-कुछ करें। तो उन्होंने कोढ़ियोंकी सेवा करनेका काम पसंद किया। विनोबाने भी उनको ऐसा करनेके लिए प्रेरणा दी। वे निर्लेप रहते हैं। पैसेकी उनको दरकार नहीं। वे डाक्टर तो नहीं हैं, लेकिन उन्होंने उसका काफी अभ्यास कर लिया है। काफी लोग उनकी मदद लेते हैं। (प्रा० प्र०, २३.१०.४७)

: ८५ :

गोपाल कृष्ण देवधर

श्री गोपाल कृष्ण देवधरके स्वर्गवाससे देश एक महान् समाज-सेवक और हरिजनोंका एक सुदृढ और विश्वसनीय बंधु गवा बैठा। स्व० गोखलेकी स्थापित की हुई 'सर्वेण्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी' के श्री देवधर संस्थापक सदस्योंमेंसे थे। प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघके वे अध्यक्ष भी थे। देशमें

ऐसा एक भी दुर्भिक्ष नही पड़ा या ऐसी बाढ़ नही आई जहा उनकी याद न की गई हो। वे चाहते तो आसानीसे काफी पैसा पैदा कर सकते थे, पर उन्होने तो गरीबीका ही बाना धारण किया, क्योकि लोक-सेवकका जीवन-सिद्धात ही गरीबी है। उनकी अथक कार्यशक्ति सक्रामक थी। जब भी उनकी समाज-सेवाकी माग हुई, वे कभी उससे पीछे नही रहे। उनका जीवन एक निष्कलक पवित्रताका जीवन था। अपने प्रिय पूना-सेवा-सदनके तो वे प्राण थे। उसके लिए उन्होने इतनी अच्छी तरह परिश्रम किया कि एक छोटी-सी चीजसे बढते-बढते वह आज इतनी अच्छी सस्था बन गई है कि भारतवर्षमे जितनी भी इस प्रकारकी सस्थाए है उनसे वह किसी तरह पीछे नही। दिवगत आत्माके परिवारके साथ मै सादर समवेदना प्रकट करता हू। (ह० से०, २३ ११.३५)

: ८६ :

दुर्गाबेन देसाई

श्रीमहादेव देसाईकी धर्मपत्नी प्रयागमे है। वे खुद भी स्वयसेविका हुई है, सेवा करनेके लिए जगह-जगह जाती है, दूसरे स्वयसेवकोको खाना पकाकर खिलाती है और दूसरी तरहसे उनकी सहायता करती है, रोज चरखा कातती है। श्रीमहादेवभाईके गिरफ्तार होते ही उन्होने मुझे एक पत्र भेजा, जिसे पढकर पाठक प्रसन्न होगे। इसी खयालसे उसे यहा प्रकाशित करता हू :—

"आप यह जानकर प्रसन्न होगे कि आप और वे जो बात चाहते थे, वही हुई। उन्हें एक वर्षकी सजा और सौ रुपया जुर्माना हुआ। जुर्माना न दें तो एक मास अधिक कैद। यह समाचार तो आपको मिल

हो चुका होगा। मैं तो आपको सिर्फ इसीलिए यह लिख रही हूं कि आप मेरी चिंता न करें। इस समय तो मुझे कुछ भी दुःख नहीं हुआ, पर नहीं कह सकती, यह हालत कबतक कायम रहेगी; क्योंकि मन तो स्वभावतः ही चंचल ठहरा। इससे वह कभी सुख और कभी दुःख मानकर व्यर्थ दुःखी होता है।

देवदासभाई जबतक जेलके बाहर हैं और यहां काम कर रहे हैं तबतक तो मैं यहीं रहूंगी। उनके पकड़े जानेके बाद मैं आश्रम (सत्याग्रह आश्रम, साबरमती) आऊंगी।

यह पत्र कल लिखकर वैसा ही छोड़ दिया था। आज मैं और देवदासभाई उनसे मिलने गये थे। उसका हाल देवदासभाईने आपको लिखा ही है, अतएव उस विषयमें मैं कुछ नहीं लिख रही हूं। जेलमें उनके साथ जिस तरहका बर्ताव किया जाता है, उसका हाल जानकर मनके धर्मके अनुसार, मुझे कुछ दुःख हुआ। पर अब उसका असर बिलकुल नहीं है। जब-जब मैं सोचती हूं तब-तब यही मालूम होता है कि ऊपरसे उन्हें चाहे कितना ही कष्ट दिया जाय, पर यदि ईश्वरकी कृपा होगी तो उन्हें और मुझे उसके सहन करनेका बल प्राप्त होगा। आप मेरी चिंता न कीजिएगा। क्योंकि यदि आपकी लड़की ही इतनेसे दुःखसे दुःखी होकर रोने-पीटने लगे तो फिर आपको इस संग्राममें विजय ही कैसे प्राप्त हो। मैं आपसे इतना तो जरूर चाह सकती हूं कि आप यह आशीर्वाद दीजिए कि ईश्वर मुझे यह सहन करनेका बल दे।"

मेरी आशीष तो हुई है। पर मैं आशीर्वाद देने वाला कौन? भारतकी महिलाएं तो अपने ही तपोबलसे साहस प्राप्त कर रही है। एक-दो आदमी तो जेल गये ही नही हैं। कितने ही लोग गये हैं और बहुतोंकी धर्मपत्नियां हिम्मत और धीरज धारण कर रही हैं और खुशी-खुशी अपने पतिको तथा दूसरे रिश्तेदारोंको जेलमें भेज रही हैं और स्वयं भी

जानेको तैयार होती है । मुझे यह खबर मिल गई है कि श्री देसाईके साथ जो निष्ठुर व्यवहार किया जा रहा था वह अब बद कर दिया गया है । धीरज तथा विनययुक्त बर्तावसे अनुचित दु खका निवारण हुए बिना रह ही नही सकता । पर ऐसा हो चाहे न हो, जेलके दु ख चाहे कितने ही भयानक क्यो न हो, उनको सहन किये बिना दूसरी गति ही नही है । (हिं० न० ८ १.२२)

: ८७ :

प्रागजी देसाई

एक भाई प्रागजी देसाई थे । उन्होने अपने जीवनमे कभी धूप-जाडा नही सहा था । और यहा तो जाडा था, धूप थी और बारिशका मौसिम था । हमने अपना श्रीगणेश तो तबूमे रहकर दिया था । मकान बँधकर तैयार हो तब उनमे सोये । करीब दो महीनोके अदर मकान तैयार हो गये । मकान टीनके थे, इसलिए उनको बनानेमे कोई देरी नही लगी । आवश्यक आकार-प्रकारकी लकडी तैयार मिल सकती थी । केवल नाप-जोख कर टुकडेमात्र करना पडते । दरवाजे—खिडकिया आदि ज्यादा नही बनाने थे । इसलिए इतने समयमे सभी मकान तैयार हो गये; पर इस काम-काजने भाई प्रागजीकी खूब खबर ले डाली । जेलकी बनिस्बत फार्मका काम जरूर ही अधिक सख्त था । एक दिन तो परिश्रम और बुखारके कारण वह बेहोश तक हो गये । पर वह यो इतनी जल्दी हारने वाले आदमी नही थे । यहा उन्होने अपने शरीरको पूरी तरह मेहनत पर चढा दिया और अतमे इतनी शक्ति प्राप्त कर ली कि वह सबके साथ-साथ काम करने लग गये । (द० अ० स० १९२५)

: ८८ :

भूलाभाई देसाई

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन, राष्ट्रीय ऋणकी संबंधमें जांच करनेके लिए महासमिति (आल इंडिया कांग्रेस कमेटी) ने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट, विशेषकर वर्तमान अवसरपर, एक अत्यंत महत्वका लेख है। राष्ट्रीय महासभा, कांग्रेसका कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रखे बिना न रहेगा। श्री बहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशाल शाह और कुमारप्पा अपने इस प्रेम—परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभिनंदन-के अधिकारी हैं। 'यंग इंडिया'के विदशी पाठक जानते हैं कि श्री बहादुरजी और उसी तरह श्री भूलाभाई देसाई, दोनो ही एक बार एडवोकेट-जनरल थे। इन्होने एडवोकेट-जनरलके पद का उपयोग किया है, यह बात यों ही छोड़ दी जाय तो दोनो धूमधामसे चलनेवाले धंधेके व्यवसायी और अनु-भवी कानून विशेषज्ञ हैं। एडवोकेट-जनरलके पदने इनकी प्रतिष्ठामे कुछ वृद्धि की है ऐसी कोई बात नही है। यह तो उनकी प्रतिष्ठा की और उनके व्यवसायमे उनका जो पद है, उसकी स्वीकृति-मात्र है। खुशाल शाह भारतप्रख्यात अर्थशास्त्री है, कितनी ही बहुमूल्य पुस्तकोके लेखक है और बहुत वर्ष तक, आज अभी तक, बंबई यूनिवर्सिटीके अर्थशास्त्रके अध्यापक थे। ये तीनो सज्जन सदैव काममें रुके रहते है, इसलिये राष्ट्रीय महा-सभाके सौपे हुए इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यके लिए समय देना उनके लिए कुछ ऐसा-वैसा साधारण त्याग नही था।. . रिपोर्टके लेखकोका यह परिचय मैने इसलिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सकें कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोका लिखा हुआ लेख नही, वरन जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले है और जो वाचलीबाज उपदेशक नही, वरन स्वयं जिस विषयके ज्ञाता है, उसीपर लिखनेवाले और अपने शब्दोको

तौलकर व्यवहारमे लाने वालोकी यह कृति है। (हिं० न०, ६ ८ ३१)

बारडोलीके किसानोंकी बहादुरीने और उनकी आफतो व मुसीबतोने श्री भूलाभाई देसाई-जैसोको जनताकी सेवाका काम सभाल लेनेकी प्रेरणा दी, वरना वे एक मशहूर सरकारी नौकर रहे होते और बबई हाईकोर्टके जज बनकर उन्होने अपना काम पूरा किया होता। कानूनके एक पडितके नाते उनकी होशियारीके कारण जब आजाद हिद फौजके कैदी रिहा कर दिए गये तो उनकी कीर्ति अपनी अतिम सीमा तक पहुच गई। उनके बेटे और उनकी बहूके शोकमे मैं और मेरे-जैसे दूसरे बहुतेरे उनके हिस्सेदार है। आशा है कि स्वर्गीय भूलाभाईमे देश-सेवाका जो प्रेम था, उसे विरासतमे पाकर वे दोनो अपने शोकको आनदमे बदल डालेगे। यही एक चीज है, जो जीवनको जीने योग्य बनाती है। (ह० से०, १२.५ ४६)

: ८६ :

महादेव देसाई

पाठक यह जानकर खुश होगे कि महादेव देसाईका स्वास्थ्य अब दिन-प्रतिदिन उन्नति करता जा रहा है। लगातार कई सालसे स्वास्थ्य पर जोर पडनेके बाद विश्राम तो उन्हें लेना ही चाहिए था, पर वह नही ले सके। और मैंने भी आग्रह नही किया। अच्छा हुआ कि दयालु प्रकृतिने आकर उन्हें विश्राम लेनेके लिए बाध्य कर दिया, जिसे कि स्वेच्छापूर्वक लेनेको वह तैयार न होते। श्री राजकुमारी अमृतकौर उन्हे अपने घर शिमला ले गई है। वहा पहाडोकी शुद्ध ताजी हवा तो है ही, पर इससे भी अधिक जो स्वास्थ्यप्रद चीज उन्हे वहा मिल रही है वह है राजकुमारीकी प्रेमपूर्ण सेवा और उपचार। इससे निश्चय ही शिमलाके

शक्तिवर्द्धक जलवायुमें उनका स्वास्थ्य उन्नति करेगा। (ह० से०, २३.१०.३८)

. . . .

महादेवकी अकस्मात मृत्यु हो गई। पहले जरा भी पता नही चला। रात अच्छी तरह सोये। नाश्ता किया। मेरे साथ टहले। सुशीला और जेलके डाक्टरोने जो कुछ कर सकते थे किया; लेकिन ईश्वरकी मर्जी कुछ और थी। सुशीला और मैने शवको स्नान कराया। शरीर शातिसे पडा है, फूलोसे ढका है, धूप जल रही है। सुशीला और मै गीता-पाठ कर रहे है। महादेवकी योगी और देशभक्तकी भाति मृत्यु हुई है। दुर्गा, बाबला और सुशीलासे कहो, शोक करनेकी मनाई है। ऐसी महान् मृत्युपर हर्ष ही होना चाहिए। अत्येष्टि मेरे सामने हो रही है। भस्म रख लूगा। दुर्गाको सलाह दो कि आश्रममे रहे, लेकिन अगर वह जाना ही चाहे तो घरवालोके पास जा सकती है। आशा है, बाबला बहादुरीसे काम लेगा और महादेवका सुयोग्य उत्तराधिकारी बननेके लिए अपनेको तैयार करेगा। सप्रेम, (आगा खा महलसे १५.८.४२को दिया तार)

. . . . .

भावना तो महादेवकी खुराक थी (का० क० ३)

. . . .

महादेवका बलिदान कोई छोटी चीज नही है। अकेला भी वह बहुत काम करेगा। (का० क० १६.८ ४२)

. .

(बा कह रही थीं, "देखो, महादेव गये। ब्राह्मणकी मृत्यु हुई, अपशकुन है न। इतनी बड़ी ताकतके खिलाफ बापू लड़ रहे हैं, कैसे जीतेंगे !" बापूने सुना तो कहने लगे—)

"मैं इसे शुभ शकुन मानता हू। शुद्धतम बलिदान हुआ है, इसका परिणाम अशुभ नही हो सकता।" (का० क०, २८.८.४२)

. . . .

(आज 'बॉम्बे कानिकल' के सब पुराने अंक आगये। मालूम होता है, महादेवभाईकी मृत्युको देशने चुपचाप सह लिया है। यह चीज बापूको काफी चुभी है। घूमते समय कहने लगे—)

आखिर तो महादेव इनके जेलमे मरा है न? महादेवका खून इनके सिर है। मैं उस दिन गवर्नरको लिखने वाला था, मगर फिर काट डाला। जिन्दा रहा तो किसी दिन मै जरूर उन्हे यह सुनाऊगा कि महादेवकी मृत्युका कारण आप है। मै मानता हू कि वह जेल न आते तो कम-से-कम इस वक्त तो हर्गिज न मरते। बाहर वह कई तरहके कामोमें उलझे रहते। यहा वह एक ही विचारमे डूबे रहे, एक ही चिंता उनके सिरपर सवार रही। वह उन्हे खागई। उनपर भावनाका कुछ इतना जोर पड़ा कि वह खतम हो गये। देशने कुछ भी नही किया। बैकुठ मेहताकी श्रद्धाजलि तो आने ही वाली थी और बरेलवीकी भी। मगर महादेव तो सारे देशके थे और देशके लिए वह गये है। भगतसिहकी मृत्युके बाद जब मै लॉर्ड अर्विनसे समझौता करके कराची जा रहा था तो लोगोके झुड-के-झुड हर स्टेशनपर मेरे पास आते थे और चिल्लाते थे, "लाओ भगतसिहको!" इसी तरह इस बार भी वे सरकार-को कह सकते थे, "लाओ महादेवको!" सरकार लाती तो कहासे? कह देती कि जो लोग इतने भावुक, इतने विक्षुब्ध और इतने संवेदनशील हैं, वे जेलमें आते ही क्यो है? न आए—वगैरा।

(फिर बापू कहने लगे—)

मगर लोग शायद सोचते होगे कि आज सरकारके साथ ऐसा घमासान युद्ध चल रहा है कि उसमे दूसरी किसी चीजका विचार करनेका अवकाश ही कहा रह जाता है?

(मैंने कहा, "और आपने भी तो तारमें लिखा था न कि जो किया जा सकता था, किया गया! इसके कारण भी लोग शान्त रह

गये होंगे। समझे होंगे कि यह तो स्वाभाविक मृत्यु थी, जो कहीं भी हो सकती थी।" बापूने कहा—)

सो तो है, लेकिन मृत्यु हुई तो सरकारके जेलमे न ? (का० क०, १०.६.४२)

.. .. ..

(शामको महादेवभाईके समाधि-स्थानसे लौट रहे थे तब बापू कहने लगे—)

यहा आ जाना मेरे लिए बहुत शातिदायक है और उससे जो प्रेरणा मुझे लेनी होती है मै ले लेता हू।

(मैंने कहा, "अब आप महादेवभाईसे प्रेरणा लेते है, कभी वह आपसे लेते थे!" कहने लगे—)

क्यो नही, प्रेरणा तो एक बच्चेसे भी ले सकते है और बच्चा चला जाता है, तो भी क्या? उसका स्मरण तो २४ घटे चलता ही है। जो राजाजी ने कहा है वह बिलकुल सही है। महादेव मेरा अतिरिक्त शरीर था। कितनी दफा मैंने उसे मैक्सवैलके पास भेजा है, दूसरोके पास भेजा है। मान लेता था कि महादेवको काम सौपा है तो वह कर लेगा।" (का० क०, १८.६.४२)

(सुबह घूमते समय बापू कहने लगे—) महादेवको मेरा वारिस होना था, पर मुझे उसका वारिस होना पडा है। मीराबहनको महादेवभाईकी समाधिपर मेरा जाना खटकता है, मगर मेरे लिए वह बिलकुल-सहज बन गया है। मै न जाऊ तो बेचैन हो जाऊ। वहा जाकर मै कुछ करना नही चाहता, समय भी नही देना चाहता, मगर हो आता हू, इतना ही मेरे लिए बस है। अगर मै जिंदा रहा तो यह जमीन आगाखासे मांग लूगा। वह न दे, यह सभव हो सकता है। मगर किसी रोज तो हिंदुस्तान आजाद होगा। तब यह यात्राका स्थान बनेगा। मै वहा जाता हू तो महादेवके गुणोका स्मरण करनेके लिए, उन्हें ग्रहण

करनेके लिए। मैं उसकी स्मृतिको खोना नही चाहता। और जिस तरहसे वह यहा मरा, उससे उसकी स्त्री और उसके लड़केके प्रति मेरी वफादारी भी मुझे बताती है कि मुझे वहा नियमित रूपसे जाना चाहिए। हो सकता है कि मेरी जिन्दगीमे यह जगह मुझे न मिल सके और इस जगहको यात्रा-स्थल बनते मै न देख सकू, मगर किसी-न-किसी दिन वह जरूर बनेगा, इतना मै जानता हू। आज तो मै सब काम उसका काम समझकर करता हू। बाहर जाऊगा तब भी उसीका काम करूगा। (का० क०, १०.९.४२)

. . . . . .

(सुबह समाधिसे लौटते समय बापू महादेवभाईवाली गीताजीके पन्ने उलट रहे थे। आखिरी पन्ने पर 'आउज बिल्ला'वाली आयत लिखी हुई थी। पूछने लगे—)

ये किसके अक्षर है? महादेवके या प्यारेलालके?

(मैने बताया कि १ अगस्तको बम्बईसे चलते समय महादेवभाईने भाईको वह आयत लिख देनेको कहा था, सो भाईके अक्षर है। बापू कहने लगे—)

बस छ दिन उसने यह आयत गाई।

(फिर थोड़ा ठहरकर बोले—)

लगता ही नही है कि महादेव सदाके लिए गया। कल रातको स्वप्नमे वह लडकी. . कहती है, "महादेवभाई कहा है?" मै उत्तर देता हू, "बहन, मै तो उसे स्मशानमे छोड आया हू।" पीछे वह पागल-सी हो जाती है। कहती है, "लाओ महादेवभाईको। उसे वहा क्यो छोड आए?" (का० क०, २३.१२ ४२)

. . . . . .

(भाईसे कहने लगे—) मान लो इस उपवासके कारण मै लोप हो जाऊ तो तुम लोगोसे मै क्या आशा रक्खूगा, यह समझ लो। महादेवकी

मैं भाटकी तरह स्तुति करता हू, मगर मेरा मन उसकी शिकायत भी करता है। उसकी मिसाल सपूर्ण या आदर्श नही मानना चाहिए। वह इस विचारका जप करते-करते चला गया कि 'मैं बापूके बाद क्या कर सकता हू ? बापूसे पहले चला जाऊ तो अच्छा है।' मगर उसे तो कहना चाहिए था कि 'नही, मुझे तो जिंदा रहना है और बापूका काम करना है।' यह दृढ सकल्प उसे मरनेसे रोक भी लेता। (का० क०, ६ २.४३)

... .

मेरे विचारसे महादेवके चरित्रकी सबसे बडी खूबी थी, मौका पड़नेपर अपनेको भूलकर शून्यवत बनजानेकी उनकी शक्ति। (ह० से०, १२ ८.४६)

. ...

जमनालाल, मगनलाल और महादेव—इनमेंसे हरएक अपने-अपने क्षेत्रमे अनूठे थे। मेरा खयाल है कि उनकी जगह दूसरे नही ले सकते। मगर मैं कहूगा कि इन तीनोमेंसे महादेव मुझमे पूरी तरह खो गया था। मै यह कह सकता हू कि मुझसे अलग उसकी कोई हस्ती ही नही रह गई थी।

महादेवकी एक बडी खूबी यह थी कि जो काम उन्हे सौंपा जाता था, उसे करनेके लिए वे सदा तैयार रहते और बडे उत्साहसे करते थे। इसी तरह वे एक अच्छे लेखक, अच्छे रसोइया और अच्छे कुली बन सके थे। अक्सर जो लोग मेरे साथ काम करनेके लिए आते है, वे ऐसे ही बन जाते है। (ह० से०,.८.१८ ४६)

... ...

महादेव गुलाबका फूल है। (ह० से०, १८.८.४६)

... ...

वे मेरे बॉसवेल (जीवनी लिखनेवाले) बनना चाहते थे, फिर भी मुझसे पहले मरना चाहते थे। इससे बेहतर वे क्या कर सकते थे? सो वे तो चले गये और मुझे उनकी जीवनी लिखनेके लिए छोड गये।....

बच्चे अपने मा-बापके पहले मरना चाहे तो इससे बढकर बेरहमी और क्या हो सकती है? यह उनका निरा स्वार्थ है। भले ही मै दूसरोको इस बातका यकीन न दिला सकू लेकिन यह मै जरूर महसूस करता हू कि मौत कभी वक्तसे पहले नही आती दुनियामे अपना काम खत्म करनेसे पहले कोई मर्द या औरत कभी नही मरता। महादेवने पचास सालमें सौ बरसका काम पूरा कर डाला था। सो वह आराम करने चले गए, जिसपर उनका पूरा हक था। (ह० से० १८.८ ४६)

. . . .

महादेव देसाईके मित्र और प्रशसक उनके प्रिय काम करके ही उनकी बरसी मनाते है। वे बडे शक्तिशाली पुरुष थे। वे सुदर और सुडौल अक्षर लिखते थे। वे कई चीजोसे प्यार करते थे। लेकिन उन सबमें चर्खेकी जगह पहली थी। एक कलाकार होनेके नाते वे नियमसे बहुत बढिया कताई करते थे। कामकाजके भारी बोझसे थककर चूर हो जाने पर भी वे हमेशा कातनेका वक्त निकाल लेते थे। चर्खा उन्हे फिर तरो-ताजा बना देता था।

उनकी कई खूबियोमे उनके बेजोड अक्षर भी कोई कम महत्व नही रखते थे। उसमे कोई उनका सानी न था। रामदासस्वामीने अपने एक दोहेमे खूबसूरत अक्षरोकी चमकीले मोतियोसे तुलना की है। महा-देवकी कलमसे निकले हुए अक्षर खरे मोती जैसे होते थे।

उनकी तीसरी खूबी थी, हिंदुस्तानकी भाषाओसे उनका प्रेम। आप सबको भी यह गुण अपनेमे पैदा करनेकी कोशिश करनी चाहिए। वे भाषाशास्त्री थे। बगाली, मराठी और हिंदीपर उनका पूरा अधिकार था और वे उर्दू भी सीख चुके थे। जेलमें उन्होने ख्वाजा साहब एम० ए० मजीदसे, जो उनके साथ कैद थे, फारसी और अरबी सीखनेकी भी कोशिश की थी। (ह०से० ८.९.४६)

: ९० :

जयरामदास दौलतराम

मुझे जिनके बारेमे चेतावनी दी गई है उनमे सबसे आखिरी नबर है श्री जयरामदास और डा० चोइथरामका। जयरामदासके नामपर तो मै कसम खा सकता हू। इनसे अधिक सच्चा आदमी मुझे अपनी जिदगी-मे अभी नही मिला। जेलमें इनके चाल-चलनपर हम लोग लट्टू थे। उनकी नेकचलनीकी सीमा न थी। इनके दिलमे मुसलमानोके विरुद्ध रत्तीभर भाव नही। डा० चोइथरामसे मेरी जान-पहचान तो पहलेसे है, पर मै उन्हे पूरी तरह नही जानता, परतु जितना मै उन्हे जानता हू, उतने परसे मै उनका परिचय सिवा इसके दूसरी तरह देनेसे इन्कार करता हू कि वे हिंदू मुसलमान एकताके सभी हामी है। (हिं० न० १ .६ २४)

: ९१ :

आनंदशंकर ध्रुव

श्रीआनदशकर भाईकी क्षति न केवल गुजरातको अपितु काशी हिंदू विश्वविद्यालयकी उनकी वर्षोंकी अमूल्य सेवाके कारण यू० पी० को भी उतनी ही मालूम होगी। आनदशकर भाईकी जोड ढूढना असभव नही तो कठिन तो है ही। वे अत तक शिक्षक और शिक्षा-शास्त्री ही रहे। उनकी मृत्युसे अनेक विद्यार्थियोने अपना निजी मित्र गवाया है। मालवीय जीके तो वे दाहिने हाथ ही थे। उनकी इस समयकी मनोदशाकी तो हम कल्पना ही कर सकते है।

परतु आनदशकरभाई केवल शिक्षा-शास्त्री ही न थे। उनकी रुचि अनेक प्रकारकी थी। वे राजनीतिके गहरे अभ्यासी थे। स्वतत्रताके पुजारी थे। समाज-सुधारक थे। सनातनियोके साथ उनकी खूब पटती थी, क्योकि उनके बहुतसे रिवाजोका वे अनुसरण करते थे। परतु उनकी बुद्धि और उनका हृदय हमेशा सुधारकोके साथ ही था। वे निर्भयतासे अपने विचार व्यक्त करते थे। सस्कृतके विद्वान् और शास्त्रोके जानकार होनेकी वजहसे उनके विचारोका सब आदर करते थे। हिदूधर्मको उन्होने शोभित किया था।

स्वय मुझे तो उनकी सहायता मिला ही करती थी। वे मजदूरो और मालिकोके एक समान मित्र थे और दोनोके विश्वासपात्र थे। इसलिए वे दोनोकी अच्छी सेवा कर सके थे।

आनदशकर भाईके कुटुबी यह समझे कि उनके इस शोकमे बहुतेरे उनके साथ है, क्योकि उन्होंने अपने कुटुबका बहुत विस्तार किया था। (ह० से०, १९.४.४२)

: ९२ :

नटेसन

यह कहें तो अत्युक्ति न होगी कि इस समय प्रवासी भारतवासियोके दुखोपर विचार करनेवाले, उनकी सहायता करनेवाले, उनके विषयमें उचित रीतिसे और ज्ञानपूर्वक लिखनेवाले सारे भारतवर्षमे अकेले नटेसन ही थे। मेरे और उनके बीच बराबर नियमित रूपसे पत्र-व्यवहार चल रहा था। जब ये देशनिकालेकी सजा पाये हुए भाई मदरास पहुचे तब मि० नटेसनने उनकी हर तरहसे सेवा-सहायता की। भाई नायडू-

जैसे समझदार आदमी उनके साथमें थे। इसलिए मि० नटेसनको भी काफी सहायता मिली। स्थानीय चदा एकत्रकर मि० नटेसनने उनकी इस कदर सेवा की कि उन्हे यह याद तक नही होने पाया कि वे घर-बार छोडकर देश-निकालेकी सजामे आये थे। (द० अ० स०१९२५)

: ९३ :

गुलजारीलाल नन्दा

गुजरातमें ओतप्रोत हो जानेवाला प्यारेलालकी तरह यह दूसरा पजाबी है। प्यारेलालसे भी एक तरहसे बढकर है, क्योकि प्यारेलालके रास्तेमे आनेवाला कोई नही है। इसके सामने स्त्री-बच्चे वगैरह बहुतोका विरोध है और यह आदमी बडी व्यवस्था-शक्तिवाला और सत्यका जबरदस्त पुजारी है। (म० डा०)

: ९४ :

चार निडर नवयुवक

इस लोकेशनका कब्जा म्युनिसिपैलिटीने ले तो लिया, परतु तुरत ही हिंदुस्तानियोंको वहासे हटाया नही था। हा, यह तय जरूर हो गया था कि उन्हें दूसरी अनुकूल जगह देदी जायगी। अबतक म्युनिसिपैलिटी वह जगह निश्चित न कर पाई थी। इस कारण भारतीय लोग उसी 'गदे' लोकेशनमें रहते थे। इससे दो बातोमे फर्क हुआ। एक तो यह

कि भारतवासी मालिक न रहकर सुधार-विभागके किरायेदार बने और दूसरे गंदगी पहलेसे अधिक बढ गई। इससे पहले तो भारतीय लोग मालिक समझे जाते थे। इससे वे अपनी राजीसे नही तो डरसे ही, कुछ-न-कुछ तो सफाई रखते थे, किंतु अब 'सुधार' का किसे डर था? मकानोंमे किरायेदारोंकी भी तादाद बढी और उसके साथ ही गदगी और अव्यवस्थाकी भी बढ़ती हुई।

यह हालत हो रही थी, भारतवासी अपने मनमें झल्ला रहे थे, कि एकाएक 'काला प्लेग' फैल निकला। यह महामारी मारक थी। यह फेफड़ेका प्लेग था और गाठवाले प्लेगकी अपेक्षा भयंकर समझा जाता था। किंतु खुशकिस्मतीसे प्लेगका कारण यह लोकेशन न था, बल्कि एक सोनेकी खान थी। जोहान्सबर्गके आसपास सोनेकी अनेक खानें है। उनमे अधिकाश हब्शी लोग काम करते हैं। उनकी सफाईकी जिम्मेदारी थी सिर्फ गोरे मालिकोके सिर। इन खानोंपर कितने ही हिंदुस्तानी भी काम करते थे। उनमेंसे तेईस आदमी एकाएक प्लेगके शिकार हुए और अपनी भयकर अवस्था लेकर वे लोकेशनमें अपने घर आए।

इन दिनो भाई मदनजीत 'इडियन ओपीनियन' के ग्राहक बनाने और चदा वसूल करने यहा आये हुए थे। यह लोकेशनमे चक्कर लगा रहे थे। वह काफी हिम्मतवर थे। इन बीमारोको देखते ही उनका दिल टूक-टूक होने लगा। उन्होने मुझे पेसिलसे लिखकर एक चिट भेजी, जिसका भावार्थ यह था:

"यहां एकाएक काला प्लेग फैल गया है। आपको तुरंत यहां आकर कुछ सहायता करनी चाहिए, नहीं तो बड़ी खराबी होगी। तुरंत आइए।"

मदनजीतने बेधडक होकर एक खाली मकानका ताला तोड डाला और उसमे इन बीमारोको लाकर रक्खा। मै साइकिलपर चढ़कर लोके-

शनमे पहुचा। वहासे टाउन-क्लर्कको खबर भेजी और कहलाया कि किस हालतमे मकानका ताला तोड़ना पडा।

× × ×

डाक्टर विलियम गाडफ्रे जोहासबर्गमें डाक्टरी करते थे। वह खबर मिलते ही दौडे आए और बीमारोके डाक्टर और परिचारक दोनो बन गये, परतु बीमार थे तेईस और सेवक थे हम तीन। इतनेसे काम चलना कठिन था।

अनुभवोके आधापर मेरा यह विश्वास बन गया है कि यदि नीयत साफ हो तो सकटके समय सेवक और साधन कही-न-कहीसे आ जुटते है। मेरे दफ्तरमे कल्याणदास, माणिकलाल और दूसरे दो हिंदुस्तानी थे। आखिरी दोके नाम इस समय मुझे याद नही है। कल्याणदासको उसके बापने मुझे सौप रखा था। उनके जैसे परोपकारी और केवल आज्ञा-पालनसे काम रखनेवाले सेवक मैने वहा बहुत थोडे देखे होगे। सौभाग्यसे कल्याणदास उस समय ब्रह्मचारी थे। इसलिए उन्हे मै कैसे भी खतरेका काम सौपते हुए कभी न हिचकता। दूसरे व्यक्ति माणिकलाल मुझे जोहान्सबर्गमे ही मिले थे। मेरा खयाल है कि वह भी कुवारे ही थे। इन चारोको चाहे कारकुन कहिए, चाहे साथी या पुत्र कहिए, मैने इसमे होम देनेका निश्चय कर लिया। कल्याणदाससे तो पूछनेकी जरूरत ही नही थी, और दूसरे लोग पूछते ही तैयार हो गये। "जहा आप तहा हम"—यह उनका सक्षिप्त और मीठा जवाब था।

मि० रीचका परिवार बडा था। वह खुद तो कूद पडनेके लिए तैयार थे, किंतु मैने ही उन्हे ऐसा करनेसे रोका। उन्हें इस खतरेमे डालनेके लिए मै बिलकुल तैयार न था, मेरी हिम्मत ही नही होती थी। अतएव उन्होने ऊपरका सब काम सम्हाला।

शुश्रूषाकी यह रात भयानक थी। मै इससे पहले बहुत-से रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा कर चुका था। परंतु प्लेगके रोगीकी सेवा करनेका अवसर

मुझे कभी न मिला था। डाक्टरोकी हिम्मतने हमे निडर बना दिया था। रोगियोकी शुश्रूषाका काम बहुत न था। उन्हे दवा देना, दिलासा देना, पानी-वानी दे देना, उनका मैला वगैरा साफ कर देना—इसके सिवा अधिक काम न था।

इन चारो नवयुवकोके प्राणपणसे किये गए परिश्रम और ऐसे साहस और निडरताको देखकर मेरे हर्षकी सीमा न रही।

डाक्टर गाडफ्रेकी हिम्मत समझमे आ सकती है, मदनजीतकी भी समझमे आ जाती है—पर इन नवयुवकोकी हिम्मतपर आश्चर्य होता है। ज्यो-त्यो करके रात बीती। जहा तक मुझे याद पडता है, उस रात तो हमने एक भी बीमारको नही खोया। (आ० क० १९२७)

: ९५ :

दादाभाई नवरोजी

दादाभाईका एक पवित्र स्मरणीय प्रसग लिख देना चाहता हूं। दादाभाई कमिटीके अध्यक्ष नही थे, तथापि हमे तो यही मालूम हुआ कि रुपये आदि इन्हीके द्वारा भेजना शोभा देगा। फिर वे भले ही हमारी ओरसे अध्यक्षको दे दिया करे। पर पहले-पहल ही जो रुपये उन्हे भेजे गये, उन्हे उन्होने लौटा दिया और लिखा कि रुपए आदि भेजनेका कमिटी-सबधी काम हमें सर विलियम वेडरबर्नके द्वारा ही करना चाहिए। दादाभाईकी सहायता तो थी ही; पर कमिटीकी प्रतिष्ठा सर विलियम वेडरबर्नके द्वारा काम लेने हीसे बढती। मैंने यह भी देखा कि यद्यपि दादाभाई इतने वयोवृद्ध थे, तथापि पत्र आदि भेजनेके काममें बड़े ही नियमित थे। अगर उनके पास लिखनेके लिए

और कुछ न होता तो कम-से-कम हमारे पत्रकी पहुच तो लौटती डाकसे अवश्य ही आ पहुचती। उस पत्रमे भी आश्वासनके दो-एक शब्द रहते। ऐसे भी वे स्वय ही लिखते और उन पहुचनेवाले पत्रोको भी अपने टिश्यू पेपर बुकमे छाप लेते। (द० अ० स०; १६२५)

. . . .

दादाभाई नवरोजीकी सौवी जयती आगामी ४ सितबरको पडती है। श्रीभरूचाने समयपर ही उसकी याद हमे दिला दी है। हम दादाभाईको भारतका पितामह कहते थे। दादाभाईने अपना सारा जीवन भारतके अर्पण कर दिया था। दादाभाईने भारतकी सेवाको एक धर्म बना डाला था। स्वराज्य शब्द उन्हीसे हमे मिला है। वे भारतके गरीबोके मित्र थे। भारतकी दरिद्रताका दर्शन पहले-पहल दादाभाईने ही हमे कराया था। उनके तैयार किये अकोको आजतक कोई गलत साबित न कर पाया। दादाभाई हिदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई किसीमे भेद-भाव न रखते थे उनकी दृष्टिमे वे सब भारतकी सतान थे। और इसलिए सब समान रूपसे उनकी सेवाके पात्र थे। उनका यह स्वभाव उनकी दो पौत्रियोमे सोलहो आना दीख पडता है।

इस महान् भारत-सेवककी शताब्दी हम किस तरह मनावे ? सभाए तो होगी ही, वह भी अकेले शहरोमे नही, बल्कि देहातमे भी, जहा-जहा तक महासभाकी आवाज पहुचती है, वहा सब जगह। वहा करेंगे क्या ? उनकी स्तुति ? यदि यही करना हो तो फिर भाट-चारणोको बुलाकर, उनकी कल्पना-शक्तिका तथा उनकी वाणीके प्रवाहका उपयोग करके क्यो न बैठ रहे ? पर यदि हम उनके गुणोका अनुकरण करना चाहते हों तो हमे उनकी छानबीन करनी होगी और अपनी अनुकरण-क्षमताकी नाप निकालनी होगी।

दादाभाईने भारतकी दरिद्रता देखी। उन्होने सिखाया कि 'स्वराज्य'

उसकी औषधि है। परंतु स्वराज्य प्राप्त करनेकी कुंजी तलाश करनेका काम वह हमारे जिम्मे छोड़ गये। दादाभाईकी पूजाका मुख्य कारण दादाभाईकी देशभक्ति थी और उस भक्तिमे वे बडे लीन हो गये थे।

हम जानते है कि स्वराज्य प्राप्त करनेका सबसे बडा साधन चरखा है। भारतकी दरिद्रताका कारण है भारतके किसानोका सालमे छः या चार मास तक बेकार रहना। और यदि यह अनिवार्य बेकारी ऐच्छिक हो जाय अर्थात् काहिली हमारा स्वभाव बन बैठे तो फिर इस देशकी मुक्ति-का कोई ठिकाना नही। यही नही, बल्कि सर्वनाश इसका निश्चित भविष्य है। उस काहिलीको भगानेका एक ही उपाय है--चरखा। अतएव चरखा-कार्यको प्रोत्साहित करनेवाला हरेक कार्य दादाभाईके गुणोका अनुकरण है।

चरखेका अर्थ है खादी; चरखेका अर्थ है विदेशी कपडेका बहि-ष्कार, चरखेका अर्थ है गरीबोके झोपडोमें ६० करोड रुपयोका प्रवेश।

अखिल-भारत-देशबधु स्मारकके लिए भी चरखा ही तजवीज हुआ है। अतएव इस कोषके लिए उस दिन द्रव्य एकत्रित करना मानो दादा-भाईकी जयती ही मनाना है। इसलिए उस दिन एकत्र होकर लोग विदेशी कपडोका सर्वथा त्याग करे। सिर्फ हाथ-कते सूतकी खादी पहनें, निरतर कम-से-कम आधा घटा सूत कातनेका निश्चय दृढ करे और खादी-प्रचारके लिए धन एकत्र करे। कपास पैदा करनेवाले अपनी जरूरतका कपास घरमे रख ले।

परतु जिसे चरखेका नाम ही पसद न हो वह क्या करे? उसके लिए मै क्या उपाय बताऊ? जिसे स्वराज्यका नाम तक न सुहाता हो उसे मै शताब्दी मनानेका क्या उपाय सुझाऊ? उसे अपने लिए खुद ही कोई उपाय खोज लेना चाहिए। मेरी सूचना सार्वजनिक है। यही हो भी सकता है। दादाभाईके अन्य गुणोकी खोज करके कोई उनका

अनुकरण चाहे तो जुदी बात है। वैसे दूसरे तरीकेसे जयती मनाने-का उसे हक है। अथवा फर्ज कीजिए, शहरोमें स्वराज्यवादी दल कोई खास बात करना चाहे तो वह अवश्य करे। मै तो सिर्फ वही बात बता सकता हू जिसे क्या शहराती और क्या देहाती, क्या वृद्ध और क्या बालक, क्या स्त्री और क्या पुरुष, क्या हिंदू और क्या मुसलमान, सब कर सकते है।

यदि हम लोग मेरी तजवीजके अनुसार ही दादाभाईकी जयती मनाना चाहते हो तो हमें आजसे ही तैयारी करनी चाहिए। आजसे हम उसके लिए चरखा चलाने लग जाय। आज हीसे हम उसके निमित्त खादी उत्पन्न करे और ऐसी सभाए स्थान-स्थानपर करे जो हमे तथा देशको शोभा दे। (हिं० न०, ६ ८ २५)

. . . .

दूसरे, जिन कानूनोको मैंने पढा उनमे भारतवर्षके कानूनोका नाम तक न था। न यह जाना कि हिंदू-शास्त्र तथा इस्लामी कानून क्या चीज है। अर्जी-दावा तक लिखना न जानता था! मै बडी दुविधामे पडा। फीरोजशाह मेहताका नाम मैंने सुना था। वह अदालतमे सिंह-समान गर्जना करते है। यह कला वह इग्लैंडमे किस प्रकार सीखे होगे? उनके जैसी निपुणता इस जन्ममे तो नही आनेकी, यह तो दूरकी बात है, किंतु मुझे तो यह भी जबरदस्त शक था कि एक वकीलकी हैसियतसे मै पेट पालनेतकमे भी समर्थ हो सकूगा या नही!

यह उथल-पुथल तो तभी चल रही थी, जब मै कानूनका अध्ययन कर रहा था। मैंने अपनी यह कठिनाई अपने एक-दो मित्रोंके सामने रखी। एकने कहा—दादाभाईकी सलाह लो। दादाभाईके नाम परिचय-पत्रका उपयोग मैंने देरसे किया। ऐसे महान पुरुषसे मिलने जानेका मुझे क्या अधिकार है? कही यदि उनका भाषण होता तो मै सुनने चला जाता और एक कोनेमे बैठकर आख-कानको तृप्त करके वापस लौट आता।

उन्होंने विद्यार्थियोके सपर्कमे आनेके लिए एक मडलकी स्थापना की थी । उसमे मै जाया करता । दादाभाईकी विद्यार्थियोके प्रति चिंता और दादाभाईके प्रति विद्यार्थियोंके आदर-भाव देखकर मुझे बडा आनद होता । आखिर हिम्मत बाधकर वह पत्र एक दिन दादाभाईको दिया । उनसे मिला । उन्होने कहा—"तुम जब कभी मिलना चाहो और सलाह-मशविरा लेना चाहो, जरूर मिलना ।" लेकिन मैंने उन्हे कभी तकलीफ न दी । बगैर जरूरी कामके उनका समय लेना मुझे पाप मालूम हुआ । इसलिए उस मित्रकी सलाहके अनुसार, दादाभाईके सामने अपनी कठिनाइयोको रखनेकी मेरी हिम्मत न हुई । (आ० क०, १९२७)

(मद्यनिषेध विरोधी शिष्टमंडलसे बातचीत करते हुए गांधीजीने कहा—)

शराबबदी मुझे सिखानेवाले स्व० दादाभाई नवरोजी थे । मद्यनिषेध और मितपानके बीच भेद करना भी उन्होने ही मुझे सिखाया था । (ह० से०, ७.६ ३९)

: ९६ :

हरदयाल नाग

उन्होने अनासक्तियोग साधा है । (म० डा० १०.७.३२)

. . . .

प्रिय हरदयाल बाबू,

आपका पत्र पाकर हम सबको बहुत आनद हुआ । इतनी पकी उमरमे आपने तकली सीखी, यह जानकर मुझे आपसे ईर्षा होती है । और यह भी बड़ी खुशीकी बात है कि आपका वजन १६ पौड बढ़ गया ।

सेवा करनेके लिए आप बहुत वर्ष जियें ! आपके और आपकी तदुरुस्तीके बारेमे हम बहुत बार बाते करते है। हम सबका नमस्कार। (म० डा०, ५.८ ३२)

. . . .

ऐन मौकेपर सच्चा सदेश भेजनेमे आप हमेशा नियमित रहे हैं। इतनी उम्रमे इतना उत्साह दिखाकर आप देशके नौजवानोको शरमाते है। अभीके जैसा ही जोश कायम रखकर ईश्वर आपसे सौ बरस काम कराए। (म० डा०, १०.१० ३२)

: ९७ :

नागप्पा

ट्रासवालका जाड़ा बडा सख्त होता है। जाडा इतना भयकर पडता था कि सुबह काम करते-करते हाथ-पैर ठिठुर जाते थे। ऐसी स्थितिमे कितने ही कैदियोको एक छोटी-सी जेलमे रखा गया, जहा उन्हे कोई मिलने भी न पाए। इस दलमें नागप्पा नामक एक नौजवान सत्याग्रही था। उसने जेलके नियमोका पालन किया। उसे जितना काम दिया गया, सभी कर डाला। सुबह, पौ फटते ही सडकोपर मिट्टी डालनेको वह जाता। नतीजा यह हुआ कि उसे फेफडेका सख्त रोग हो गया और अतमें उसने अपने प्यारे प्राण अर्पित कर दिये। नागप्पाके साथी कहते है कि अत समय तक उसे लडाईकी ही धुन थी। जेल जानेसे उसे कभी पश्चात्ताप नही हुआ। देश-कार्य करते-करते आई मृत्युका उसने एक मित्रकी तरह स्वागत किया। हमारे नापसे नापा जाय तो नागप्पाको निरक्षर ही कहना पड़ेगा। अग्रेजी, जुलु आदि भाषाए वह अपने अभ्यासके कारण बोल सकता

था, कुछ-कुछ अग्रेजी लिख भी सकता था। पर विद्वानोकी पक्तिमे तो उसे कदापि नही रखा जा सकता था। फिर भी नागप्पाके धीरज, उसकी शाति, देश-भक्ति और मौतकी घडी तक दिखाई गई उसकी दृढतापर विचार किया जाय तो कहना होगा कि उसमे किसी ऐसी बातकी न्यूनता न थी कि जिसकी हमे उससे आशा करनी चाहिए। हमें बहुत बडे-बडे विद्वान नही मिले, पर फिर भी ट्रासवालका युद्ध रुका नही। यदि नागप्पा जैसे शूर सिपाही हमें नही मिलते तो क्या वह युद्ध चल सकता था ? (द० अ० स०, १९२५)

: ९८ :

थंबी नायडू

थबी नायडू तामिल सज्जन थे। उनका जन्म मारीशसमें हुआ था। उनके माता-पिता मद्रास इलाकेसे वहा आजीविकाके लिए गये हुए थे। श्री नायडू एक सामान्य व्यापारी थे। उन्होने कोई भी शिक्षा पाठशालामें नही पाई। पर उनका अनुभव-ज्ञान बडे ऊचे दर्जेका था। अग्रेजी अच्छी तरह बोल और लिख भी सकते थे, हालाकि भाषा-शास्त्रकी दृष्टिसे उसमे वे अवश्य गलतिया करते थे। तामिल भाषाका ज्ञान भी अनुभवसे ही प्राप्त किया था। हिंदुस्तानी अच्छी तरह समझ लेते और बोल भी सकते थे। तेलगूका भी कुछ ज्ञान रखते थे। पर हिंदी और तेलगूकी लिपियोका ज्ञान उन्हें जरा भी न था। मारीशसकी भाषा भी, जिसका नाम क्रीओल है और जो अपभ्रष्ट फ्रेंच कही जा सकती है, उन्हें बहुत अच्छी तरह अवगत थी। इतनी भाषाओका ज्ञान दक्षिण अफ्रीकामें कोई आश्चर्यजनक बात न थी। दक्षिण अफ्रीकामे आपको ऐसे सैकडो भारतीय मिलेंगे

जिन्हे इन सभी भाषाओंका मामूली ज्ञान है। और इन सबके अतिरिक्त हबशियोकी भाषाका ज्ञान तो उन्हें अवश्य ही होता है। इन सभी भाषाओंका ज्ञान वे अनायास प्राप्त करते है कर भी सकते हैं। इसका कारण मैंने यह देखा कि विदेशी भाषाके द्वारा शिक्षा प्राप्त करते-करते उनके दिमाग थके हुए नही होते। उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र होती है। उन भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियोके साथ बोल-बोलकर और अवलोकन करके ही वे उन भाषाओंका ज्ञान प्राप्त कर लेते है। इससे उनके दिमागको जरा भी कष्ट नही होता, बल्कि इस रोचक व्यायामके कारण उनकी बुद्धि-का स्वाभाविक विकास ही होता है। यही हाल थबी नायडूका हुआ। उनकी बुद्धि भी बहुत तीव्र थी। नवीन प्रश्नोको वे बडी फुर्तीके साथ समझ लेते। उनकी हाजिरजवाबी आश्चर्यजनक थी। भारत कभी नही आए थे पर फिर भी उनका उस पर अगाध प्रेम था। स्वदेशाभिमान उनकी नस-नसमे भरा हुआ था। उनकी दृढता चेहरेपर ही चित्रित थी। उनका शरीर बडा मजबूत और कसा हुआ था। मेहनतसे कभी थकते ही न थे। कुर्सीपर बैठकर नेतापन करना हो तो उस पदकी भी शोभा बढा दे। पर साथ ही हरकारेका काम भी उतनी ही स्वाभाविक रीतिसे वे कर सकते थे। सिरपर बोझा उठाकर बाजारसे निकलनेमे थबी नायडू जरा भी न शरमाते थे। मेहनतके समय न रात देखते, न दिन। कौमके लिए अपने सर्वस्वकी आहुति देनेके लिए हर किसीके साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते थे। अगर थबी नायडू हदसे ज्यादा साहसी न होते और उनमे क्रोध न होता तो आज वह वीर पुरुष ट्रासवालमे काछलियाकी अनु-पस्थितिमे आसानीसे कौमका नेतृत्व ग्रहण कर सकता था। ट्रासवालके युद्धके अत तक उनके क्रोधका कोई विपरीत परिणाम नही हुआ था, बल्कि तबतक उनके अमूल्य गुण जवाहिरोके समान चमक रहे थे। पर बादमे मैंने देखा कि उनका क्रोध और साहस प्रबल शत्रु साबित हुए और उन्होंने उनके गुणोको छिपा दिया। पर कुछ भी हो, दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-

युद्धमें थबी नायडूका नाम हमेशा पहले ही वर्गमें रहेगा । (द० अ० स०, १९२५)

: ६६ :

पी० के० नायडू

देश-निकालेकी सजा पाये हुए भाइयोके विषयमे यही तय हुआ कि उनके लिए वह सब किया जाय जो सहानुभूति और हमदर्दी कर सकती है । उनको आश्वासन दिया गया कि उनकी सहायताके लिए भारतमे यथाशक्ति व्यवस्था की जायगी । पाठकोको यह स्मरण रखना चाहिए कि इनमेसे अधिकाश तो गिरमिट-मुक्त ही थे । भारतमे कोई रिश्तेदार वगैरा उन्हे नही मिल सकते थे । कितनोका तो जन्म ही अफ्रीका-का था । सबको भारतवर्ष विदेशके समान मालूम होता था । इस तरहके निराधार मनुष्योको भारतके किनारेपर उतारकर उन्हे यहा-वहा भटकनेके लिए छोड देना तो जघन्य दुष्टता होती । इसलिए उनको यह विश्वास दिलाया गया कि भारतमे उनके लिए पूरी व्यवस्था कर दी जायगी ।

यह सब कर देनेपर भी उन्हे तबतक शाति कैसे मिल सकती थी, जब-तक कि कोई खास मददगार उनके साथ न कर दिया जाय ? देश-निकाले-की सजा पानेवालोका यह पहला ही दल था । स्टीमर छूटनेको कुछ ही घटोकी देरी थी । पसदगी करनेके लिए समय नही था । साथियोमेसे भाई पी० के० नायडूपर मेरी नजर गई । मैने पूछा—

"इन गरीब भाइयोको भारत छोड़नेके लिए आप जा सकते है ?"

"बड़ी प्रसन्नताके साथ ।"

"पर स्टीमर तो अभी खुलने ही को है ।"

"तो मुझे कौन देरी है ?"

"पर आपके कपडे वगैरह और खर्चा?"

"कपडे तो शरीरपर है ही। रही खर्चेकी बात, सो तो स्टीमरमे ही मिल जायगा।"

मेरे हर्ष और आश्चर्यकी सीमा न रही। पारसी रुस्तमजीके मकानपर यह बातचीत हुई थी। वहीसे उनके लिए कुछ कपडे, कबल वगैरा माग-मूग कर उन्हे रवाना कर दिया।

'देखिए भाई, राहमे इन भाइयोको अच्छी तरह सभालकर ले जाइए। इनको सुलाकर फिर आप सोइए और खिलाकर खाइए। मदरासके मि० नटेसनके नाम मै तार भेज देता हू। वह जैसा कहे वही कीजिए।'

"एक सच्चा सिपाही बननेको मै कोशिश करूँगा।" यह कहकर वह निकल पडे। मुझे निश्चय हो गया कि जहा ऐसे-ऐसे वीर पुरुष है, वहा कभी हार हो ही नही सकती। भाई नायडूका जन्म दक्षिण अफ्रिकामे ही हुआ था। उन्होने कभी भारतवर्षका दर्शन तक नही किया था। (द० अ० स० १९२५)

: १०० :

श्रीमती सरोजिनी नायडू

सरोजिनीदेवी आगामी वर्षके लिए महासभाकी सभानेत्री निर्वाचित हो गई। यह सम्मान उनको पिछले वर्ष ही दिया जाने वाला था। बड़ी योग्यता द्वारा उन्होने यह सम्मान प्राप्त किया है। उनकी असीम शक्तिके लिए और पूर्व और दक्षिण अफ्रीकामे राष्ट्रीय प्रतिनिधिके रूपमें की गई महान सेवाओके लिए वे इस सम्मानकी पात्र है और आजकलके दिनोमे जब कि स्त्री-जातिके अदर भारी जागृति हो रही है, स्वागत-

कारिणी-समितिका भारतवर्षकी एक सर्वोत्तम प्रतिभाशालिनी पुत्रीको सभापति चुनना भारतवर्षकी स्त्री-जातिका समुचित सम्मान करना है। उनके सभापति चुने जानेसे हमारे प्रवासी देशभाइयोको पूर्ण सतोष होगा और इससे उनके अदर वह साहस पैदा होगा, जिससे वे अपने सामने उपस्थित लडाईको लड सकेगे। राष्ट्रद्वारा दिये जानेवाले सबसे ऊचे पदपर उनका होना स्वतत्रताको हमारे अधिक समीप लावे। (हि० न०, ८ १०.२५)

. . . .

अमेरिकाके लिए श्री सरोजिनीदेवीने गत १२ ता० को हिंदुस्तान-का किनारा छोडा। यूरोप, अमेरिका, इत्यादि मुल्कोमें अपनी स्थायी सभाए स्थापित करके या समय-समयपर अपने प्रतिनिधि भेजकर हमारे बारेमे जो झूठी मान्यताए प्रचलित हो गई है, उन्हे दूर करनेकी आशा अनेको आदमी रखते है। मुझे यह आशा हमेशा ही गलत जान पडी है। ऐसा करनेसे हम सार्वजनिक धनका और जिनका और अच्छा उपयोग हो सकता है उन लोगोके समयका दुरुपयोग करेगे। किंतु पश्चिममे अगर किसीका जाना फल सकता है तो सरोजिनी देवीका या कविवर रवीन्द्र-नाथ ठाकुरका जाना अवश्य फल सकता है। सरोजिनीदेवीका नाम उनके काव्योसे पश्चिममे प्रसिद्ध है। उनमे चतुराई भी वैसी ही है। उन्हे यह भली भाति मालूम है कि कहा, क्या और कितना कहना चाहिए। किसीको दु ख पहुचाये बिना खरी-खरी सुना देनेकी कला उन्होने साधी है। जहा कही वे जाती है, उनकी बात सुने बिना लोगोका काम चलता ही नही है। दक्षिण अफ्रीकामे अपनी शक्तिका सपूर्ण उपयोग करके उन्होने वहाके अग्रजोंका मनहरण किया था और सुदर विजय प्राप्त करके सर हबी-बुल्ला-प्रतिनिधि-मडलका रास्ता साफ किया था। वहाका काम कठिन था। किंतु वहापर उन्होने अपनी मर्यादा निश्चित करके कानूनके जाल-पेंचोंमे न पडते हुए, मुख्य बातमे लगे रहकर अपना काम भलीभाति किया

था और हिंदुस्तानका नाम चमकाया था। ऐसा ही काम वे अमेरिका आदि देशोमे भी करेगी। अमेरिकामे उनकी हाजिरी ही मिस मेयोके असत्यका जवाब हो जायगी। उनका साहस भी उनकी दूसरी शक्तियोके ही समान है। परदेश जानेमे न तो उन्हे किसीकी सहायताकी आवश्यकता रहती है और न किसी मत्रीकी ही। जहा कही जाना हो वे अकेले निर्भयतासे विचर सकती है। उनकी ऐसी निर्भयता स्त्रियोके लिए तो अनुकरणीय है ही पुरुषोको भी लजानेवाली है। हम अवश्य यह आशा रख सकते है कि उनकी पश्चिमकी यात्रामेसे अच्छा फल निकलेगा। (हिं० न०, २०-९-२८)

. . . . . .

अमेरिकामे कई-एक मित्रोके पत्र बराबर मेरे पास आते रहते है, जिनमे सरोजिनीदेवीके कामकी प्रशसा रहती है। मित्र लिखते है कि सरोजिनी देवी अमेरिकामे बडे महत्वका काम कर रही है और अपनी सारी ईश्वरदत्त प्रतिभाका इस देशके लिए पूरा-पूरा उपयोग कर रही है। इसमे शका नही कि उन्होने अमेरिकावासियोका मन मोह लिया है। कनाडाकी एक बहनने एक लबे पत्रमे अपने कुछ अनुभव लिखकर भेजे है, उसमे थोडी से बाते नीचे देता हू :

"सरोजिनीदेवी थोडे समयके लिए मेरी मेहमान बनी थी। आपके उन मित्र और दूतसे मिलकर मैने अपने आपको बडभागी पाया है मै खुद एक स्त्री हू, वह भी स्त्री ही है। साथ ही वह तो कवि और सुधारक है, इसीलिए उन्होने मेरा हृदय और भी चुरा लिया है। उनकी आत्माका मुझपर बहुत ज्यादा असर हुआ है और इतने दिनके बाद भी उनके मिलापकी बात हमारे हृदयमें जैसी-की-तैसी बनी हुई है। जिस गिरजाघरमें सरोजिनीदेवीने व्याख्यान दिया था वह तो श्रोताओसे खचाखच भर गया था। उनके ज्ञानकी, उनके अनुभवोंकी, उनकी काव्यशक्तिकी, उनके मधुर कोकिल कठ की, उलके विनोदकी

और अंग्रेजी भाषापर उनके प्रभुत्वकी मैं आपसे क्या बात कहूं ? जैसे-जैसे उनकी वाणीका प्रवाह बढ़ता गया, वैसे-वैसे लोग मारे आश्चर्यके चकित होते गये और आखिरकार उनके गुणोंपर पूरे-पूरे मुग्ध होगये। उन्होंने हमारे सामने जितनी भी समस्याएं रक्खीं, हममेंसे कोई भी उनका उत्तर न दे सका। मेरे पास एक व्यवहार-कुशल व्यापारी बैठे हुए थे, उन्होंने समाधिवत् होकर उनका सारा व्याख्यान सुना। जो प्रश्न पूछे गये सरोजिनीदेवीने उनके ठीक-ठीक उत्तर दिये और बीच-बीचमें जिस ढंगसे उन्होंने विनोदका सहारा लिया उसे देखकर तो पूर्वोक्त व्यापारी महाशयसे बोले बिना न रहा गया। उन्होंने कहा, "ऐसी शक्ति तो मैंने किसी भी दूसरी स्त्रीमें नहीं देखी। अगर सच कहूं, मेरी रायमें कोई भी पुरुष इनके मुकाबलेमें खड़ा नहीं रह सकता।" वर्तमान भारतके विषयमें उन्होंने जो कुछ कहा, वह बहुत ज्यादा असर करनेवाला था। उन्होंने हमारी न्याय-प्रियताको जागृत किया, हमारे हृदयोंको पानी-पानी कर दिया और हमें उसी समय यह अनुभव होने लगा कि आपके यहां भी उसी तरहका राज्यतंत्र होना चाहिए जैसा हमारे यहां है। सरोजिनीदेवीकी रचनामें मालूम होता है, ईश्वरने कई रंग पूरे हैं। उन्हें भोजनके समय मिलिये या सम्मेलनोंमें मिलिये, सामान्य वार्तालापके लिए मिलिये अथवा और किसी कामके लिए, हर हालतमें उनकी प्रतिभा बिखरी पड़ती थी। उनके उत्साहका तो पार ही नहीं है। कई निमंत्रणोंको स्वीकार कर चुकी है, एक ही दिनमें कई जगह जाती है, लेकिन मालूम नहीं होता कि थकी हुई है। ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके पास शक्तिका कोई अटूट भंडार है ! लोकप्रियतासे वह फूल नहीं उठतीं। यहांकी सब अच्छी चीजें उन्हें पसंद हैं। वह बच्चोंको प्यार करती हैं, सुंदर फूल उनका मन चुरा लेते हैं, हमारे वृक्ष, हमारे सरोवर और हमारी नदियां उन्हें आनंद प्रदान करती हैं, फिर भी वह भविष्यको नहीं भूलतीं। यानी, स्त्री-

जातिमें जो कमजोरियां रहती है और प्रशंसाके कारण जिस तरह बहुधा स्त्रियां अपना आपा भूल जाती है, उस तरहका भय मुझे सरोजिनीदेवीके बारेमे नही है ।"

मै नही समझता कि इन बहनने जिस शब्दोमे सरोजिनीदेवीकी शक्तिका वर्णन किया है उनमे कोई बात बढाकर लिखी गई है । सरोजिनीदेवीमे वस्तुस्थितिको पलभरमे समझ लेनेकी अपूर्व शक्ति है । वह अपनी मर्यादाको समझती है । अर्थशास्त्रियो और राजनैतिक नेताओकी बारीकीमे वह कभी नही उतरती । इस तरहके ज्ञानका न तो वह कभी दावा करती है और न आडबर ही । साधारण आदमीके पास जितना ज्ञान होता है, उतने ही ज्ञानकी पूजीसे वह अपना काम इतनी चतुराईसे कर लेती है कि सामनेवाला आदमी उन्हे कभी उलझनमे डाल ही नही सकता । उलटे जो कुछ उनसे ग्रहण करता है उसीमे इतना सतोष अनुभव करता है, मानो उसे सबकुछ मिल गया हो । (हिं० न०, २१ २ २९)

• • •

सरोजिनी नायडूको वह चीज लागू नही होती । वह कोई आश्रमवासी तो है नही, बहुत चीजोमे मेरा विरोध भी कर लेती है । मै तो गुणोको ही देखता हू । मै खुद कहा दोषरहित हू कि किसीके दोष देखू ! वह तो अपना स्वतत्र स्थान रखती है । उमने अपना मार्ग निकाल लिया है । (का०क०,२४.९ ४२)

• • •

'मैंने रात भी कहा था कि यह सब जो तुम लोगोने किया है,[1] करने जैसा नही था । सरोजिनी नायडू काम तो बहुत बढिया कर लेती है, मगर सच्ची सस्कृतिकी कीमत देकर । जो चीज मै कहता हू उसमें सच्ची सस्कृति है. . .' (का०क०,३-१०-४२)

---

[1] अपने जन्मोत्सवकी ओर सकेत है ।

: १०१ :

जयप्रकाश नारायण

श्री जयप्रकाश नारायण और श्री सपूर्णानदजीने साफ शब्दोमे कह दिया है कि हम २६ जनवरीको ली जानेवाली प्रतिज्ञामे जो भाग जोडा गया है उसके खिलाफ हैं। मुझे उनका बडा लिहाज है। वे योग्य है, वीर है और उन्होने देशकी खातिर कष्ट उठाए हैं। लडाईमे वे मेरे साथी बन सकें तो इसे मै अपना सौभाग्य समझू। मै उन्हे अपने विचारका बना सकू तो मुझे कितनी खुशी हो। लडाई आनी ही है और मुझे उसका नायक बनना है तो यह काम मै ऐसे सहायकोके भरोसे नही कर सकता, जिनका कि कार्य-क्रम पर अधूरा विश्वास हो या जिनके दिलमें उसके बारेमे शकाए हो।

श्री जयप्रकाश नारायणने अपनी और समाजवादी दलकी स्थिति साफ करके अच्छा किया। रचनात्मक कार्य-क्रमके बारेमें वे कहते है-- **हमने इस अपनी लडाईके एकमात्र या पूरी तरह कारगर हथियारके रूपमें कभी स्वीकार नहीं किया हैं। इन मामलोमें हमारे विचार ज्यो-के-त्यो बन हुए है। मौजूदा सकटकालमें हमारे राष्ट्रीय नेताओकी लाचारी देखकर वे विचार कुछ मजबूत ही हुए हैं। उस दिन विद्यार्थियोंको स्कूल-कालेजोसे निकल आना चाहिए और मजदूरोको काम बद कर देना चाहिए।**

अगर अधिकाश काग्रेसियोका यही विचार है जो श्री जयप्रकाशने समाजवादी दलकी तरफसे प्रकट किया है तो मै इस तरहकी सेनाको साथ लेकर सफलता पानेकी कभी आशा नही रख सकता। उनकी न कार्य-क्रममें श्रद्धा है, न वर्तमान नेताओमे। मेरे खयालसे जिस कार्यक्रमपर वे सिर्फ राष्ट्रके नेताओकी इच्छाके कारण ही चलनेकी बात कहते है

उसकी उन्होने बिल्कुल अनजानमे ही सही निंदा कर दी। जरा ऐसी फौजकी कल्पना तो कीजिए जो लडाईके लिए कूच करनेवाली है, लेकिन न तो जिन हथियारोसे काम लेना है उनमे उसका विश्वास है और न जिन नेताओने यह हथियार बताये है उनपर श्रद्धा है। ऐसी सेना तो अपना, अपने नायकोका और कामका सत्यानाश ही कर सकती है। मै श्री जयप्रकाशकी जगह होऊ और मुझे लगे कि मै अनुशासनका पालन कर सकता हू तो मै अपने दलको चुपचाप घरमे बैठे रहनेकी सलाह दू। अगर ऐसा न कर सकू तो निकम्मे नेताओकी बुरी योजनाओको मटियामेट करनेके लिए खुली बगावतका झडा फहरा दू।

श्री जयप्रकाश चाहते है कि विद्यार्थी स्कूल-कालिजोसे निकल आए और मजदूर काम छोड बैठे। यह तो अनुशासन भग करनेका पाठ पढाना हुआ। मेरी चले तो मै हर विद्यार्थीसे कहू कि छुट्टी न मिले या प्रिंसीपल छब्बीस जनवरीको उत्सवमे भाग लेनेके लिए स्कूल या कालिज बद करनेका फैसला न करे तो उन्हे स्कूल या कालेजमे ही रहना चाहिए। इसी तरहकी सलाह मै मजदूरोको दूगा। श्री जयप्रकाशकी शिकायत है कि स्वाधीनताके दिन जो काम करना है उसके बारेमे कार्यसमितिने कोई तफसील नही बताई। मैने समझा था कि जब भाईचारेका और खादीका कार्यक्रम है तो फिर तफसीलवार हिदायते देनेकी क्या जरूरत है? मुझे आशा है कि हर जगह काग्रेस-कमेटिया कताई-प्रदर्शन, खादी-फेरी और ऐसे ही दूसरे आयोजन करेगी। मै देखता हू कि कुछ कमेटिया तो ऐसा कर भी रही है। मैने काग्रेस कमेटियोसे आशा तो यह रक्खी थी कि जिस दिन कार्यसमितिका प्रस्ताव प्रकाशित हो जाय उसी दिनसे तैयारिया शुरू हो जायगी। मै राष्ट्रकी तैयारी सिर्फ इसी बातसे नहीं जानूगा कि देश-भरमे कितना सूत काता गया, बल्कि मुख्यत. इस बातसे जानूगा कि खादी कितनी बिकी।

अतमे श्री जयप्रकाशका कहना है कि हमने अपनी तरफसे तो एक

नया कार्य-क्रम मजदूर और किसान सगठनका बनाया है, ताकि उसके पायेपर क्रातिकारी सार्वजनिक आदोलन चलाया जाय।

इस तरहकी भाषासे मुझे डर लगता है। मैंने भी सगठन तो किसान और मजदूर दोनोका किया है, मगर शायद उस तरहपर नही किया जैसा श्री जयप्रकाशके जीमे है। उनके वाक्यको और खोलकर समझानेकी जरूरत है। अगर उनका सगठन पूरी तरह शातिपूर्ण न हो तो उससे अहिसक कार्रवाईको उसी तरह नुकसान पहुच सकता है जिस तरह कि रोलट कानून-वाले सत्याग्रहको पहुचा था और बादमे ब्रिटिश युवराजके आने पर बबईकी हड़तालके समय पहुचा था। (ह० से०, २० १.४०)

. . . .

श्री जयप्रकाश नारायणकी गिरफ्तारी एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। वे कोई साधारण कार्यकर्त्ता नही है। समाजवादके वे महान् विशेषज्ञ है। कहा जा सकता है कि पाश्चात्य समाजवादकी जो बात उन्हे मालूम है उसे हिंदुस्तानमे और कोई भी नही जानता। वे कुशल योद्धा भी है। देशकी स्वाधीनताके लिए उन्होने सर्वस्व त्याग किया है। वे अविरत उद्योगशील है। उनकी कष्टसहिष्णुता अतुलनीय है। मै नही जानता कि उनका कौन-सा भाषण कानूनके पजेमे आ गया है। लेकिन अगर दफा १२४ 'ए' या भारत-रक्षा कानूनकी अति कृत्रिम धाराए असुविधाजनक व्यक्तियोको गिरफ्तार करनेके काममे लाई जाती है तो कोई भी व्यक्ति, जिसे अधिकारी चाहे, कानूनकी बदिशमे आ सकता है। मै इससे पहले ही कह चुका हू कि सरकार चाहे तो सघर्ष अविलब आरभ कर सकती है। ऐसा करनेका उसे पूरा हक है। लेकिन मै दृढतासे यह आशा बाधे हू कि युद्धको उसी समय तक अपने उचित मार्गपर चलने दिया जायगा जबतक कि वह सर्वथा अहिसात्मक रहेगा। चाहे जो हो, भ्रमजाल नही चलने देना चाहिए। अगर श्री जयप्रकाश नारायण पर हिसा का अभियोग है तो उसे प्रमाणित किया जाना चाहिए। सच तो यह है कि इस

गिरफ्तारीसे लोगोंको ऐसा लगने लगा है कि ब्रिटिश सरकार दमन करना चाहती है। ऐसी स्थितिसे इतिहासकी पुनरावृत्ति होगी। पहले सविनय-भंग आन्दोलनके समय सरकारने अली-बन्धुओको गिरफ्तार कर दमनका श्रीगणेश किया था। पता नही कि यह गिरफ्तारी पूर्व निश्चित कार्यक्रमके अनुसार की गई है या किसी बहुत जोशीले अधिकारीकी भूल है। अगर यह किसी अधिकारीकी भूल ही है तो इसका सुधार हो जाना चाहिए। (ह० से०, २३ ३ ४०)

... .

श्रीजयप्रकाशनारायणने अदालतमे जो बयान दिया उसकी नकल उन्होने मेरे पास भेजी थी। यह उनके योग्य है, वीरोचित है, छोटा-सा और मुद्देसर है। जैसा कि उन्होने खुद कहा है, यह दुर्भाग्यकी बलिहारी है कि उन्हे देश-प्रेमके लिए सजा दी जा रही है। जो बात लाखो सोचते और हजारो बातचीतमे कहते है वही श्रीजयप्रकाशने सार्वजनिक रूपमें और जो लोग लडाईका सामान तैयार करते है, उन्हीके सामने कह दी। यह सही है कि उनकी बातका असर हो और वह बार-बार कही जाय तो सरकार तग होगी। मगर इस तरह तग होकर उसे किसी देश-भक्तको, उसके खुलकर विचार करनेका दड देनेके बजाय, यह सोचना चाहिए कि हिंदुस्तानके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए।

बयानके आखिरी हिस्सेसे बयान देनेवालेकी गहरी मानवीयताका प्रमाण मिलता है। उनके दिलमे कोई मैल नही। वे साम्राज्यवाद और नात्सीवादका नाश करना चाहते है। उनका अग्रेजो या जर्मनोसे कोई झगड़ा नही। उन्होने सच कहा है कि इग्लैड साम्राज्यवाद छोड दे तो न सिर्फ भारत, बल्कि तमाम दुनियाके स्वतत्रता-प्रेमी मनुष्य नात्सीवादकी हार और स्वतत्रता और लोकतत्रकी विजयके लिए पूरी कोशिश करेंगे (ह० से०, ३०.३.४०)

. . ..

श्री जयप्रकाशनारायण और डॉक्टर राममनोहर लोहियाके नाम तो आपने सुने ही है। दोनो विद्वान् है। उन्होने अपनी विद्वत्ताका प्रयोग पैसा कमानेके लिए नही किया। देशकी गुलामीको देखकर वे अधीर हो उठे। उन्होंने अपना सबकुछ देशके अर्पण कर दिया और उसकी गुलामीकी जजीरोको तोड़नेमे लग गये। सरकारको उनसे डर लगा और उसने उन्हे जेलमें डाल दिया। अगर मैं राज्य चलानेवाला होऊ तो शायद मै भी ऐसे लोगोसे डरू और उन्हे जेलमे रखू।

सरकारने यह समझकर कि अब हमें आजादीसे वचित नही रखना है, श्री जयप्रकाशनारायण और श्री राममनोहर लोहियाको छोड दिया है। सरकार समझ गई है कि उन्होने उसका पाप भले ही किया हो, सत्याग्रही गाधीका भी पाप किया हो, लेकिन ४० करोड जनताका उन्होने कोई पाप नही किया। जेलसे भागना आदि मेरी समझमे पाप है। लेकिन मै जानता हू कि उनके मनमे भी आजादीकी उतनी ही लगन है, जितनी मेरेमें। इसलिए वे मेरी नजरमे गिरते नही है। मै उनकी बहादुरीकी कदर करता हू।

सरकारका उन दोनोको और आजाद हिंद फौजवालोको छोड़ देना मेरी समझमे शुभ शकुन है। उसके लिए हम सरकारको धन्यवाद दे और ईश्वरका उपकार माने कि उसने उसे सन्मति दी। (ह० से० २१.४.४६)

: १०२ :

निवारणबाबू

पुरुलियाके निवारणबाबू, जिनका अभी हालमे स्वर्गवास हो गया है, बड़े ही विनम्र स्वभावके पुरुष थे। जिस तरह हरिजनोके सच्चे सेवक

थे, उसी तरह वे समस्त दीन-हीनोके सच्चे बधु थे। अहिंसाकी अनुपम सुदरताका उन्होने खूब गहरे जाकर साक्षात्कार किया था और उसे अपने जीवनमे उतारनेका वे अहर्निश प्रयत्न करते रहते थे। उनका जीवन उनके अनेक मित्रो और अनुयायियोके लिए प्रेरणाप्रद था और वे भारीसे भी भारी सकटके समय निवारण बाबूसे पथ-प्रदर्शन तथा आश्वासनकी आशा रखते थे। उनके मित्रो और अनुयायियोको उनके जीवनकी स्मृति सदा शक्तिप्रद रहे और उन्हे सन्मार्गपर उत्तरोत्तर प्रगति करनेकी स्फूर्ति दे। (ह० से०, ९.८.३५)

: १०३ :

भगिनी निवेदिता

मैं भूल ही नही सकता कि इसने पहली ही मुलाकातमे अग्रेजोके लिए अत्यत तिरस्कार और द्वेषके वचन कहे थे। मुझपर कुछ दिखावटकी छाप पडी थी, मगर दूसरे कई लोग कहते है कि वह गरीब-से-गरीब भगियोके मुहल्लेमे रहती थी। इसलिए यह सबूत मेरे लिए काफी है। दूसरी बार पादशाहके यहा मिली थी। वहा पादशाहकी बूढी माने एक कटाक्ष किया था वह याद रह गया है—इस बहनसे कहिये कि इसने अपना धर्म तो छोड़ दिया है। अब मुझे क्या मेरा धर्म समझाती है? (म० डा० १ ८.३२)

: १०४ :

कमला नेहरू

गत १६ तारीखको इलाहाबादमें मुझे कमला नेहरू स्मारक अस्पताल की आधार-शिला रखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह अस्पताल एक सच्ची देश-सेविका और महान् आध्यात्मिक सौन्दर्य रखनेवाली महिलाका न केवल उपयुक्त स्मारक होगा, बल्कि उन्हे दिये हुए मेरे इस वचनकी पूर्ति भी उससे हो जायगी कि उनकी मृत्युके बाद भी मैं यह देखते रहनेका प्रयत्न करता रहूगा कि जिस कामकी उन्होंने अपने ऊपर जिम्मेदारी ले रक्खी थी वह ठीक तरहसे चल रहा है या नही। वे अपने स्वास्थ्यकी शोधमे यूरोप जा रही थी। उनकी वह यूरोप-यात्रा मृत्यु-शोधकी यात्रा साबित हुई। जाते वक्त उन्होने मुझे लिखा था कि मै या तो उनके साथ-साथ बबईतक चलू या उन्हे देखने सीधे बबई पहुच जाऊ। मै बबई गया। उन्हे जो थोडा-सा वक्त मैं दे सका, उस बीचमे उन्होने मुझसे कहा—"अगर मेरा शरीर यूरोपमें छूट जाय तो जवाहरलालजीने स्वराज्य-भवनमे जो अस्पताल खोल रक्खा है और जिसे कायम रखनेके लिए मैंने इतना परिश्रम किया है उसे देखते रहनेका आप प्रयत्न करते रहेंगे न कि उसकी नीव स्थायी हो गई है ?" मैंने उन्हे वचन दे दिया कि मुझसे जो कुछ हो सकेगा वह जरूर करूगा। इस स्मारक-कोषके लिए जो अपील निकाली गई थी उसमे मेरे शामिल होनेका आधार अशत. मेरा यह वचन भी था। (ह० से०, २५.११.३९)

: १०५ :

जवाहरलाल नेहरू

महासभाके सभापतिकी जिम्मेदारी हरसाल अधिकाधिक बढती जाती है। इस वक्त हमारे सामने वह गभीर प्रश्न उपस्थित है कि अगले सालके लिए राष्ट्रपतिका ताज कौन पहने ? क्योंकि अबकी बार तो मेरी सम्मतिमे पडित जवाहरलाल नेहरूको यह ताज पहनना चाहिए। अगर मै निर्णयके समय अपना प्रभाव डाल सका होता तो वह चालू वर्षके भी राष्ट्रपति होते, मगर बगालकी जोरदार मागने 'पुराने साथी' को ही सिहासनपर बैठानेको विवश किया।

बूढे नेता अब अपना कार्यकाल समाप्त कर चुके है। भावी सग्राममें जूझनेका काम नवयुवको और नवयुवतियोका है। और यह उचित ही है कि उनके नेतृत्वके लिए उन्हीमें से कोई खड़ा किया जाय। बूढोको चाहिए कि समयकी गतिको परखे, नही तो जो चीज वे अपनी सहज उदारतासे न देगे वह उनसे जबर्दस्ती छीन ली जायगी। जब जिम्मेदारीका बोझ सरपर आ पड़ेगा, नौजवान अपने आप सौम्य और गभीर बनेंगे और उस उत्तरदायित्वको उठानेके लिए तैयार रहेगे, जो उन्हीको सम्हालना है। पडित जवाहरलाल हर तरह सुयोग्य है। उन्होने वर्षोंतक अनन्य योग्यता और निष्ठाके साथ महासभाके मत्रीका काम किया है। अपनी बहादुरी, दृढ सकल्प, निष्ठा, सरलता, सचाई और धैर्यके कारण उन्होने देशके नौजवानोका मन मुट्ठीमे कर लिया है। वह किसानो और मजदूरोके भी सपर्कमे आये है। यूरोपीय राजनीतिका जो सूक्ष्म परिचय उन्हे है, उससे उन्हे स्वदेशकी राजनीतिको समझने और निर्माण करनेमे बडी सहायता मिलेगी।

लेकिन कुछ वयोवृद्ध नेता कहते है कि जबकि हमे सभवत महासभाके

बाहरके अनेक दलोके साथ गभीर और नाजुक चर्चा छेडनी पडेगी, जब सभवत ब्रिटिश कूटनीतिसे मोर्चा लेनेका भी समय आवेगा और जबकि हिंदू-मुस्लिम समस्या अभी हमारे सामने उलझी ही पडी है, ऐसे समयमे नेतृत्वके लिए आप-जैसे किसी व्यक्तिके हाथमे देशकी बागडोरका होना आवश्यक है । इस दलीलमे तथ्यकी जितनी बात है, उसका पर्याप्त उत्तर इस कथनमें आ जाता है कि क्षेत्र-विशेषके लिए मुझमे जो भी खूबिया है, उनका प्रयोग मै उस हालतमे और भी अच्छी तरह कर सकूगा जबकि मै हर तरहके पद-भारसे मुक्त और पृथक रहूगा । जबतक जनताका मुझ-पर विश्वास और प्रेम बना हुआ है, इस बातका जरा भी डर नही है कि पदाधिकारी न होनेकी वजहसे मै, अपनी शक्तियोका, जो मुझमे हो सकती है, सपूर्ण उपयोग न कर सकूगा । ईश्वर-कृपासे बिना किसी पदको स्वीकार किये ही मै १६२० से देशके जीवनको प्रभावित करनेमे समर्थ हो सका हू । मै नही समझता कि बेलगाव महासभाका सभापति बननेसे मेरी सेवा-क्षमता थोडी बढी हो ।

और जिन्हे यह पता है कि जवाहरलालका और मेरा क्या सबध है, वे यह भी जानते है कि वह सभापति हुए तो क्या और मै हुआ तो क्या । विचार या बुद्धिके लिहाजसे हममे मतभेद भले ही हो, हमारे दिल तो एक है । दूसरे, यौवन-सुलभ उग्रताके रहते हुए भी, अपने कडे अनुशासन और एकनिष्ठादि गुणोके कारण वह एक ऐसे अद्वितीय सखा है, जिनमे पूरा-पूरा विश्वास किया जा सकता है ।

इतनेमे एक दूसरे आलोचक कानोके पास आकर कहते है—क्या जवाहरलालका नाम अग्रेज-बुलके लिए लाल चीथडेका काम नहीं करेगा ? मै कहता हू कि जब हम इन कल्पित आलोचककी तरह तर्क करते है तब न तो राजनीतिज्ञोकी व्यवहार-पटुता और कूट चातुर्यकी कद्र करते है और न स्वय अपनी शक्तिमे ही विश्वास रखते है । राष्ट्रपति चुनते समय इस बातका खयाल रखना कि अग्रेज राजनीतिज्ञ

हमारे चुनावपर क्या कहेगे, अपनेमे आत्मविश्वासकी कमी प्रकट करना है। आलोचक अग्रेज-स्वभावके जितने पारखी हो सकते है, उनसे अधिक उसका पारखी मै हू। एक अग्रेजकी दृष्टिमे सच्चाई, वीरता, धैर्य और स्पष्टवादिता बहुमूल्य गुण है और जवाहरलालमे ये सब प्रचुर परिमाणमे पाये जाते है। अतएव अगर चुनावके समय ब्रिटिश राजनीतिज्ञोका भी विचार कर लिया जाय तो भी पडित जवाहरलाल उनके अदाजसे किसी कदर कम नही उतरते।

और आखिर यह तो है कि महासभाका सभापति कोई एकाधिकारी या निरकुश नही होता। उसका दर्जा एक प्रतिनिधिका है, जिसे एक प्रख्यात परपरा और सुसघटित सगठनके भीतर रहकर काम करना होता है। ब्रिटेनके राजाको जनतापर अपने विचार लादनेका जितना हक है उससे ज्यादा हमारे राष्ट्रपतिको हो नही सकता। महासभा एक ४५ वर्ष पुरानी सस्था है और उसका महत्व एव प्रतिष्ठा उसके अत्यत सुप्रसिद्ध सभापतियोसे भी बढकर है। दूसरे जब समय आवेगा, ब्रिटिश राजनीतिज्ञोको किसी एक व्यक्तिसे नही, बल्कि सारी महासभासे मोर्चा लेना पडेगा। अतएव सब तरह विचार करनेके बाद उन लोगोको, जिन पर इस विषयका उत्तरदायित्व है, यही सलाह देता हू कि वे मेरा विचार छोड़ दे और पूरी-पूरी आशा और विश्वासके साथ पडित जवाहरलालको ही उच्चपदके लिए वरण करे। (हिं० न० १.८.२६)

... .

बहादुरीमें कोई उनसे बढ नही सकता और देश-प्रेममें उनसे आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते है कि वह जल्दबाज और अधीर हैं। यह तो इस समय एक गुण है। फिर जहा उनमे एक वीर योद्धाकी तेजी और अधीरता है वहा एक राजनीतिज्ञका विवेक भी है। .वह स्फटिक मणिकी भाति पवित्र है, उनकी सत्यशीलता सदेहके परे है। वह अहिंसक और अनिन्दनीय योद्धा है। राष्ट्र उनके हाथमे सुरक्षित है। ('प० जवाहर

लाल नेहरू'—श्रीरामनाथ 'सुमन,' पृष्ठ २)

.. .. ..

..जवाहरलालके समान नवयुवक राष्ट्रपति हमे बार-बार नही मिलेंगे। भारतमे युवकोकी कमी नही है; लेकिन जवाहरलालके मुकाबलेमे खडे होनेवाले किसी नवजवानको मैं नही जानता। इतना मेरे दिलमे उनके लिए प्रेम है, या कहिये कि मोह है। लेकिन यह प्रेम या मोह उनकी शक्तिके अनुभवपर स्थापित है और इसलिए मै कहता हू कि जबतक उनके हाथमे लगाम है, हम अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त करले तो कितना अच्छा हो। लेकिन हम तभी कुछ कर सकेंगे, जब मुझे आप लोगोकी पूरी-पूरी मदद मिलेगी। मुझे आशा है कि स्वराज्यके भावी सग्राममे आप लोग सबसे आगे होगे। अगर नौ वर्षोंका यहाका आपका अनुभव सफल हुआ हो और आपको अपने आचार्योंके प्रति सच्चा आदर तथा प्रेम हो तो उसे बतानेका, आपमे जो जौहर हो उसे प्रकट करनेका, समय आगे आ रहा है। ('विद्यार्थियोंसे,' पृष्ठ २०३)

.. .

.पडित नेहरूने अपने देश और उसकी वेदीपर अपने जीवनकी समस्त अभिलाषाओ तथा ममताओका बलिदान किया है। सबसे बडी विशेषताकी बात यह है कि उन्होने किसी दूसरे देशकी सहायतासे मिलनेवाली अपने देशकी आजादीको कभी सम्मानपूर्ण नही समझा।

जवाहरलालका जहातक सवाल है, हम जानते है कि हममेसे किसीका भी एक-दूसरेके बिना काम नही चल सकता, क्योकि हम लोगोमे ऐसी आत्मीयता है जिसे कोई बौद्धिक मतभेद नष्ट नही कर सकते। (ह० से०, ३ ६ ३९)

. . . .

हमें अलग करनेके लिए केवल मतभेद ही काफी नही है। हम जिस क्षणसे सहकर्मी बने है उसी क्षणसे हमारे बीचमे मतभेद रहा है, लेकिन

फिर भी मैं वर्षोंसे कहता रहा हू और अब भी कहता हू कि जवाहरलाल मेरा उत्तराधिकारी होगा, राजाजी नही। वह कहता है कि मेरी भाषा उसकी समझमे नही आती। वह यह भी कहता है कि उसकी भाषा मेरे लिए अपरिचित है। यह सही हो या न हो, किंतु हृदयोकी एकतामे भाषा बाधक नही होती।

और मै यह जानता हू कि जब मै चला जाऊगा, जवाहरलाल मेरी ही भाषामे बात करेगा।(ह०, २५ १ ४२)

• •

सवाल—आपने भी उस रोज वर्धामें कहा था कि जवाहरलाल आपके कानूनी वारिस है। आपके कानूनी वारिसने जापानियोके खिलाफ कावेबाजीसे लड़नेकी जो हिमायत की है, उसकी कल्पना आपको कैसी लगती है? जब जवाहरलाल खुल्लमखुल्ला हिंसाका प्रचार कर रहे है और राजाजी सारे देशको शस्त्र और शस्त्रोकी शिक्षा देना चाहते है, तो आपकी अहिंसाका क्या होगा ?

उत्तर—जिस तरह आपने लिखा है, उसे देखते हुए तो परिस्थिति भयकर मालूम होती है, मगर आपको जितनी भयकर वह लगती है, दर-असल उतनी है नही। पहली बात तो यह है कि मैने कानूनी वारिस शब्द अपने मुहसे नही कहा। मेरी तकरीर हिंदुस्तानीमे थी। मैने तो कहा था कि वे मेरे कानूनी वारिस नही, बल्कि असली वारिस है। मेरा मतलब यह था कि जब मै न रहूगा, तो वे मेरी जगह लेगे। उन्होने मेरे तरीकेको पूरे तौरपर कभी अगीकार नही किया। उन्होने तो उसकी साफ-साफ आलोचना की है। परन्तु बावजूद इसके काग्रेसकी नीतिका उन्होने वफा-दारीके साथ पालन भी किया है। यह नीति या तो मेरी ही निर्धारित की हुई थी, या अधिकाशमे मुझसे प्रभावित थी। सरदार वल्लभभाई जैसे नेता, जिन्होने हमेशा बिना किसी प्रकारकी शका या सवालके मेरा अनुसरण किया है, मेरे वारिस नही कहे जा सकते। यह तो हर कोई